बागवानी फसलें

(जनसेवक हेतु पाठ्य सामग्री)

कृषि एवं गन्ना विकास विभाग

कृषि भवन, काँके रोड, राँची - 834008, झारखण्ड

एवं

राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान (समेति)

कृषि भवन प्रांगण, काँके रोड, राँची - 834008, झारखण्ड

बागवानी फसलें

(जनसेवक हेतु पाठ्य सामग्री)

आयोजक :

राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन, प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान (समेति)

कृषि भवन प्रांगण, काँके रोड, राँची - 834008, झारखण्ड

एवं

कृषि प्रसार शिक्षा विभाग

बिरसा कृषि विश्वविद्यालय

काँके, राँची - 834006, झारखण्ड

विषय सूची

भूमिका 1

सब्जी उत्पादन 2

गोभी वर्गीय सब्जियाँ 3

सोलेनेसी कुल की सब्जियाँ 4

जड़ वाली सब्जियाँ 8

लत्तीदार सब्जियाँ 9

पत्तीदार सब्जियाँ 11

फलीदार सब्जियाँ 12

फल उत्पादन 17

आम 17

लीची 28

पपीता 35

केला 40

अमरूद 44

आँवला 49

कटहल 64

काजू 68

नींबू वर्गीय फल 70

अन्य फल 74

पौधशाला प्रबंधन 79

फल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबंधन 89

फलोत्पादन में समेकित कीट प्रबंधन 93

मसाला फसल उत्पादन 101

अदरक 101

हल्दी 105

लहसुन 109

औषधीय एवं सगंधीय पौधों की खेती 112

सर्पगंधा 112

अश्वगंधा 114

सफेद मूसली 116

नींबू घास 119

जावा घास 121

पामा रोजा 122

स्टीविया 124

काली हल्दी 126

केमोमिल 127

शतावर 128

बच 130

कालमेघ 132

घृतकुमारी 133

प्रकाशक :

राज्यस्तरीय कृषि प्रबंधन, प्रसार-सह-प्रशिक्षण संस्थान (समेति)
कृषि भवन प्रांगण, काँके रोड, राँची – 834008, झारखण्ड

© समेति 2012
सर्वाधिकार सुरक्षित (समेति)

श्री अरूण कुमार सिंह, भा.प्र.से.
सचिव,
कृषि एवं गन्ना विकास विभाग
झारखण्ड सरकार
नेपाल हाऊस, राँची – 834002, झारखण्ड
दूरभाष : 0651–2490578

श्री कमल किशोर सोन, भा.प्र.से.
निदेशक
कृषि विभाग, झारखण्ड सरकार
कृषि भवन प्रांगण, काँके रोड, राँची – 834008, झारखण्ड
दूरभाष : 0651–2233549

मुख्य सम्पादक :
डॉ. आर. पी. सिंह ''रतन'', निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, बी.ए.यू., काँके, राँची – 834006 (झारखण्ड)
दूरभाष : 0651–2450849
श्री जटा शंकर चौधरी, निदेशक, समेति, झारखण्ड, काँके रोड, राँची – 834008, झारखण्ड
दूरभाष : 0651–2232745

समन्वयक :
श्री अभिषेक तिर्की, संकाय (कृषि प्रसार प्रबंधन), समेति, झारखण्ड

आलेख एवं सम्पादन :
डॉ. आरती बी. एक्का, एस.एम.एस., कृषि विज्ञान केन्द्र, पू. सिंहभूम
डॉ. बी. के. भगत, सह निदेशक, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, दुमका
डॉ. पी. वर्मा, एस.एम.एस., कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग

भूमिका

झारखण्ड की जलवायु समशीतोष्ण है एवं यहाँ की अधिकांश जमीन ढालु एवं पठारी होने के कारण यहाँ बागवानी की असीम संभावनाएँ हैं। प्रदेश में राँची, लोहरदगा, हजारीबाग, गढ़वा एवं संथाल परगना जिलों का बागवानी फसलों की खेती में विशेष स्थान है। बागवानी के क्षेत्र में झारखण्ड राज्य अभी विकसित होने की दिशा में सतत् प्रयत्नशील है। तकनीकी जानकारी के अभाव में हमारे किसान बागवानी फसलों की खेती उन्नत ढंग से नहीं कर पाते हैं।

बागवानी फसलों में महत्वपूर्ण स्थान सब्जियों, फलों, मसालों एवं औषधीय तथा सगंधीय पौधों की खेती का आता है। मानव को स्वस्थ एवं निरोग रहने के लिए बागवानी फसलों से प्राप्त उत्पादों का विशेष महत्व है, क्योंकि ये हमारे शरीर के लिए रक्षक भोजन हैं। इसके अतिरिक्त किसानों को रोजगार एवं आय में वृद्धि हेतु शस्य फसलों की अपेक्षा बागवानी फसलों का अधिक योगदान है। झारखण्ड की टांड़ भूमि जो शस्य फसलों के लिए आय की दृष्टि से अधिक उपयुक्त नहीं है, उन्हें बागवानी फसलों के अन्तर्गत लाकर किसानों को अतिरिक्त लाभ पहुँचाया जा सकता है।

बागवानी फसलों की महत्ता को ध्यान में रखते हुए उनके उत्पादन तकनीक से पाठकों को अवगत कराने के उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गई है, जो निम्नलिखित खण्डों में प्रस्तुत है –

- सब्जी उत्पादन
- फल उत्पादन
- मसाला फसल उत्पादन
- औषधीय एवं सगंधीय पौधों की खेती

सब्जी उत्पादन

झारखण्ड राज्य में सब्जी उत्पादन व्यवसाय निरंतर प्रगति कर रहा है। आँकड़ों के अनुसार राज्य की कुल कृषि योग्य भूमि के 9.6% भाग पर सब्जी उत्पादन होता है। वर्तमान में राज्य में आवश्यकता से अधिक सब्जियों का उत्पादन किया जा रहा है जिसका निर्यात पड़ोसी राज्यों में किया जा रहा है। सब्जियों की उत्पादन क्षमता अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक होने के कारण सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों में सब्जी उत्पादन को ही प्राथमिकता दी जाती है। पड़ोसी राज्यों में सब्जियों की माँग बढ़ने के कारण झारखण्ड राज्य के कृषकों के लिए सब्जी उत्पादन के क्षेत्र में नये अवसर पैदा हुए हैं। उक्त बिन्दुओं का अवलोकन करने पर इस धारणा को बल मिलता है कि यहाँ के कृषकों के आर्थिक विकास में सब्जी उत्पादन का महत्वपूर्ण योगदान है।

गत् वर्षों में अनुसंधान संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में किये गये शोधों के फलस्वरूप सब्जी उत्पादन की उन्नत तकनीकों का मानकीकरण किया गया है, जिनके द्वारा बे–मौसम भी अब सब्जी उत्पादन सम्भव हो सका है। साथ ही क्षेत्र के लिए विकसित विभिन्न सब्जियों की अधिक पैदावार देने वाली, रोग और कीट प्रतिरोधी किस्में एवं संकर किस्मों का विकास किया गया है, जिन्हें अपनाकर कृषक सब्जियों की पैदावार एवं गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं।

भूमि में जैविक तत्वों की उपलब्धता, जलधारण क्षमता और फसल अथवा किस्म विशेष की पोषण आवश्यकता का फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः फसलों में पोषण आवश्यकता का निर्धारण क्षेत्रीय स्तर पर अलग–अलग हो सकता है प्रायः देखा जाता है कि कृषक सब्जियों में उर्वरीकरण की उचित जानकारी के अभाव में आवश्यकता से अधिक अथवा कम मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करते हैं, जिसके कारण पैदावार या तो कम होती है अथवा उत्पादन व्यय बढ़ने से उन्हें वांछित लाभ नहीं मिलता। रोग प्रबंधन में प्रयुक्त दवाओं के अनियंत्रित प्रयोग से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण के खतरों के कारण क्षेत्रीय स्तर पर अनुशंसाओं की अवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

वर्तमान प्रगतिशील विचारधारा के अनुसार अब ''स्थल–विशिष्ट कृषि'' (Site-specific farming) की परिकल्पना की जाने लगी है जिसके अर्न्तगत् खेत की अवश्यकताओं के अनुरूप कृषि उपादानों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। इस समय हमारा राज्य श्रम पलायन जैसी विकट समस्या से जूझ रहा है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए सब्जी उत्पादन में उत्तरोत्तर सघनता लाने की नितान्त आवश्यकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसानों को अनुसंधान संस्थानों द्वारा की गयी अनुशंसाओं से भली–भांति परिचित कराया जाये जिससे कि वे सफल सब्जी उत्पादन कर आय के अनुपात में और अधिक वृद्धि कर सकें।

राज्य के सब्जी उत्पादकों के लाभ के लिए, विभिन्न सब्जियों से संबंधित अनुशंसायें जैसे – उन्नत किस्में, बोवाई एवं रोपाई का उचित समय, बीज दर, बोवाई अथवा रोपाई में उचित दूरी, संतुलित पोषण, रोग व उनके कीट लक्षण एवं पहचान तथा उपचार के उपाय प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

सब्जियों की अनुशंसित किस्में, बोआई / रोपाई का समय, बीज दर, बोवाई / रोपाई की दूरी, उर्वरीकरण तथा रोग एवं कीट प्रबंधन के उपाय

फसल		किस्में	बोआई / रोपाई का समय	बीज दर (कि. ग्रा. / हे०)	बोवाई / रोपाई की दूरी (सें.मी.)	''उर्वरीकरण नत्रजनः फास्फोरसः पोटाश (कि.ग्रा. / हे०)	रोग, लक्षण एवं उपचार	कीट, पहचान एवं नियंत्रण
(क) गोभी वर्गीय सब्जियाँ								
1	पातगोभी						**आर्द्रगलनः** पौधशाला में बिचड़ों का मरना, मिट्टी की सतह से कुछ ऊपर तक जलसिक्त सड़न होना। पौधशाला कें क्यारियों में ब्लू कॉपर या ब्लाइटोक्स–50 का 0.3 प्रतिशत या कैप्टान 0.25 प्रतिशत घोल से सिंचाई करना चाहिए। **श्याम विगलन या ब्लैकरॉटः** पत्ती का किनारों से 'V' आकार में पीला पड़ना, सूखना तथा शिराओं का काला पड़ना, उग्रता की अवस्था में पत्तियों का आंशिक या पूर्णरूप से सूखना एवं फसल का पीला दिखना तथा भंडारण में फूलगोभी, बंदगोभी का सड़ना।	**डायमंड बैकमौथः** इसके छोटे, पतले, मटमैले हरे रंग के पिल्लू पौधे पर प्रारंभ से ही सक्रिय हो जाते हैं। पहले ये पत्तियों को खुरचकर या काटकर खाते हैं और बाद में गोभी के अन्दर रहकर हानि पहुँचाते हैं। गोभी के साथ सरसों की खेती करें, सायपरमेथ्रिन 0.2 मि. ली. तथा पडान 1 ग्रा. प्रति ली. पानी में घोल कर 8–10 दिन के अन्तर पर बारी–बारी से छिड़काव करें। **बोरर (छेदक):** इसके पिल्लू डायमंड बैकमौथ के पिल्लू से बड़े और हरे रंग के होते हैं जिनके आरीनुमा पैर देखे जा सकते हैं। मुख्यतः पिल्लू पौधे के मध्यभाग को खाते हैं और जाला बनाकर रहते हैं। गोभी के साथ सरसों की खेती करें
	i) **मध्य कालीन**	गोल्डन एकर, प्राइड ऑफ इंडिया, ग्रीन एक्सप्रेस, आई.ए. एच. एस.–3, आई.ए. एच.एस. –5 आई.ए. एच.एस.–6, बी.एस. एस.–50, श्री गणेश गोल, अर्ली ड्रम हेड	सितम्बर	0.50	50 X 40	200:80:60		
	ii) **पिछेती**	पूसा ड्रम हेड, बी. एस.एस.–115, बी. एस. एस.–32, लेट ड्रम हेड, गंगा, कावेरी	अक्टूबर	0.40	50 X 50	220:100:60		
2	फूलगोभी							
	i) **अगेती**	अर्ली कुंवारी, पूसा दीपाली, पंत शुभ्रा, पूसा अर्ली सिन्थेटिक	मई–जून	0.50	45 X 30	150.:75:50		
	ii) **मध्य कालीन**	पूसा कातकी, दिपालिका, जापानी विकसित, पूसा सिन्थेटिक, पूसा शुभ्रा, पूसा हाईब्रिड–2	जुलाई–अगस्त	0.40	45 X 30	175.:75:50		

	iii) **पिछेती**	पूसा स्नो बॉल, पूसा स्नो बॉल के–1 और लेट स्नो बॉल	सितम्बर अक्टूबर	0.35	60 X 45	200:100:60	बीज बोने से पहले बैविस्टिन 2 ग्राम प्रति कि0ग्रा0 की दर से बीजोपचार करें। **डाउनी मिल्ड्यू:** पौधशाला में नवजात बिचड़ों या खेत में बड़े पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर कपास की तरह सफेद मटमैले रंग के फफूंद का आक्रमण, पत्तियों की ऊपरी सतह पर काले–पीले धब्बों के अनगिनत समूहों का दिखाई देना। तीन वर्षों का फसल–चक्र अपनावें। रोग के लक्षण दिखने पर इण्डोफिल – 45 या ब्लू कापर (ब्लाइटोक्स–50) (0.3 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।	तथा सायपरमेथ्रिन 0.2 मि. ली. तथा पडान 1 ग्रा. प्रति ली. घोल का 7–10 दिन के अन्तर पर बारी–बारी से छिड़काव करें। **सेमीलूपर:** इसके पिल्लू उचक–उचक कर चलते हैं और लम्बे हरे रंग के होते हैं। ये पत्तियाँ काट कर खाते हैं। डायमंड बैकमौथ के लिए बताये गये उपायों के अनुसार नियंत्रण करें। **लाही:** इसके नवजात एवं वयस्क छोटे हरे/भूरे/काले रंग के होते हैं जो पत्तियों की निचली सतह या कोमल टहनियों से चिपक कर रस चूसते हैं और विषाणु फैलाते हैं। इण्डोसल्फान 1.0 मि. ली. या मेटासिस्टाक्स 1.5 मि.ली. प्रति लि. पानी के दर से 7 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।
(ख) सोलेनेसी कुल की सब्जियाँ								
1	बैंगन						**आर्द्रगलन:** पौधशाला में बिचड़ों का मरना, मिट्टी की सतह से कुछ ऊपर तक जलसिक्त सड़न होना।	**लाही:** इसके नवजात एवं वयस्क छोटे हरे/भूरे/काले रंग के होते हैं जो पत्तियों की निचली सतह या
	i) **लम्बा**	स्वर्ण प्रतिभा, पूसा पर्पल क्लस्टर, पंत सम्राट, आजाद क्रांति	फरवरी मार्च, अगस्त अक्टूबर	0.40	60 X 45	120:80:60		

	ii) **गोल**	स्वर्ण मणि, स्वर्ण श्यामली, काशी संदेश, पंत ऋतुराज, पूसा क्रांति	फरवरी–मार्च, अगस्त–अक्टूबर	0.40	60 X 45	120:80:60	बीजोपचार तथा पौधशाला में क्यारियों की ब्लू कॉपर 0.3 प्रतिशत या कैप्टान 0.25 प्रतिशत घोल से सिंचाई। **पाउडरी मिल्ड्यूः** पत्तियों की निचली सतह पर सफेद मटमैले पाउडरनुमा फफूँद की उपस्थिति। बैविस्टिन के 0.1 प्रतिशत या कैराथेन 0.15% घोल का छिड़काव करें। **फोमोप्सिस सड़नः** तने तथा पत्तियों पर मटमैले भूरे गोलाकार धब्बे, पत्तियों का पीला पड़ना तथा फलों पर धब्बे और सड़न। गरम पानी (52^0 सें.) से 30 मिनट तक बीजोपचार या बैविस्टिन से बीजोपचार तथा बैविस्टिन (0.1%) के 3 से 4 छिड़काव, 10–12 दिन के अंतराल पर करें। **पत्र धब्बाः** पत्तियों पर छोटे–छोटे धब्बे समूह में या बिखरे हुए व धूसर रंग के फफूँद की उपस्थिति। बैविस्टिन के 0.1 प्रतिशत घोल का 2–3 बार छिड़काव 10–12 दिन के अंतराल पर करें।	कोमल टहनियों से चिपक कर रस चूसते हैं और विषाणु फैलाते हैं। नुभान 1.0 मि. ली. या मेटासिस्टाक्स 1.5 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से 7 दिन पर दो बार छिड़काव करें। **लीफ हॉपर (फुदका):** इसके शिशु एवं वयस्क कीड़े पत्तियों पर चिपककर रस चूसते हैं। अधिकता की अवस्था में पत्तियों पर छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। ये विषाणु भी फैलाते हैं। नुभान 1 मि. ली. या मेटासिस्टाक्स 1.5 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से 7 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें। **मकड़ी (माईट) :** ये मकड़ी पत्तियों की निचली सतह पर रहती हैं और रस चूसकर उन्हें हानि पहुँचाती हैं जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। डायकोफाल 3 मि.ली. या केलथेन 1 मि.ली. प्रति ली. 10 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़कें।
	iii) **संकर किस्में**	स्वर्ण शोभा, स्वर्ण शक्ति, स्वर्ण अजय	फरवरी–मार्च, अगस्त–अक्टूबर	0.25	75 X 60	175:100:75		

							बैक्टीरियल मुरझाः पौधे का अचानक उपर से नीचे की ओर मुरझा कर सूख जाना। रोग प्रतिरोधी किस्में–स्वर्ण श्यामली, स्वर्ण प्रतिभा एवं स्वर्ण अजय लगायें।	**फल छेदकः** इसके पिल्लू फल में अथवा शीर्ष या पत्ती के जुड़े होने के स्थान पर छेद बनाकर घुस जाते हैं और उसे खाते हैं। प्रभावित पौधे सूखने लगते हैं तथा फलों में बढ़वार नहीं होती है। समेकित कीट प्रबंधन के उपाय कारगर पाये गये हैं इनमें प्रभावित टहनियों को कीट सहित तोड़कर नष्ट करते हैं। फसल में फेरोमोन पाश लगाकर कीट के प्रभाव को कम किया जा सकता है। अधिक प्रकोप की दशा में नीम के रस का 4 प्रतिशत घोल बनाकर 15 दिन के अन्तर पर छिड़कें। पूर्ण नियंत्रण न होने की दशा में इन्डोसल्फान 700 ग्रा. स.त./हेक्टर अथवा साइपरमे. थ्रिन 50 ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से उपरोक्त नीम के घोल में मिलाकर छिड़कें।
2	शिमला मिर्च	अर्का गौरव, अर्का मोहिनी, अर्का बसंत, कलिफोर्निया वन्डर, बुल नोज	फरवरी–मार्च, अगस्त–सितम्बर	0.50	45 X 45	75:60:50	**आर्द्रगलनः** पौधशाला में बिचड़ों का मरना, मिट्टी की सतह से कुछ ऊपर तक जलसिक्त सड़न होना। बैविस्टिन (2ग्रा./कि.ग्रा.) से बीजोपचार तथा पौधशाला में क्यारियों की ब्लू कॉपर 0.3 प्रतिशत या कैप्टान 0.25 प्रतिशत घोल से सिंचाई।	**लाहीः** इसके नवजात एवं वयस्क छोटे हरे/भूरे/काले रंग के होते हैं जो पत्तियों की निचली सतह या कोमल टहनियों से चिपक कर रस चूसते हैं और विषाणु फैलाते हैं। इण्डोसल्फान 1.5 मि. ली. या मेटासिस्टाक्स 1.5 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से 7 दिन पर दो बार छिड़कें।
3	मिर्च	के.ए.–2, इन्डेम–6, भाग्यलक्ष्मी , के–2, कल्याणपुर लाल,अर्का लोहित, ए.आर.सी.एच. – 236	मार्च–अप्रैल, सितम्बर–अक्टूबर	0.65	45 X 45	75:60:50		

							श्यामव्रण या एन्थ्रेक्नोजः पत्तियों तथा फलों पर भूरे काले रंग के धब्बे, पत्तियों का झड़ना तथा फलों का आकार बिगड़ना। बैविस्टिन (2 ग्रा./कि. ग्रा.) से बीजोपचार तथा बैविस्टिन 0.1 प्रतिशत या फोल्टॉफ या कवच के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव। **पत्र धब्बाः** पत्तियों की निचली सतह पर काजल के समान काले फफूंद की उपस्थिति एवं उग्रता की स्थिति में पत्तियों का पीला पड़ना या झड़ना। बैविस्टिन के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव।	**लीफ हॉपर (फुदका) :** इसके शिशु एवं वयस्क पत्तियों से चिपक कर रस चूसते हैं। अधिकता की अवस्था में पत्तियों पर छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। नुभान 1 मि. ली. या मेटासिस्टॉक्स 1.5 मि.ली. प्रति ली. पानी को दर से 7 दिनों के अन्तर पर दो बार छिड़कें।
4	**टमाटर**						**आर्द्रगलनः** पौधशाला में बिचड़ों का मरना, मिट्टी की सतह से कुछ ऊपर तक जलसिक्त सड़न होना। बेविस्टिन (2 ग्रा./कि.ग्रा.) से बीजोपचार तथा पौधशाला में क्यारियों की ब्लू कॉपर 0.3 प्रतिशत या कैप्टान 0.25 प्रतिशत घोल से सिंचाई। **अगेती झुलसाः** ग्रसित पौधों की पत्तियों पर काले, गोल, सकेन्द्रिय, छल्लेनुमा धब्बे बनते हैं जो बाद में बड़े हो जाते हैं।	**लीफ माइनरः** ये कीट बहुत छोटे होते हैं जो पत्तियों की ऊपरी सतह में टेड़ी–मेड़ी सुरंग बनाकर ऊतकों को खाते हैं। नियन्त्रण के लिए नुभान 1.0 मि. ली. या पडान 1 ग्रा0 प्रति ली. का छिड़काव 7 दिन पर दो से तीन बार करें। **फल बेधकः** इसके पिल्लू फलों में छेद बनाकर उन्हें खाते हैं। प्रभावित फलों में बढ़वार नहीं होती तथा वे गिर जाते हैं।
	i) **साधारण किस्में**	स्वर्ण लालिमा, स्वर्ण नवीन, अर्का आभा, काशी अमृत, काशी अनुपम	सितम्बर–अक्टूबर, फरवरी–मार्च	0.50	60 X 45	120:60:60		
	ii) **संकर किस्में**	स्वर्ण समृद्धि, स्वर्ण वैभव, स्वर्ण सम्पदा, काशी हाईब्रिड–1, काशी हाईब्रिड–2	सितम्बर–अक्टूबर, फरवरी–मार्च	0.30	75 X 45	200:100:75		

							इसके नियंत्रण के लिए कवच या इन्डो. फिल एम.–45 (2.5 ग्रा./ली.) का 10 दिन के अन्तराल पर तीन बार छिड़काव करना चाहिए। बीज जनित रोग होने के कारण रिडोमिल एम. जेड. (2 ग्रा./कि.ग्रा.) से बीजोपचार करने से लाभ मिलता है। **पिछेती झुलसाः** इस रोग के लक्षण पत्तियों, तने एवं फलों पर धब्बे के रूप में देखे जा सकते हैं। नियंत्रण के लिए पौधों को खूँटी के सहारे बाँधें, जल निकास का प्रबंध करें तथा रिडोमिल एम. जेड.–(2 ग्रा./ली.) या इन्डोफिल एम.–45 (3 ग्रा./ली.) का 10 दिन के अन्तराल पर तीन बार छिड़काव करें। **बैक्टीरियल उकट्ठा रोगः** पौधे का अचानक मुरझाकर सूख जाना। रोग प्रतिरोधी किस्में–स्वर्ण लालिमा, अर्काआभा, स्वर्ण नवीन, स्वर्ण सम्पदा एवं स्वर्ण समृद्धि लगायें।	इसके नियंत्रण के लिए समेकित कीट प्रबंधन के उपाय कारगर पाये गये हैं। इनमें गेंदे की रोपाई पाश फसल के रूप में करते हैं। पत्तियों पर कीट के अंडे दिखाई देने पर ट्राइकोकार्ड एवं प्रकाश पाश का प्रयोग करें। अधिक प्रकोप की दशा में नीम के रस का 4 प्रतिशत घोल बनाकर 15 दिन के अन्तर पर छिड़कें। पूर्ण नियंत्रण न होने की दशा में इन्डोसल्फान 700 ग्रा. स.त./हेक्टयर या कूँग फूँ (2 मि0ली0 प्रति लिटर पानी) का छिड़काव करें। एन.पी.वी. (वाइरस) का 250 एल.ई. प्रति हेक्टयर की दर से प्रयोग लाभदायक पाया गया है।
(ग) जड़ वाली सब्जियाँ								
3	**मूली**	अर्का निशांत, पूसा रेशमी, पूसा चेतकी, पूसा हिमानी, जपानी व्हाइट इन्डेम–4, इन्डेम–8, आई. आई.वी.आर.–1	सितम्बर–नवम्बर	10.00	30 X 8	50:60:50	**पत्र धब्बाः** लालिमा लिए सीमा के अन्दर काले भूरे छोटे–छोटे धब्बे, आपस में मिलते हुए। डायथेन एम–45 के 0.25 प्रतिशत या ब्लू कॉपर या ब्लाइटॉक्स के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।	**रोयेंदार पिल्लूः** इसके पिल्लू छोटी अवस्था में पीले एवं मटमैले रंग के होते हैं और झुंड में पाये जाते हैं। नियन्त्रण के लिए कार्बराइल 2 ग्रा. तथा पडान 1 ग्रा0 प्रति ली. घोल का बारी–बारी से छिड़काव करें। जैविक कीटनाशक बी.टी. का छिड़काव प्रभावी पाया गया है।

(घ) लत्तीदार सब्जियाँ

1	करेला	अर्का हरित, काशी हरित, काशी उर्वशी, कॉयमबटूर लॉग, पूसा विशेष, प्रिया	जनवरी–फरवरी	5.00	150 X 60	50:60:50	**एन्थ्रेक्नोजः** पत्तियों तथा फलों पर भूरे काले रंग के धब्बे, पत्तियों का झड़ना तथा फलों का आकार बिगड़ना। बैविस्टिन (2 ग्रा./कि.ग्रा.) से बीजोपचार तथा बैविस्टिन 0.1 प्रतिशत या फोल्टॉफ या कवच के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। **पाउडरी मिल्ड्यूः** कपनुमा, मटमैले पाउडरनुमा फफूंद का पत्तियों तथा पत्रवृन्तों या फलों पर उपस्थित होना। बैविस्टन (0.1 प्रतिशत) या टापसिन (0.1 प्रतिशत) या कैराथेन के 0.15 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।	**एपिलैक्ना भृंगः** इसके वयस्क एवं नवजात दोनों ही पत्तियों को खरोंच कर खाते हैं और उन्हें जाली जैसा बना देते हैं। कार्बराइल 2 ग्रा. तथा पडान 1 ग्रा. प्रति ली. पानी की दर से 10 दिन पर बारी–बारी से छिड़काव करें। **मकड़ी (माईट) :** ये मकड़ी पत्तियों की निचली सतह पर रहती हैं और रस चूसकर पत्तियों को हानि पहुँचाती हैं जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। डायकोफाल 3 मि.ली. या केल. थेल 1 मि.ली. प्रति ली. 10 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़कें।
2	लौकी	अर्का बहार, काशी कोमल, काशी गंगा, पूसा समर प्रोलिफिक लॉग, पूसा मेघदूत, पूसा मंजरी, पूसा नवीन, इन्डेम–204	दिसम्बर–जनवरी, अप्रैल–मई	7.00	300 X 100	50:60:50		
3	परवल	स्वर्ण रेखा, स्वर्ण अलौकिक, सी.एच.इ. एस. कटिंग हाईब्रिड–1, सी.एच.–37	फरवरी–मार्च, जून–जुलाई	6,660	150 X 100	120:60:50		
4	झिंगी	स्वर्ण मंजरी, स्वर्ण उपहार,पूसा नसदार, सतपुतिया, इन्डेम–1	जनवरी–फरवरी, अप्रैल–मई	4.50	150 X 50	50:60:50		

5	नेनुआ	पूसा चिकनी, स्वर्ण प्रभा	जनवरी–फरवरी, अप्रैल–मई	4.50	150 X 50	50:60:50	**डाउनी मिल्ड्यू:** कपनुमा, मटमैले रंग के फफूंद का पत्तियों की निचली सतह या लत्ती तथा फलों पर आक्रमण। ब्लू कॉपर या ब्लाईटॉक्स–50 के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।	**लीफ माइनरः** ये कीट बहुत छोटे होते हैं जो पत्तियों की ऊपरी सतह में टेढ़ी–मेढ़ी सुरंग बनाकर ऊतकों को खाते हैं नियन्त्रण के लिए नुभान 1.0 मि.ली. या पडान 1 ग्रा. प्रति ली. पानी का घोल बनाकर 7–10 दिन पर दो से तीन बार छिड़काव करें।
6	कोहड़ा	अर्का चन्दन, अर्का सूर्यमुखी, पूसा विश्वास	जनवरी–फरवरी, अप्रैल–मई	6.50	300 X 100	50:60:50		
7	खीरा							
	i) **साधारण किस्में**	प्वॉइसेट, जापानी लम्बा हरा	जनवरी–फरवरी, अप्रैल–मई	50:50:40	4.00	150 X 75		
	ii) **संकर किस्में**	प्रिया, पूसा संयोग, इन्डेम–9531	जनवरी–फरवरी, अप्रैल–मई	3.00	180 X 100	60:60:50		
8	ककड़ी	अर्का शीतल, लॉग ग्रीन	जनवरी–फरवरी,	3.50	125 X 60	60:60:50		
9	खरबूजा							
	i) **साधारण किस्में**	अर्का जीत, अर्का राजहंस, पूसा शर्बती, पूसा मधुरस, हरा मधु, दुर्गापुर मधु	जनवरी–फरवरी,	4.00	125 X 60	50:50:40		
	ii) **संकर किस्में**	स्वर्ण, पंजाब हाईब्रिड	जनवरी–फरवरी,	3.50	180 X 90	60:60:50		
10	टिंडा	अर्का टिंडा, लुधियाना सलेक्शन	फरवरी–मार्च	6.00	125 X 60	50:50:40		
11	तरबूज							
	i) **साधारण किस्में**	अर्का मानिक, दुर्गापुर मधु, सुगर बेबी	दिसम्बर–जनवरी	3.00	250 X 100	80:75:60		
	ii) **संकर किस्में**	अर्का ज्योति, मधु, मोहिनी	दिसम्बर–जनवरी	2.50	250 X 120	100:75:60		

(ङ) पत्तीदार सब्जियाँ

1	पालक	अर्का अनुपमा, पंजाब ग्रीन, पूसा ज्योति, ऑल ग्रीन, पूसा हरित	सितम्बर–जनवरी	25.00	20 लाइनों में	60:40:40	**आर्द्रगलनः** नवजात बिचड़ों का मरना, मिट्टी की सतह से कुछ ऊपर तक जलसिक्त सड़न होना। बैविस्टिन (2 ग्रा./कि.ग्रा.) से बीजोपचार तथा क्यारियों की ब्लू कॉपर 0.3 प्रतिशत या कैप्टान 0.25 प्रतिशत घोल से सिंचाई करना चाहिए। **डाउनी मिल्ड्यूः** कपनुमा, मटमैले रंग के फफूंद का पत्तियों की निचली सतह या लत्ती तथा फलों पर आक्रमण। ब्लू कॉपर या ब्लाईटाक्स–50 के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। **सफेद कीटः** पत्तियों की निचली सतह पर, सतह से उठा हुआ चूने की तरह सफेद धब्बा, रोग की उग्रता की स्थिति में फलों तथा फलियों में विसंगतियाँ। डायथेन एम–45 के 0.25 प्रतिशत या ब्लू कॉपर या ब्लाईटोक्स–50 के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। **पत्र धब्बाः** लालिमा लिए सीमा के अन्दर काले भूरे छोटे–छोटे धब्बे, आपस में मिलते हुए। डायथेन एम–45 के 0.25 प्रतिशत या ब्लू कॉपर या ब्लाईटॉक्स के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।	**लीफ माइनरः** ये कीट बहुत छोटे होते हैं जो पत्तियों की ऊपरी सतह में टेढ़ी–मेढ़ी सुरंग बनाकर ऊतकों को खाते हैं नियन्त्रण के लिए नुभान 1.0 मि.ली. या पडान 1 ग्रा0 प्रति ली. का 7 दिन पर दो बार छिड़काव करें। **लाहीः** इसके नवजात एवं वयस्क छोटे हरे/भूरे/काले रंग के होते हैं जो पत्तियों की निचली सतह या कोमल टहनियों से चिपक कर रस चूसते हैं। नुयान 1.0 मि. ली. या मेटासिस्टॉक्स 1.5 मि.ली. प्रति ली. की दर से 7 दिन पर दो बार छिड़काव करें।

(च) फलीदार सब्जियाँ

1	बोदी						**श्यामव्रणः** गोल से अंडाकार धंसे हुए धब्बे मुख्यतः तने, फलियों या पत्तियों पर। परिणाम स्वरूप पत्तियों का झड़ना। बैविस्टिन (2ग्रा./कि.ग्रा.) से बीजोपचार, फोल्टॉफ 0.2 प्रतिशत या कवच 0.2 प्रतिशत या बैविस्टिन 0.1 प्रतिशत या डायथेन एम–45 0.25 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें। **पाउडरी मिल्ड्यूः** पत्तियों की निचली सतह पर सफेद मटमैले पाउडरनुमा फफूंद की उपस्थिति। नियन्त्रण के लिए सल्फेक्स के 0.2 प्रतिशत कैराथेन 0.15 प्रतिशत पानी के घोल का छिड़काव करें। **किट्ट या रस्टः** मुख्यतः पत्तियों की निचली सतह पर गाढ़े भूरे रंग के उठे हुए धब्बे, जिन्हें छूने से उँगली में लाल कणनुमा फफूंद लगें, पत्तियों का पीला पड़ना तथा झड़ना। डायथेन एम–45 के 0.25 प्रतिशत या बेलेटॉन 0.05 प्रतिशत या बैविस्टिन 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।	**बोररः** इसके पिल्लू डायमंड बैकमौथ के पिल्लू से बड़े और हरे रंग के होते हैं जिनके आरीनुमा पैर देखे जा सकते हैं। मुख्यतः पिल्लू पौधे के मध्य भाग को खाते हैं और जाला बनाकर रहते हैं। सायपरमेथ्रिन 0.2 मि. ली. तथा पडान 1 ग्रा. प्रति ली. पानी के घोल का 7–10 दिन के अन्तर पर बारी–बारी से छिड़काव करें। **सेमीलूपरः** इसके पिल्लू उचक–उचक कर चलते हैं और लम्बे हरे रंग के होते हैं। ये पत्तियाँ काट कर खाते हैं। सायपरमेथ्रिन 0.2 मि. ली. तथा पडान 1 ग्रा. प्रति ली. पानी के घोल का 7–10 दिन के अन्तर पर बारी–बारी से छिड़काव करें। **लाहीः** इसके नवजात एवं वयस्क छोटे हरे/भूरे/काले रंग के होते हैं जो पत्तियों की निचली सतह या कोमल टहनियों से चिपक कर रस चूसते हैं और विषाणु फैलाते हैं। नुयान 1.0 मि. ली. या मेटासिस्टॉक्स 1.5 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से 7 दिन पर दो बार छिड़कें।
	i) झाड़ीदार	अर्का गरिमा, काशी श्यामल, पूसा कोमल	जनवरी–फरवरी मई–जून	30.00	45 X 25	30:50:40		
	ii) लत्तीदार	स्वर्ण हरिता, स्वर्ण श्वेता, स्वर्ण सुफला	जनवरी–फरवरी, मई–जून	25.00	45 X 25	30:50:40		
2	फ्रेंचबीन							
	i) झाड़ीदार	अर्का कोमल, स्वर्ण प्रिया, पूसा पार्वती, पंत अनुपमा, कंटेण्डर	सितम्बर–अक्टूबर, जनवरी–फरवरी	80.00	45 X 10	60:50:50		
	ii) लत्तीदार	स्वर्ण लता, बिरसा प्रिया	मई–जून, सितम्बर–अक्टूबर	30.00	100 X 30	60:50:50		

	मोजेक: पत्तियों का सिकुड़ना, शिराओं का चमकीला पीला पड़ना तथा फलियों में विसंगतियाँ पैदा होना। रोग विस्तारक कीट लाही के नियंत्रण के लिए आरम्भ से ही रोगर (1.25 मि.ली./ली.) या कूँग फूँ (2 मि0ली0 प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें।	**लीफ हॉपर (फुदका) :** इसके शिशु एवं वयस्क पत्तियों से चिपक कर रस चूसते हैं। अधिकता की अवस्था में पत्तियों में छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। नुयान 1 मि. ली. या मेटासिस्टॉक्स 1.5 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से 7 दिन के अन्तर पर दो बार छिड़काव करें।

(ज) अन्य सब्जियाँ								
1	भिंडी	परभनी क्रान्ति, अर्का अभय, वर्षा उन्नत, वर्षा उपहार, अर्का अनामिका, आई.आई.वी.आर–10	जनवरी–मार्च, मई–जून	18.00, 10.00	45 X 10, 45 X 20	75:60:50	**पीला शिरा मोजेक रोगः** पत्तियों की शिरायें चमकीली एवं पीली होना, उग्रता की अवस्था में पूरी पत्ती तथा फलों का पीला पड़ना। रोग प्रतिरोधी किस्में, प्रमणी क्रान्ति, अर्का अनामिका, अर्का अभय की खेती करें। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए डेमोक्रान (1.5 मि0ली0 प्रति ली0 पानी) का छिड़काव करें। रोग ग्रसित पौधों को नष्ट कर दें। **पत्र धब्बाः** पत्तियों की निचली सतह पर काजल के समान काले फफूंद की उपस्थिति एवं उग्रता की स्थिति में पत्तियों का पीला पड़ना या झड़ना। नियन्त्रण हेतु बैविस्टिन के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। **पाउडरी मिल्ड्यूः** पत्तियों की निचली सतह पर सफेद मटमैले पाउडरनुमा फफूंद की उपस्थिति। इसके नियन्त्रण हेतु सल्फेक्स के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।	**उजली मक्खीः** ये कीट बहुत ही छोटे होते हैं जो पौधे के स्पर्श मात्र से उड़ जाते हैं। इनकी उड़ान कम दूरी की होती है ये मक्खियाँ विषाणु जनित रोग फैलाती हैं। नियन्त्रण के लिए इकालक्स (1 मि. ली./ली.) या मेटासिस्टॉक्स (1.5 मि.ली./ली.) 7 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें। **मकड़ी (माईट):** ये मकड़ी पत्तियों की निचली सतह पर रहती हैं और रस चूसकर पत्तियों को हानि पहुँचाती हैं जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। डायकोफाल 3 मि.ली. या केलथेल 1 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से 10 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़कें। **फल बेधकः** इसके पिल्लू फल में छेद बनाकर घुस जाते हैं और उसे खाते हैं। प्रभावित फलों में बढ़वार नहीं होती हैं तथा वे टेड़े हो जाते हैं। सायपरमेथ्रिन 0.2 मि. ली. तथा पडान 1 ग्रा. प्रति ली. पानी के घोल का 7–10 दिन के अन्तर पर बारी–बारी से छिड़काव करें। रोपाई के समय फ्यूराडान 3–जी का 33 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से प्रयोग करें।

2	**मटर**	अर्केल, स्वर्ण अमर, स्वर्ण मुक्ति, जवाहर मटर–1, बोनेविले, पंत उपहार	सितम्बर–अक्टूबर	100.00	30 X 5	50:50::30	**पाउडरी मिल्ड्यूः** फूल तथा फली लगने पर पौधों की निचली पत्तियों पर सफेद पाउडर के कणों का बिखरा हुआ दिखना। धीरे–धीरे यह फफूँद फैलकर अन्य पत्तियों तनों एवं फलियों को भी प्रभावित करता है। फलस्वरूप पत्तियों का असामयिक पतन तथा फलियों का बदरंग होना। प्राथमिक लक्षण दिखते ही सल्फेक्स 0.2 प्रतिशत या बैविस्टिन 0.1 प्रतिशत या टॉपसिन 0.1 प्रतिशत या केराथेन 0.15 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे– एन.डी. आर.–23, रचना, पी.आर.एम.–4 एवं जवाहर मटर–5 (मध्यवर्ती) का प्रयोग, फसल की अगेती बुवाई तथा नत्रजन का सही मात्रा में प्रयोग करें।	**लाहीः** इसके नवजात एवं वयस्क छोटे हरे/भूरे/काले रंग के होते हैं जो पत्तियों की निचली सतह या कोमल टहनियों से चिपक कर रस चूसते हैं। नियन्त्रण के लिए इण्डोसल्फान 1.5 मि. ली./ली. या मेटासिस्टाक्स 5 मि.ली./ली. 7 दिन पर दो बार छिड़काव करें। **लीफ माइनरः** ये कीट बहुत छोटे होते हैं जो पत्तियों की ऊपरी सतह में टेढ़ी–मेढ़ी सुरंग बनाकर ऊतकों को खाते हैं। इसके नियन्त्रण के लिए नुयान 1.0 मि.ली. या पडान 1 ग्रा. प्रति ली. का 7–10 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।

3	प्याज	अर्का कल्याण, अर्का निकेतन, पूसा रेड, अर्का प्रगति, एन–53 एग्रीफा. उंड लाइट रेड, एग्रीफाउंड डार्क रेड,	सितम्बर–अक्टूबर, अप्रैल–मई	8.00	20 X 10	80:60:80	**पर्पल ब्लॉच धब्बाः** पत्ती या फूलवृन्त पर सफेद, मटमैला धंसा हुआ धब्बा, जिसका मध्य भाग बैंगनी या काले रंग का हो। रोगग्रसित भाग में सकेन्द्रीय छल्लेनुमा आकृति दिखना, रोग की उग्रता की स्थिति में पत्तियों या पुष्प वृन्त का टूट कर लटक जाना या सूखना। नियन्त्रण हेतु कन्टाफ (0.1 प्रतिशत) डायथेन एम–45 या फोल्टॉफ के 0.25 प्रतिशत घोल का तरल साबुन मिलाकर छिड़काव। फसल से जल निकासी की अच्छी व्यवस्था, रोग्रस्त गिरी हुई पत्तियों को चुनकर हटा दें। **मृदु विगलन या सॉफ्ट रॉटः** शल्ककन्दों का ऊपरी भाग से पिलपिला होकर सड़ना तथा भंडारण में दुर्गन्ध देना। शल्ककन्दों की कटाई के बाद अच्छी तरह तथा शीघ्र सूखने की व्यवस्था। कटे–फटे शल्ककन्दों का भंडारण नहीं करना चाहिए।	**थ्रिप्सः** ये सूक्ष्म कीट पत्तियों की सतह पर चिपक कर रस चूसते हैं जिससे पत्तियों पर दाग दिखाई देते हैं जो बाद में हल्के सफेद हो जाते हैं। प्रतिरोधी किस्में लगायें। नियन्त्रण के लिए नुभान 1 मि.ली. या मेटासिस्टॉक्स 1.5 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से 7 दिनों पर दो बार छिड़कें।

फल उत्पादन

आम

आम भारत वर्ष का एक प्रमुख फल है। विश्व के कुल आम उत्पादन का लगभग 43.4 प्रतिशत भाग भारत में उत्पन्न होता है। सन् 1989–99 में देश में 14.0 लाख हे. क्षेत्रफल में आम की खेती से 97.8 लाख मि. टन आम का उत्पादन हुआ। देश के प्रायः सभी क्षेत्रों में आम की खेती की जाती है, परन्तु व्यवसायिक स्तर पर उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, प. बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात एवं मध्य प्रदेश में इसकी खेती की जाती है। भारत वर्ष में आम का सर्वाधिक क्षेत्रफल उत्तर प्रदेश (37.5 प्रतिशत), आन्ध्र प्रदेश (19.9 प्रतिशत) एवं अविभाजित बिहार (14.7 प्रतिशत) में है। आम के पके हुए फल अत्यधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं गुणकारी होते हैं। इसके फलों में विटामिन ''ए'' व कैराटीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। ताजा उपयोग के अतिरिक्त आम के फलों से अनेक परिरक्षित पदार्थ बनाये जाते हैं। कच्चे फलों का उपयोग अचार, अमचूर इत्यादि के लिए किया जाता है जबकि पके फलों से जूस, शरबत, स्वकैश, पेय पदार्थ एवं अमावट (मैंगोलेदर) आदि बनाये जाते हैं।

भूमि एवं जलवायु

आम के सफल बागवानी के लिए अच्छी जलधारण क्षमता वाली गहरी बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। झारखंड प्रदेश की आर्द्र एवं उपोष्ण जलवायु आम के सफल बागवानी के लिए उपयुक्त है। ऐसा देखा गया है कि पठारी भू–भाग में जनवरी–फरवरी में आसमान साफ रहने, तापमान में वृद्धि एवं शुष्क जलवायु होने से आम में फल पहले आते हैं जो अन्य स्थानों से 10–15 दिन पहले पककर तैयार हो जाते हैं। विगत 20 वर्षों के शोध कार्य एवं अनुभवों से यह देखा गया है कि छोटानागपुर क्षेत्र की टांड़ जमीन में आम की सफल बागवानी की जा सकती है। प्रायः ऐसी जमीन या तो परती पड़ी रहती है या केवल मानसून के मौसम में कम उत्पादकता वाली फसलें जैसे – मडुआ, कैनी एवं अन्य लघु खाद्यान्न तथा गोड़ा धान इत्यादि ही उगाई जाती है। ऐसी जमीन में आम की खेती के साथ–साथ इन फसलों को अन्तरशस्यन के रूप में उगा कर अतिरिक्त एवं सतत् आय प्राप्त किया जा सकता है।

किस्में

देश में आम की 1000 किस्में प्रचलित है परन्तु व्यापारिक दृष्टि से 40–50 किस्में ही विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। बागवानी एवं कृषि–वानिकी शोध कार्यक्रम, अन्तर्गत केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, प्लान्डु राँची के पिछले दो दशकों के परीक्षण एवं तुलनात्मक अध्ययन के आधार छोटानागपुर क्षेत्र के लिए आम की विभिन्न समय में परिपक्व होने वाली किस्मों की संस्तुति नीचे तालिका में की गई है।

जरदालू

झारखंड एवं बिहार क्षेत्र की यह एक व्यवसायिक एवं अगेती किस्म है। इसक वृक्ष फैलावदार एवं पत्तियाँ हल्के रंग की होती है। इसके फलों का आकार बड़ा एवं आकर्षक गहरा पीला होता है। पूर्ण विकसित वृक्ष से 140–160 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

बाम्बे ग्रीन

यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है जिसके फल मई के तीसरे सप्ताह में पककर तैयार हो जाते हैं। इस किस्म

के वृक्ष अधिक शाखायुक्त एवं पत्तियाँ पतली होती है। फलों का आकार मध्यम, पकने पर रंग हरा से हल्का पीला, फलों में गूदे की मात्रा अधिक तथा स्वाद एवं मिठास बहुत अच्छा होता है। इसके पूर्ण विकसित वृक्ष से फलन के वर्ष में 150–175 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

परिपक्वता वर्ग	पकने का समय	किस्में
अगेती किस्में	20–30 मई	बाम्बे ग्रीन, रानी पसंद, जरदालू, जर्दा (गोरजीत), गुलाब खस।
मध्य–अगेती किस्में	30 मई से 10 जून	हिमसागर, कृष्णभोग, वजीर पसंद
मध्य समय की किस्में	10–25 जून	मालदह (लंगड़ा), दशहरी, मनकुराद, प्रभाशंकर।
मध्य–देर वाली किस्में	20 जून–5 जुलाई	मल्लिका, नायाब।
देर से पकने वाली किस्में	25 जून – 25 जुलाई	आम्रपाली, चौसा, सीपिया, फजली।
अति देर वाली किस्में	15 जुलाई–10 अगस्त	कतकी, लतरा।
चूसने वाली किस्में		लखनऊ सफेदा एवं मलिहाबादी, सफेदा।

हिमसागर

जून के मध्य तक पकने वाली इस किस्म के पौधे अधिक औजपूर्ण एवं मध्यम शाखीय होते हैं। पौधों का क्षत्रक विकास मध्यम तथा फलन का सामंजस्य बहुत ही अच्छा होता है। फलों का रंग हरा एवं आकार लगभग अंडाकार होता है। इस किस्म के फल मीठे, स्वादिष्ट एवं अधिक गूदेदार होते हैं। हिमसागर किस्म के एक वृक्ष से 140–180 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

दशहरी

उत्तर भारत की यह एक व्यवसायिक किस्म है जो छोटानागपुर क्षेत्र के लिए भी उपयुक्त पाई जाती है। इस क्षेत्र में लखनऊ के अपेक्षाकृत इसके फलों का आकार मध्यम छोटा, आकृति अंडाकार और पकने पर रंग पीला होता है। फलों की भण्डारण क्षमता अच्छी होती है।

सफेद मालदह

इस किस्म को लंगड़ा के नाम से भी जाना जाता है। यह मध्य समय पर पकने वाली किस्म है जिसके फल मध्य जून तक तैयार हो जाते हैं। इस किस्म के पौधे फैलावदार एवं क्षत्रक विकास घना होता है। फलों का आकार मध्यम बड़ा, पकने पर रंग हल्का पीला एवं उनमें गूदे की मात्रा अधिक होती है। पूर्ण विकसित पेड़ से लगभग 150–200 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

मल्लिका

यह एक संकर किस्म है जिसके फल बहुत बड़े (औसत वजन 600 ग्रा.) गुठली पतली एवं अधिक गूदेदार मीठे एवं स्वादिष्ट होते हैं। पकने पर इसके फल आकर्षक पीले रंग के हो जाते हैं। इसके फलों की भंडारण क्षमता भी अधिक है। इस क्षेत्र के लिए यह एक देर से पकने वाली बहुत ही अच्छी किस्म पाई गई है। यह किस्म खाने एवं प्रसंस्करण के लिए अत्यधिक उपयुक्त मानी जा रही है। एक पूर्ण विकसित वृक्ष से 150–200 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो सकता है।

आम्रपाली

यह एक संकर किस्म है जिसके पेड़ बौने होते हैं। आम्रपाली के पेड़ अपेक्षाकृत जल्दी एवं नियमित रूप से प्राप्त होती है परन्तु फलों का आकार छोटा–बड़ा होता है। यह एक देर से पकने वाली किस्म है जिसके फल जून के अंत में पककर तैयार होते हैं। यह किस्म सघन उत्पादन पद्धति के लिए बहुत उपयुक्त है जिससे लगभग 200–250 क्वि./हे. उपज प्राप्त किया जा सकता है।

चौसा

यह एक देर से पकने वाली प्रजाति है जिसके फल जून–जुलाई माह में पककर तैयार होते हैं। वृक्ष आकार में बड़े एवं मध्यम शाखीय होता है। इसके मध्यम आकार के फल लगभग अंडाकार एवं स्वादिष्ट होते हैं। पूर्ण विकसित वृक्ष से 140–180 कि.ग्रा. फल प्राप्त किया जा सकता है।

पौध प्रर्वधन

आम की व्यवसायिक खेती के लिए पौध प्रर्वधन वानस्पतिक विधि से करना चाहिए। इसके पौधे पैत्रिक गुणों वाले होते हैं एवं फलन में जल्दी आ जाते हैं। आम के पौधे भेंट–कलम, विनियर, स्टोन, कोमल शाखा एवं शूट–टिप ग्राफ्टिंग विधि द्वारा किये जाते हैं।

विनियर ग्राफ्टिंग

इस विधि में मूलवृन्त पर जमीन से 20 सें.मी. ऊँचाई पर 30–40 मि.मि. का एक तिरछा चीरा अन्दर की तरफ लगा करके मूलवृन्त का टुकड़ा निकाल लिया जाता है। अब इसी चीरे के बराबर का कलम सांकुर डाली पर उल्टी दिशा में बनाते हैं और दोनों चीरों को मिलाते हुए 200 गॉज वाली पालीथन की पट्टी से अच्छी तरह बांध देते हैं। मूलवृन्त को ऊपर के काट दिया जाता है। इस प्रकार 20–25 दिनों में सांकुर डाली मूलवृन्त से जुड़ जाती है। विनियर ग्राफ्टिंग के लिए सांकुर डाली को एक सप्ताह पहले मातृ वृक्ष में ही पत्ती रहित कर दिया जाता है।

स्टोन ग्राफ्टिंग

इस विधि में 15 दिन पुराने आम के अमोलों पर जमीन से 8–10 से.मी. ऊँचाई पर ग्राफ्टिंग किया जाता है। इसमें अमोलों (मूलवृन्त) को नई पत्ती के नीचे से काटरकर उसके बीचोबीच 3–5 सें.मी. लम्बा लम्बवत् चीरा लगाते हैं तथा सांकुर डाली को दोनों तरफ से कलम बनाकर अन्दर घुसा कर पालीथीन की पट्टी से बांध दिया जाता है। यदि नवजात पौधों की मोटाई पर्याप्त न हो तो दो अमोलों को जोड़कर स्टोन ग्राफ्टिंग की जा सकती है।

शूट टिप ग्राफ्टिंग

बागवानी एवं कृषि वानिकी शोध कार्यक्रम, राँची में आम के वानस्पतिक प्रसारण के लिए शूट टिप ग्राफ्टिंग तकनीक का विकास किया है। यह तकनीक अधिक आसान है एवं इससे पौधे अच्छे एवं स्वस्थ्य बनते हैं। इस तकनीक में आम के नवजात पौधों या गुठली को 25 x 12 x 8 से.मी. आकार के 400 गॉज मोटी काली पालीथीन की थैलियों में मिट्टी एवं खाद के मिश्रण से भरकर जुलाई में लगा दिया जाता है। जब पौधे 40–45 दिन के हो जाते हैं तब उनमें पर्याप्त मोटाई आ जाती है। ऐसी अवस्था में पौधों को 8–10 से.मी. ऊँचाई पर सीधा काट देते हैं। अब स्टोन ग्राफ्टिंग की ही भांति उनमें बीचो बीच में चीरा लगाकर तथा सांकुर डाली को दोनों तरफ से कलम बनाकर ग्राफ्टिंग करके पौधों को आंशिक छायादार स्थान पर रखकर पौधा तैयार किया जाता है।

पौध रोपण एवं देखरेख

आम के पौधों को 10 x 10 मी. की दूरी (आम्रपाली/मल्लिका को 5 मी. x 5 मी.) पर लगाना चाहिए। पौधा लगाने से पहले खेत में रेखांकित करके पौध लगाने का स्थान सुनिश्चित कर लेते हैं। तत्पश्चात् 90 x 90 x 90 से.मी. आकार के गड्ढे खोद कर मिट्टी फैला देते हैं। वर्षा प्रारम्भ होते ही, जून के महीने में 2–3 टोकरी गोबर की सड़ी खाद (कम्पोस्ट), 2 कि.ग्रा. करंज/नीम की खली, 1 कि.ग्रा. हड्डी का चूरा अथवा सिंगल सुपर फास्फेट एवं 100 ग्रा. डुर्सबान/रडार (घूल), या 20 ग्रा. फ्युराडान 3 जी/थिमेट 10 जी, को खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गड्ढा भर देना चाहिए। दो–तीन वर्षा के बाद जब मिट्टी दब जाय तब पूर्व चिन्हित स्थान पर खुरपी की सहायता से पौधे के पिंडी के आकार की जगह बनाकर पौधा लगा देना चाहिए। पौधा लगाने के बाद आस–पास की मिट्टी को अच्छी तरह दबा कर एक थाला बना दें एवं उसमें 2–3 बाल्टी (25–30 ली.) पानी डाल दें। वर्षा न होने की दशा में पौधे पूर्ण स्थापना होने तक पानी देते रहना चाहिए।

आम के पौधे लगाने के पश्चात् प्रथम के 3–4 वर्षों तक समुचित देख–रेख करने की आवश्यकता पड़ती है। खासतौर से जाड़े एवं ग्रीष्म ऋतु में पाले से बचाव के लिए उचित सिंचाई का प्रबन्ध करना चाहिए। प्रारम्भ के 3–4 वर्षों में पौधों की अवांछित शाखाओं को निकाल कर उसको निश्चित आकार देना चाहिए। जमीन से लगभग 80 से.मी. ऊँचाई तक की शाखाओं को निकाल देना चाहिए। जिससे मुख्य तने का उचित विकास हो सके। तत्पश्चात 3–4 मुख्य शाखाओं को विकसित होने देना चाहिए। इन शाखाओं पर द्वितीय एवं तृतीय शाखायें आती हैं जिससे वृक्ष का आकार सुडौल, ढाँचा मजबूत एवं फलन अच्छी आती है। बड़े पौधों में विशेषकर जिसमें क्षत्रक घना होता है बीच की शाखाओं को जिसमें फल नहीं आता, काटकर निकाल देना चाहिए। सूखी, रोगग्रसित अथवा कैंची शाखाओं को समय–समय पर काटते रहना चाहिए। फलों को तोड़ने के बाद मंजर के साथ 2–3 से.मी टहनी को काट देने से स्वस्थ शाखायें निकलती है एवं अगले वर्ष फलत अच्छी होती है। प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की समुचित देख–रेख, निकाई–गुड़ाई तथा कीड़े एवं बीमारियों से रक्षा करने से पौधों का विकास अच्छा होता है।

खाद एवं उर्वरक

प्रारम्भ के 2–3 वर्षों तक आम के पौधों को 30 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 2 कि.ग्रा. करंज की खली, 200 ग्रा. यूरिया, 150 ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 150 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा/वर्ष की दर से देना चाहिए। तत्पश्चात् पौधे की बढ़वार के साथ–साथ खाद की मात्रा में वृद्धि करते जाना चाहिए। इस प्रकार 10 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 150 ग्रा. करंज की खली, 150 ग्राम यूरिया, 100 ग्रा. सिं.सु.फा., 50 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष के हिसाब से वृद्धि करना चाहिए। लगभग 15 वर्ष बाद पूर्ण विकसित वृक्ष में 80–100 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 3–4 कि.ग्रा. करंज की खली, 2 कि.ग्रा. यूरिया, 1.5 कि.ग्रा.सिं.सु.फा. एवं 0.8 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष की दर से देना चाहिए। पूरी खाद एवं आधे उर्वरकों को जून तथा शेष उर्वरकों को सितम्बर में वृक्ष के क्षत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। खाद देने के बाद यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई करना आवश्यक है। छोटानागपुर क्षेत्र की मृदा में 10–15 कि.ग्रा. चूना प्रति वृक्ष प्रति वर्ष के अन्तराल पर देने से उपज में वृद्धि देखी गई है। जिन बगीचों में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दें उनमें 150–200 ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति वृक्ष की दर से सितम्बर माह में अन्य उर्वरकों के साथ देना लाभकारी पाया गया है।

सिंचाई एवं जल संरक्षण

आम के सफल उत्पादन के लिए बगीचे में जल प्रबन्ध बहुत ही आवश्यक होता है। जब तक पौधा फलन में नहीं

आता तब तक पौधे के उचित बढ़वार एवं विकास के लिए सर्दी के मौसम में 15–20 दिनों के अन्तराल पर एवं गर्मी में 10 दिनों के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करनी चाहिए। अध्ययन से यह पता चला है कि पौधों में मंजर आने के लगभग 3 माह पहले से फल बनने के समय तक पानी नहीं देना चाहिए। यदि अन्तशस्य की फसल ली जा रही है तो उसमें भी इस समय पानी रोक दें या ऐसी फसल का चुनाव करें जिसमें इस समय सिंचाई की आवश्यकता न हो। इस समय मृदा में मौजूद नमी को संरक्षित रखने के लिए पौधे के तने के चारों तरफ सूखे खरपतवार या काली पालीथीन की मल्चिंग बिछाना लाभदायक पाया गया है। पौधों में फलन के समय पानी की अधिक आवश्यकता होती है। मटर आकार के फल होने से लेकर तोड़ाई तक सिंचाई करने से फलत एवं गुणवत्ता में वृद्धि देखी गई है। सिंचाई के लिए रूपान्तरित थाला विधि अति उत्तम पायी गयी है। इसमें पानी की बचत व खाद का संचय होता है एवं मृदा जनित बिमारियाँ एक पौधे से दूसरे पौधे में नहीं फैलती है।

पूरक पौधे एवं अन्तर्शस्य

आम के वृक्ष के पूर्ण रूप से तैयार होने में लगभग 15–16 वर्ष का समय लगता है। अतः प्रारम्भिक अवस्था में आम के पौधों के बीच की खाली पड़ी जमीन का सदुपयोग अन्य फलदार पौधों एवं दलहनी फसलें/सब्जियों को लगाकर किया जा सकता है। इससे किसान भाइयों को अतिरिक्त लाभ के साथ–साथ मृदा की उर्वराशक्ति का भी विकास होता है। शोध कार्यों से पता चला है कि आम में पूरक पौधे के रूप में अमरूद, नींबू, शरीफा एवं पपीता जैसे फल वृक्ष लगाए जा सकते हैं। ये पौधे आम के दो पौधों के बीच में रेखांकित करके लगाने चाहिए। इस प्रकार एक हेक्टर जमीन में आम के 100 पौधे तथा 300 पूरक पौधे लगाए जा सकते हैं। अन्तर्शस्य के रूप में दलहनी एवं अन्य फसलों जैसे बोदी, फ्रेंचबीन, भिन्डी, मूँग, कुल्थी, मडुआ आदि की खेती की जा सकती है। जब पौधे के क्षत्रक पूर्ण रूप से विकसित हो जाये तो छाये में होने वाली फसलें जैसे अदरक, हल्दी एवं ओल की खेती अन्तशस्य के रूप में लाभकारी पायी गयी है।

पुष्पण एवं फलन

वानस्पतिक विधि से तैयार आम के पौधों में 3–4 वर्षों के बाद फूल आना प्रारम्भ हो जाता है। आम में परागण मधुमक्खियों द्वारा होता है। अतः फल आने के समय कीटनाशक दवाओं का प्रयोग न करें अन्यथा फलन प्रभावित होती है। आम में मुख्य रूप से नर, मादा एवं उभयलिंगी पुष्प एक ही मंजर में पाये जाते हैं जिसमें से केवल मादा एवं उभयलिंगी फूलों में ही फल बनते हैं। अतः अधिक फलन के लिए मादा पुष्पों का परागण आवश्यक होता है पौधे के आयु के साथ–साथ फलन में वृद्धि होती रहती है तथा 15–20 वर्ष के पौधे से अधिकतम फल प्राप्त होते हैं।

कीट, रोग एवं नियंत्रण

सिल्ला कीट

सिल्ला कीट पत्तियों के निचले सतह पर मध्य शिरा के पास अंडे देती है जिनसे अगस्त महीने में सूक्ष्मदर्शी नवजात निकल कर पत्तियों के अक्ष की ओर बढ़ते हैं। यहाँ इनके रस चूसने से नुकीले गाँठ बनना आरम्भ हो जाते हैं जो कीट के लिए सुरक्षित आश्रय बनते हैं। गाँठ आरम्भ में पत्तियों या मंजर निकलने की भ्रांति पैदा करते हैं परन्तु इसमें कीट रस चूसकर पौधे को क्षति पहुँचाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए 5–10 अगस्त के बीच क्वीनॉलफॉस (0.04 प्रतिशत) का 10–15 दिनों के अन्तराल पर 3 छिड़काव करना चाहिए। कीट प्रभावित टहनियों या नुकीले गाँठों की छंटाई लाभप्रद पायी गयी है। 2–3 वर्षों के नियमित प्रबंधन से कीट से होने वाली क्षति से बचा जा सकता है।

फुदका या मधुआ

छालों के अंदर छुपा रहने वाली यह कीट मंजर तथा नर्म टहनियों के रस चूसकर वृक्ष को सर्वाधिक क्षति पहुँचाता है। इनकी उग्रता की स्थिति में मधुस्राव होता है। जो पत्तों एवं फलों पर काली फफूँद को बढ़ावा देता है। मंजर सूखने से फूल–फल कम लगते हैं या झड़ जाते हैं। इसके प्रबंधन के लिए सायपरमेथरिन (2 मी.ली./ली.) या मानोक्रटोफास (1.5 मि.ली./ली.) दवा को पानी में मिला कर एक बार फूल खिलने के पहले तथा दो बार मटर आकार के फल लगने के बाद छिड़काव करना चाहिए।

गुजिया (मिलीवग)

फलों की निचली सतह, टहनियों तथा फलों पर रस वाली सफेद कीट समूह, कपासनुमा शरीर के कारण जल्दी ही दिख जाती है। उग्रता की स्थिति में टहनियाँ सूखने लगती हैं। इनके प्रबंधन के लिए क्विनॉलफास 2 मि.ली./ली. या मोनोक्रोटोफास 1.5 मि.ली./ली. का मार्च–अप्रैल में छिड़काव करना चाहिए। जनवरी माह में तने के चारों ओर गुड़ाई एवं क्लोरोपायरफिॉस या मिथाइल पैराथियॉन के 200 ग्रा. धूल या भुरकाव अथवा पॉलीथीन के चादर से तने पर 30 से.मी. की पट्टी एवं ग्रीस लगाने से इसके नवजात को फांस कर इस कीट का निराकरण किया जा सकता है।

फल मक्खी

फल मक्खी परिपक्वता के पहले फलों पर अंडे देकर क्षति पहुँचाती हैं। परिपक्व फलों में इनके पिल्लुओं की उपस्थिति से सड़न आरम्भ हो जाती है। देर से पकने वाली किस्मों पर इनका प्रकोप सर्वाधिक होता है। इसके प्रबंधन के लिए अप्रैल–मई में वयस्क कीटों को फंसाने के लिए ट्रैप का इस्तेमाल उपयोगी पाया गया है। इसमें गुड़ का शीरा या ताड़ी में 0.2% कार्बोरिल मिलाकर खुले डिब्बों में पेड़ पर टांग देते हैं जो वयस्कों को अपनी ओर आकर्षित करता है तथा कीटनाशक के कारण कीट मरते जाते हैं। उग्रता की अवस्था में मोनोक्रोटोफास दवा का (1.5 मि.ली./ली. पानी की दर से) 2–3 छिड़काव दोपहर के समय में करना चाहिए। फल मक्खी के नर वयस्क को फंसाने के लिए हाल में ही नयी तकनीक विकसित की गयी है जिसमें 5 x 5 x 1.2 से.मी. के प्लाईवुड के टुकड़ों पर 4–5 बुंद मिथइल युजीनाल एवं 2 बूंद मैलाथियान डालकर किलर ब्लाक तैयार करते हैं इसे एक ली. वाली पानी बोतल में जिसके गर्दन के पास 4 से.मी. का छेद हो के अन्दर लटका देते हैं। अब इस बोतल को पेड़ की टहनी पर 10 बोतल प्रति हेक्टर के दर से टांग देते हैं।

तना वेधक

कभी–कभी मोटी टहनियों या तने में इसका प्रकोप देखा जाता है। बड़े आकार के पिल्लू अंदर घुसकर भीतरी भाग को खाते हैं और उसी में अपनी बिष्ठा भी निकालते हैं। जिससे उनके पेड़ पर होने का संकेत मिलता है। इसके प्रकोप से या तो टहनियाँ सूख जाती हैं या टूट जाती हैं। नियंत्रण के लिए नुवाकॉन के घोल (10 मि.ली./लीटर पानी) या पेट्रोल की 2–3 बूँद छिद्र में डालकर टहनियों के सभी छिद्रों को गीली चिकनी मिट्टी से बंद कर दें। इस प्रकार वाष्पीकृत गंध के प्रभाव से पिल्लू को खत्म किया जा सकता है। और तने को बचाया जा सकता है।

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यु)

चूर्णिल आसिता आम के पत्तों पर जीवित रहते हैं जो मंजर निकलने तथा फूल खिलने की अवस्था में सक्रिय होकर पौधे को क्षति पहुँचाते हैं। अनुकूल वातावरण में फफूँद मंजर पर सफेद–धूसर रंग की मखमली सतह की तरह दिखते हैं जिनके कारण मंजरों का सूखना, फूल एवं फलों का झड़ना प्रारंभ हो जाता है। इसके प्रबंधन के लिए दिसम्बर–जनवरी माह में या मंजर निकलने के साथ ही बैविस्टिन (0.01 प्रतिशत) या सल्फेक्स (0.2 प्रतिशत) का तीन छिड़काव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

ह्रयामव्रण (एन्थ्रेक्नोज)

इस रोग के कारण नये पत्तों, टहनियों एवं फलों पर काली धंसी चित्तियाँ बनती हैं जिन पर सूई की नोक के आकार के काले–काले कोयला के बुरादेनुमा धब्बे देखे जा सकते हैं। उग्रता की स्थिति में पत्तों एवं बढ़ते फलों पर कवच या इंडोफिल एम.–45 नामक फफूँदनाशी (0.2 प्रतिशत) का 2–3 छिड़काव करना चाहिए। रोग ग्रसित टहनियों तथा इसके प्रभाव से झड़े पत्तों को जलाना या गाड़ देना लाभकारी होता है।

कज्जली फफूँद (शूटी मोल्ड)

इस रोग के प्रभाव से पत्ते, टहनियाँ या फल काले फफूँद से ढंक जाते हैं। मधुआ या अन्य स्रायी कीटों के मधुस्राव पर इन फफूँदों की बढ़वार होती है। उग्रता की स्थिति में प्रकाश संश्लेशण की क्रिया बाधित होती है तथा फलों की गुणवत्ता में गिरावट के कारण आर्थिक क्षति होती है। इसकी रोकथाम के लिए स्रायी कीटों का नियंत्रण करना चाहिए। रोग की उग्रता की स्थिति में व्यवसायिक स्टार्च या मॉड़ या गोंद के 3% के घोल में 1.25 मि.ली./ ली. मोनोक्रोटॉफास या रोगर मिलाकर 15 दिनों के अन्तराल पर 3 बार छिड़काव करें।

टहनियों का सूखना (पिंक रोग)

फफूँद जनित पिंक रोग के कारण पूर्ण विकसित पेड़ों की टहनियाँ एक–एक करके सूखने लगती हैं। इसके नियंत्रण के लिए सूखी टहनियों को 15 से.मी. नीचे से छांट कर उसके कटे भाग पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाना चाहिए तथा इसमें फफूँदनाशी का 2–3 छिड़काव करना चाहिए।

जीवाणु कैकर

पत्तों, टहनियों एवं फलों पर धब्बों का बनना तथा उनपर छोटे–छोटे चमकीले कणों का दिखना इसका प्रारंम्भिक लक्षण है। उग्रता की स्थिति में फलों का झड़ना, टहनियों का सूखना तथा फलों का सड़ना देखा जा सकता है। इसके बचाव के लिए स्ट्रेप्ट्रोमाइसिन के 200 पी.पी.एम. तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 0.2% घोल का 7 दिनों के अन्तराल पर 3–4 छिड़काव आवश्यक होता है।

भरपूर पैदावार के लिए आम के बगीचों का रख-रखाव

प्रायः ऐसा देखा गया है कि आम उत्पादक किसान केवल फलन के समय ही आम के पौधे की देख–रेख करते हैं। शेष समय में वे आम के बगीचों की कोई देखभाल नहीं करते। परिणामस्वरूप बगीचों में अनेक कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप हो जाता है। जिससे फलन प्रभावित होती है। अक्सर किसान भाई आम के पौधों में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग नहीं करते हैं और यदि करते भी है तो ठीक ढंग से नहीं। काट–छांट के बारे में भी किसानों को सही जानकारी का अभाव है, जबकि आम के बगीचों में अच्छे फूल एवं फल लगने के लिए खाद एवं उर्वरक प्रयोग, काट–छांट, सिंचाई तथा दवाइयों के छिड़काव पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आम के नये पौधों एवं फल देने वाली बगीचों के उचित रख–रखाव का मासिक निम्नांकित है –

नये बगीचों का प्रबन्ध एवं देखरेख

अप्रैल-मई

1. मिट्टी की जाँच कराएँ
2. नया बाग लगाने के लिए खेत की अच्छी तैयारी करें 10 x 10 मी. (आम्रपाली किस्म के लिए 5 x 5 मी. पर रेखांकन करें)

3. चिन्हित बिन्दु पर 3.0 x 3.0 x 3.0 फिट आकार के गड्ढे तैयार करें।
4. स्थापित बाग में दोहरी जुताई करें।
5. स्थापित बाग में छोटे पौधों को थाला विधि से सिंचाई करें।
6. पौधों को तेज गर्म हवा (लू) से बचाने के लिए छप्पर बनायें।

जून-जुलाई

1. नया बाग लगाने के लिए वर्षा प्रारंभ होने पर तैयार गड्ढे को खाद एवं उर्वरक के मिश्रण से भर दें। इसके लिए गोबर की खाद –20–30 कि.ग्रा. (2 से 3 टोकरी), करंज या नीम की खली 2 कि.ग्रा. हड्डी का चूर्ण अथवा सिंगल सुपर फॉस्फेट 1 कि.ग्रा., डर्सबान/रडार (10 प्रतिशत घोल) या 20 ग्र. फ्यूराडॉन 3 जी/थीमेट 10 जी को खेत की उपरी सतह की मिट्टी में अच्छी तरह से मिलाकर गढ़ा भर दें।
2. प्रारम्भ के 2–3 वर्ष तक आम के पौधों को 30 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 2 कि.ग्रा. करंज की खली, 200 ग्राम यूरिया, 150 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष की दर से दें।
3. पूरी खाद एवं आधी उर्वरक की मात्रा का प्रयोग करें एवं शेष आधे उर्वरक को सितम्बर माह में वृक्ष के क्षत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह से मिला दें।
4. नये बाग लगाने के लिए एक बारिश होने पर जब गड्ढे की मिट्टी दब जाए तब नये पौधों का रोपण गड्ढे में बीचों–बीच करें।
5. थालों की गुड़ाई करे एवं खर–पतवार नियंत्रण करें।

अगस्त-सितम्बर

1. आवश्यकतानुसार खर–पतवार तथा दीमक का नियंत्रण करें। प्रति पौधा 50 ग्राम लिण्डेन धूल या 3 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस प्रति ली. पानी में घोलकर वृक्ष के मुख्य तना पर छिड़काव करें।
2. यदि वर्षा नहीं हो रही हो तो पौधों की हल्की सिंचाई करें।
3. शेष बची उर्वरक की मात्रा को वृक्ष के क्षत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह से मिला दें।

अक्टूबर-नवम्बर

1. बगीचों में खरपतवार नियंत्रण हेतु जुताई करें।
2. छोटे पौधों को पाला से बचाने के लिए नियमित सिंचाई करें।
3. यदि पत्ती खाने वाले कीड़े का प्रकोप देखें तो उसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस या क्वीनालफास दवा का 1.5 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर 2 छिड़काव करें।
4. नवजात नये पौधे को ठंढ से बचाने के लिए खरपतवार की झोपड़ी का निर्माण करें।

दिसम्बर एवं जनवरी

1. आवश्यकतानुसार पौधों में नियमित सिंचाई करें।

फरवरी एवं मार्च

1. पौधों की सिंचाई एवं दीमक नियंत्रण का कार्यक्रम जारी रखें।

2. पौधें को उचित ढाँचा देने के लिए कटाई–छंटाई करें।
3. पत्ती खाने वाले कीड़ों के नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटेफॉस या फॉस्फमिडान दवा की 1.5 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर 2 छिड़काव करें।

फल देने वाले बगीचों का प्रबन्ध एवं देखरेख

अप्रैल-मई

1. बाग की दोहरी जुताई करें
2. खाद एवं उर्वरक प्रयोग के लिए मिट्टी की जाँच कराएँ।
3. फल मक्खी के वयस्क कीटों को फंसाने के लिए ट्रैप का इस्तेमाल करें। ट्रैप के लिए गुड़ का शीरा या ताड़ी में 0.2 प्रतिशत काब्रोरिल मिलाकर खुले डिब्बों में पेड़ पर टांग देते हैं।
4. आवश्यकतानुसार पौधों की सिंचाई करें।
5. फलों की तोड़ाई करें।
6. फल मक्खी के नियंत्रण करने के लिए मनोक्रोटोफॉस दवा का (1.25) मि.ली./ली. पानी की दर से) 2–3 छिड़काव करें।

जून-जुलाई

1. फल तोड़ाई के बाद सूखी एवं रोग ग्रसित शाखाओं की कटाई–छंटाई करें। मुख्य तने से 1.5 से 2 मी. की दूरी पर पौधों के क्षत्रक के नीचे गोलाई में 30 से.मी. गहरी 60 से.मी. चौड़ी नाली/खाई बनाकर खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें।
2. 15–20 वर्षों से पूर्ण विकसित वृक्ष में गोबर की सड़ी खाद – 80–100 कि.ग्रा. करंज की खली 3–4 कि.ग्रा., यूरिया – 2 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट – 1.5 कि.ग्रा. एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश 0.8 कि.ग्रा. प्रति वर्ष की दर से प्रयोग करें।
3. पूरी खाद एवं आधी उर्वरक की मात्रा का प्रयोग जून के अन्तिम सप्ताह में करें एवं शेष आधी उर्वरक को सितम्बर माह में वृक्ष के क्षत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह से मिला दें।
4. खर–पतवार का आवश्यकतानुसार नियंत्रण करें।

अगस्त-सितम्बर

1. सिल्ली कीट को रोकथाम के लिए 5–10 अगस्त के बीच क्विनॉलफॉस (0.04 प्रतिशत) का 10–15 दिनों के अन्तराल पर 3 छिड़काव करें। कीट प्रभावित टहनियों का नुकीले गाँठों की छंटाई करें।
2. जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे तो 150–200 ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति वृक्ष की दर से अन्य उर्वरकों के साथ दे दें।

अक्टूबर-नवम्बर

1. पौधों के क्षत्रक के नीचे पुवाल या घास की पलवार बिछायें जिससे नमी संरक्षण के साथ–साथ फलों की उपज एवं उनकी गुणवत्ता पर भी अच्छा असर पड़ता है।
2. यूरिया की आधी बची हुई मात्रा को पेड़ों के क्षत्रक के नीचे देकर मिट्टी में मिला दें और पौधों की सिंचाई करें। खेत की दोहरी जुताई करें और नवम्बर माह में पौधों की सिंचाई न करें।

दिसम्बर-जनवरी

1. मधुआ कीट एवं पाउडरी मिल्डयू के नियंत्रण के लिए मंजर निकलने के समय बैविस्टिन या कैराथेन (0.2 प्रतिशत) तथा मनोक्रोटोफॉस या इमिडाक्लोरपिड (0.05 प्रतिशत) का पहला एहतियाती छिड़काव करें।

फरवरी-मार्च

1. मंजर में फूल आते समय छिड़काव न करें।
2. जब फल सरसों के दाने के बराबर हो जाए तब उपरोक्त दवा का दूसरा तथा मटर के दाने के आकार के फल होने पर तीसरा छिड़काव करें।
3. गुजिया (मिलीवग) के नियंत्रण के लिए क्विनॉलफॉस 2 मि.ली./ली. या मोनोक्रोटाफॉस 1.5 मि.ली./ली. के घोल का 15 दिनों के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।
4. फलों को ब्लेक टिप रोग से बचाने के लिए मटर के आकार के फलों पर बोरिक अम्ल 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

आम के पुराने बगीचों से पुनः पैदावार के लिए जीर्णोद्धार

भारत वर्ष में आम की खेती प्राचीन काल से ही होती आ रही है। वर्तमान समय में देश के लगभग 30–35 प्रतिशत बाग पुराने हो चुके हैं जिनका उत्पादन बहुत ही कम हो गया है। अतः इन्हें रख पाना किसानों के लिए लाभदायक नहीं रह गया है। ऐसी परिस्थिति में किसान या तो पुराने बाग को काटकर नये बाग स्थापित करें जिसमें 5–6 वर्षों में फल आना प्रारम्भ होता है और तब तक किसानों को लगभग 80–90 हजार रूपये प्रति हेक्टर का खर्च आता है या फिर पुराने ही पौधों का जीर्णोद्धार करने पर किसानों को 40–50 हजार रूपये प्रति हेक्टेयर की अतिरिक्त आमदनी जलावन लकड़ी से मिल जाती है जिसमें सब्जी, दलहन एवं तिलहन का फसल अर्न्तशस्य भी किया जा सकता है।

जीर्णोद्धार क्या है?

जीर्णोद्धार का अर्थ पाधों को नया जीवन प्रदान करना है। जो पौधे अधिक पुराने या किसी कारण से कम फल देने लगते हैं तथा आर्थिक दृष्टि से उपयोगी नहीं रह जाते हैं उन्हें वैज्ञानिक तरीकों द्वारा फल देने योग्य बना लिया जाता है।

जीर्णोद्धार क्यों?

1. वर्तमान में आम की उत्पादकता वृक्षों की क्षमता के अनुसार संतोषजनक नहीं है जिसके अनेक कारण हैं, जैसे आम के बागों का वैज्ञानिक प्रबन्ध न करना, अनियमित फलन, पौधों में कटाई–छंटाई न करने के कारण बगीचों का अधिक घना हो जाना, विश्वसनीय किस्मों के बाग न लगाना, बीमारियों तथा कीटों से ग्रसित पौधों की तरफ कोई ध्यान न देना इत्यादि।

2. अन्य फलदार वृक्षों की तरह आम के पौध भी एक निश्चित आयु के बाद उपज कम देने लगते हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि 45–50 साल बाद आम के बाग बहुत घने हो जाते हैं। फलस्वरूप पौधों को सूर्य का प्रकाश पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता इनमें कीट एवं बीमारियों का प्रकोप काफी बढ़ जाता है और उत्पादन में भारी गिरावट आ जाती है। ऐसे बगीचों में आवश्यक कटाई–छंटाई करने से नये कल्ले निकलते हैं जिनमें अगले 2–3 वर्ष में पुष्पन एवं फलन शुरू हो जाता है।

जीर्णोद्धार कब एवं कैसे?

जिन वृक्षों का जीर्णोद्धार करना है उनकी मुख्य शाखाओं को जमीन से 4 मीटर ऊँचाई पर चिन्हित कर लेते हैं। दिसम्बर माह में इन शाखाओं को चिन्हित स्थान से काटते हैं। कटाई करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि शाखाओं को फटने से बचाने के लिए चिन्हित जगह पर नीचे (झुकाव) की तरफ 10–15 सेमी. गहरा सीधा काट दें। तत्पश्चात् उसी निशान पर उपर से कटाई करें। ठीक इसी प्रकार एक दूसरे पर चढ़ी हुई या कीट तथा रोग ग्रसित शाखाओं को भी काट कर निकाल लें। कटाई के तुरन्त बाद फफूंदी नाशक दवा (कॉपर ऑक्सीक्लोराइड) को करन्ज के तेल में मिलाकर शाखाओं के कटे हुए भाग पर लेप लगा दें। बराबर मात्रा में गोबर एवं चिकनी मिट्टी के मिश्रण से तैयार लेप का भी प्रयोग कटे शाखाओं पर कर सकते हैं। इससे सूक्ष्म जीवाणुओं एवं रोगों का संक्रमण रोका जा सकता है।

खाद, उर्वरक एवं सिंचाई : छंटाई करने के बाद प्रत्येक वृक्ष में 2 कि.ग्रा. यूरिया, 2 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 1.5 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं 50 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद गोलाई में नाली विधि से दें। उर्वरकों की आधी तथा गोबर खाद की पूरी मात्रा जुलाई माह में एवं शेष आधी उर्वरक की मात्रा अक्टूबर में पौधे के चारों तरफ गोलाई में डालकर गुड़ाई करना चाहिए। पौधों की मार्च एवं अक्टूबर माह में पर्याप्त सिंचाई करनी चाहिए।

अन्तः फसलें : वृक्षों की कटाई के बाद बीच में काफी खुली जगह मिल जाती है जिसमें अर्न्तफसलें जैसे अदरक, हल्दी, शकरकन्द, आलू, नेनुआ, खीरा आदि फसलों को उगाकर अतिरिक्त आमदनी अर्जित की जा सकती है।

नये कल्लों का विरलीकरण : काटी गई शाखाओं पर 3–4 माह बाद (मार्च–अप्रैल) बहुत से नये कल्ले निकलते हैं। उचित क्षत्रक विकास लिए इनका विरलीकरण बहुत आवश्यक होता है। कल्लों का विरलीकरण करते समय प्रत्येक शाखा में 8–10 स्वस्थ्य कल्ले ही रखना चाहिए। ध्यान रहे इन कल्लों में उचित दूरी रखें जिससे कल्लों का विकास एवं वृद्धि अच्छा हो सकें। कल्लों की उचित वृद्धि के लिए अक्टूबर माह में 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव करें।

कीट एवं रोग प्रबन्ध : कटाई–छंटाई के बाद आम के वृक्ष में तना भेदक कीट के नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यह कीट वृक्ष की छाल के अन्दर रहकर लकड़ी को कुतरकर बुरादा छेद से बाहर गिराता है। नियंत्रण के लिए कीड़ों द्वारा बनाये गये सुराख को लोहे के तार से साफ करके उसमें कीटनाशी दवा नुआन या किरोसिन या पेट्रोल में रूई भिगोकर ठूँसकर छेद को गीली मिट्टी से बन्द कर दें। नये कल्लों पर पत्ती काटनेवाली कीड़ों का बहुत प्रकोप होता है इसके नियंत्रण के लिए विरलीकरण के पश्चात् जुलाई माह में कार्बोरिल (सेविन) दवा का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के दर से घोल बनाकर 10–12 दिन के अन्तर पर 2–3 छिड़काव किया जा सकता है।

आम के वृक्षों की कटाई–छंटाई के लगभग 2–3 वर्ष अच्छी वानस्पतिक वृद्धि हो जाती है जिसमें पुष्पन एवं फलन आने लगते हैं। इस प्रकार यदि पुराने बगीचों का जीर्णोद्धार किया जाय तो लगभग 5–6 वर्षों बाद उनसे 50–60 कि.ग्रा. फल प्रति वृक्ष की दर से प्राप्त किया जा सकता है।

लीची

लीची का फल अपने आकर्षक रंग, स्वाद और गुणवत्ता के कारण भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। लीची उत्पादन में भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। पिछले कई वर्षों में इसके निर्यात की अपार संभावनाएँ विकसित हुई हैं, परन्तु अन्तरराष्ट्रीय बाजार में बड़े एवं समान आकार तथा गुणवत्ता वाले फलों की ही अधिक मांग है। अतः अच्छी गुणवत्ता वाले फलों के उत्पादन की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसकी खेती के लिए एक विशिष्ट जलवायु की आवश्यकता होती है, जो सभी स्थानों पर उपलब्ध नहीं है। अतः लीची की बागवानी मुख्य रूप से उत्तरी बिहार, देहरादून की घाटी, उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र तथा झारखण्ड प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में की जाती है। इसके अतिरिक्त पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में इसके सफल उत्पादन का प्रयास किया जा रहा है। फलों की गुणवत्ता के आधार पर उत्तरी बिहार ने लीची उत्पादन में अपना विशिष्ट स्थान बना रखा है। इसके फल 10 मई से लेकर जुलाई के अन्त तक देश के विभिन्न भागों में पक कर तैयार होते हैं एवं उपलब्ध रहते हैं। सबसे पहले लीची के फल त्रिपुरा में पक कर तैयार होते हैं। इसके बाद क्रमशः रांची (झारखण्ड), मुर्शीदाबाद (पं. बंगाल), मुजफ्फरपुर एवं समस्तीपुर (बिहार), उत्तर प्रदेश की तराई क्षेत्र, पंजाब, उत्तरांचल के देहरादून एवं पिथोरागढ़ की घाटी में फल पक कर तैयार होते हैं। बिहार की लीची अपनी गुणवत्ता के लिए देश–विदेश में प्रसिद्ध हो रही है। लीची के फल पोषक तत्वों से भरपूर एवं स्फूर्तिदायक होते हैं। इसके फल में शर्करा (11 प्रतिशत), प्रोटीन (0.7 प्रतिशत), वसा (0.3 प्रतिशत) एवं अनेक विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। लीची का फल मरीजों एवं वृद्धों के लिए भी उपयोगी माना गया है।

लीची के फल मुख्यतः ताजे रूप में ही खाए जाते हैं। इसके फलों से अनेक प्रकार के परिरक्षित पदार्थ जैसे – जैम, पेय पदार्थ (शरबत, नेक्टर, कार्बोनेटेड पेय) एवं डिब्बा बंद फल बनाए जाते है। लीची का शर्बत अपने स्वाद एवं खुशबू के लिए लोकप्रिय होता जा रहा है। 'लीची–नट', फलों को सुखाकर बनाया जाता है जो कि चीन इत्यादि देशों में बड़े चाव से खाया जाता है। लीची के अपरिपक्व खट्टे फलों को सूखाकर खटाई के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है।

लीची का बढ़ता निर्यात

अन्तरराष्ट्रीय बाजार में नवम्बर से मार्च तक आस्ट्रेलिया से, फरवरी से मार्च तक मॉरीशस से, नवम्बर से जनवरी तक दक्षिण अफ्रीका और मेडागास्कर से, लीची के फल उपलब्ध होते हैं। भारत से लीची का ताजा फल मई से जुलाई तक उपलब्ध होता है जिसे अन्तरराष्ट्रीय बाजार मे निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। चूंकि जब भारत में लीची तैयार होती है उस समय अन्तरराष्ट्रीय बाजार में लीची फलों का अभाव रहता है। अतः भारत अन्तरराष्ट्रीय बाजार में मुख्य निर्यातक के रूप में स्थापित हो सकता है। भारत से लीची निर्यात को बढ़ावा देने के लिए एपीडा की भूमिका प्रमुख है। एपीडा के रिपोर्ट के अनुसार 2000–2001 वर्ष में भारत से लगभग 1.52 करोड़ रूपये मूल्य का लीची का निर्यात किया गया जो मुख्य रूप से बेल्जियम, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, बहरीन, ओमान, कुवैत एवं नार्वे देश को हुआ।

भूमि एवं जलवायु

लीची की खेती के लिए सामान्य पी.एच.मान वाली गहरी बलुई दोमट मिट्टी अत्यन्त उपयुक्त होती है। उत्तरी बिहार की कैलकेरियस मृदा जिसकी जल धारण क्षमता अधिक है इसकी खेती के लिए उत्तम मानी गई है। लीची की खेती हल्की अम्लीय एवं लेटराइट मिट्टी में भी सफलतापूर्वक की जा रही है। अधिक जलधारण क्षमता एवं ह्यूमस युक्त मिट्टी में इसके पौधों में अच्छी बढ़वार एवं फलोत्पादन होता है। जल भराव वाले क्षेत्र लीची के लिए उपयुक्त नहीं होते अतः इसकी खेती जल निकास युक्त उपरवार भूमि में करने से अच्छा लाभ प्राप्त होता है।

समशीतोष्ण जलवायु लीची के उत्पादन के लिए बहुत ही उपयुक्त पायी गई है। ऐसा देखा गया है कि जनवरी–फरवरी माह में आसमान साफ रहने, तापमान में वृद्धि एवं शुष्क जलवायु होने से लीची में अच्छी मंजर आता है जिसमें ज्यादा फूल एवं फल लगते हैं। मार्च एवं अप्रैल में गर्मी कम पड़ने से लीची के फलों का विकास अच्छा होता है, साथ ही अप्रैल–मई में वातावरण में सामान्य आर्द्रता रहने से फलों में गूदे का विकास एवं गुणवत्ता में सुधार होता है। समआर्द्रता से फलों में चटखन भी कम हो जाती है। फल पकते समय वर्षा होने से फलों का रंग एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है।

किस्में

परिपक्वता के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर लीची की किस्मों की संस्तुति नीचे तालिका में की गई है।

पक्वता वर्ग	परिपक्वता	किस्में
अगेती	15–30 मई	शाही, त्रिकोलिया, अझौली, ग्रीन, देशी।
मध्यम	01–20 जून	रोज सेन्टेड, डी–रोज, अर्ली बेदाना, स्वर्ण रूपा,
पछेती	10–15 जून	चाइना, पूर्वी, कसबा।

कुछ प्रमुख किस्मों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है।

1. **शाही** : यह देश की एक व्यावसायिक एवं अग्रणी किस्म है जो दिन–प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही है। इस किस्म के फल गोल एवं गहरे लाल रंग वाले होते हैं जो 15–30 मई तक पक जाते हैं। फल में सुगन्धयुक्त गूदे की मात्रा अधिक होती है जो इस किस्म की प्रमुख विशेषता है। फल विकास के समय उचित जल प्रबन्ध से पैदावार में वृद्धि होती है। इस किस्म के 15–20 वर्ष के पौधे से 80–100 कि.ग्रा. उपज प्रति वर्ष प्राप्त की जा सकती है।
2. **चाइना** : यह एक देर से पकने वाली लीची की किस्म है जिसके पौधे अपेक्षाकृत बौने होते हैं। इस किस्म के फल बड़े, शक्वाकार तथा चटखन की समस्या से मुक्त होते हैं। फलों का रंग गहरा लाल तथा गूदे की मात्रा अधिक होने के कारण इसकी अत्यधिक मांग है। परंतु इस किस्म में एकान्तर फलन की समस्या देखी गई है। एक पूर्ण विकसित पेड़ से लगभग 60–80 कि.ग्रा. उपज प्राप्त होती है।
3. **स्वर्ण रूपा** : बागवानी एवं कृषि वानिकी शोध कार्यक्रम, राँची के गहन सर्वेक्षण एवं परीक्षण के फलस्वरूप स्वर्ण रूपा किस्म का चयन किया गया है जो छोटानागपुर के पठारी क्षेत्र के साथ–साथ देश के अन्य क्षेत्रों के लिए भी उपयुक्त है। इस किस्म के फल मध्यम समय में पकते हैं तथा चटखन की समस्या से मुक्त होते हैं। फल आकर्षक एवं गहरे गुलाबी रंग के होते हैं जिनमें बीज का आकार छोटा, गूदा अधिक, स्वादिष्ट एवं मीठा होता है।

पौधा प्रवर्धन

लीची की व्यावसयिक खेती के लिए गूटी विधि द्वारा तैयार पौधा का ही उपयोग किया जाना चाहिए। बीजू पौधों में पैतृक गुणों के अभाव के कारण अच्छी गुणवत्ता के फल नहीं आते हैं तथा उनमें फलन भी देर से होता है। गूटी तैयार करने के लिए मई–जून के महीने में स्वस्थ एवं सीधी डाली चुन कर डाली के शीर्ष से 40–50 से.मी. नीचे किसी गांठ के पास गोलाई में 2 से.मी. चौड़ा छल्ला बना लेते हैं। छल्ले के ऊपरी सिरे पर आई.बी.ए. के 2000 पी.पी.एम पेस्ट का लेप लगाकर छल्ले को नम मॉस घास से ढककर ऊपर से 400 गॉज की सफेद पालीथीन का टुकड़ा लपेट कर सुतली से कसकर बाँध देना चाहिए। गूटी बाँधने के लगभग 2 माह के अन्दर जड़े पूर्ण रूप से

विकसित हो जाती है। अतः इस समय डाली की लगभग आधी पत्तियों को निकालकर एवं मुख्य पौधे से काटकर नर्सरी में आंशिक छायादार स्थान पर लगा दिया जाता है। मॉस घास के स्थान पर तालाब की मिट्टी (40 कि. ग्रा.), अरण्डी की खली (2 कि.ग्रा.), यूरिया (20.0 ग्रा.) के सड़े हुए मिश्रण का भी प्रयोग कर सकते हैं। पूरे मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर एवं हल्का नम करके एक जगह ढेर कर देते हैं तथा उसे जूट के बोरे या पालीथीन से 15–20 दिनों के लिए ढक देते हैं। जब गूटी बांधनी हो तब मिश्रण को पानी के साथ आँटे की तरह गूँथ कर छोटी–छोटी लोई (200 ग्रा.) बना ले जिसे छल्लों पर लगाकर पालीथीन से बांध दें इस प्रकार गूटी बाँधने से जड़े अच्छी निकलती है एवं पौध स्थापना अच्छी होती है।

पौधा रोपण

लीची का पूर्ण विकसित वृक्ष आकार में बड़ा होता है। अतः इसे औसतन 10 x 10 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। लीची के पौध की रोपाई से पहले खेत में रेखांकन करके पौधा लगाने का स्थान सुनिश्चित कर लेते हैं। तत्पश्चात् चिन्हित स्थान पर अप्रैल–मई माह में 90 x 90 x 90 सेमी आकार के गड्ढे खोद कर ऊपर की आधी मिट्टी को एक तरफ तथा नीचे की आधी मिट्टी को दूसरे तरफ रख लेते हैं। वर्षा प्रारम्भ होते ही जून के महीने में 2–3 टोकरी गोबर की सड़ी हुई खाद (कम्पोस्ट), 2 कि.ग्रा. करंज अथवा नीम की खली, 1.0 कि.ग्रा. हड्डी का चूरा अथवा सिंगल सुपर फास्फेट एवं 50 ग्रा. क्लोरपाइरीफास धूल/20 ग्रा. फ्यूराडान/20 ग्रा. थीमेट–10 जी को गड्ढे की ऊपरी सतह की मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गड्ढा भर देना चाहिए। गड्ढे को खेत की सामान्य सतह से 10–15 सेमी ऊँचा भरना चाहिए। वर्षा ऋतु में गड्ढे की मिट्टी दब जाने के बाद उसके बीचों बीच में खुरपी की सहायता से पौधे की पिंडी के आकार की जगह बनाकर पौधा लगा देना चाहिए। पौधा लगाने के पश्चात् उसके पास की मिट्टी को ठीक से दबा दें एवं पौधे के चारों तरफ एक थाला बनाकर 2–3 बाल्टी (25–30 ली.) पानी डाल देना चाहिए। तत्पश्चात् वर्षा न होने की स्थिति में पौधों के पूर्णस्थापना होने तक पानी देते रहना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

प्रारम्भ के 2–3 वर्षों तक लीची के पौधों को 30 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 2 कि.ग्रा. करंज की खली, 250 ग्रा. यूरिया, 150 ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 100 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष की दर से देना चाहिए। तत्पश्चात् पौधे की बढ़वार के साथ–साथ खाद की मात्रा में वृद्धि करते जाना चाहिए। करंज की खली एवं कम्पोस्ट के प्रयोग से लीची के फल की गुणवत्ता एवं पैदावार में वृद्धि होती है। लीची के पौधों में फल तोड़ाई के बाद नए कल्ले आते हैं जिनपर अगले वर्ष फलन आती है। अतः अधिक औजपूर्ण एवं स्वस्थ कल्लों के विकास के लिये खाद, फॉस्फोरस एवं पोटाश की सम्पूर्ण एवं नेत्रजन की दो तिहाई मात्रा जून–जुलाई में फल की तोड़ाई एवं वृक्ष के काट–छांट के साथ–साथ देना चाहिये। परीक्षण से यह देखा गया है कि पूर्ण विकसित पौधों के तनों से 250–200 सेमी. की दूरी पर गोलाई में 60 सेमी. गहरी मिट्टी के मिश्रण से भर दें। इस प्रक्रिया से पौधों में नई शोशक जड़ों (फीडर रूट्स) का अधिक विकास होता है और खाद एवं उर्वरक का पूर्ण उपयोग होता है। खाद देने के पश्चात् यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई करना आवश्यक है। लीची के फलों के तोड़ाई के तुरन्त बाद खाद दे देने से पौधों में कल्लों का विकास अच्छा होता है एवं फलन अच्छी होती है। शेष नेत्रजन की एक तिहाई मात्रा फल विकास के समय जब फल मटर के आकार का हो जाएँ सिंचाई के साथ देना चाहिए। अम्लीय मृदा में 10–15 कि.ग्रा. चूना प्रति वृक्ष 3 वर्ष के अन्तराल पर देने से उपज में वृद्धि देखी गई है। जिन बगीचों में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे उनमें 150–200 ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति वृक्ष की दर से सितम्बर माह में अन्य उर्वरकों के साथ देना लाभकारी पाया गया है।

सिंचाई एवं जल संरक्षण

लीची के छोटे पौधों में स्थापना के समय नियमित सिंचाई करनी चाहिये। जिसके लिये सर्दियों में 5–6 दिनों तक गर्मी में 3–4 दिनों के अन्तराल पर थाला विधि से सिंचाई करनी चाहिए। लीची के पूर्ण विकसित पौधे जिनमें फल लगना प्रारम्भ हो गया हो उसमें फूल आने के 3–4 माह पूर्व (नवम्बर से फरवरी) पानी नहीं देना चाहिए। लीची के पौधों में फल पकने के छः सप्ताह पूर्व (अप्रैल के प्रारम्भ) से ही फलों की विकास तेजी से होने लगता है। अतः जिन पौधों में फलन प्रारम्भ हो गया है उनमें इस समय उचित जल प्रबन्ध एवं सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। पानी की कमी से फल का विकास रूक जाता है एवं फल चटखने लगते हैं। अतः उचित जल प्रबन्ध से गूदे का समुचित विकास होता है तथा फल चटखने की समस्या कम हो जाती है। विकसित पौधों में छत्रक के नीचे छोटे–छोटे फव्वारे लगाकर लगातार नमी बनाए रखा जा सकता है। शाम के समय बगीचे की सिंचाई करने से पौधों द्वारा जल का पूर्ण उपयोग होता है। बूँद–बूँद सिंचाई विधि द्वारा प्रतिदिन सुबह एवं शाम चार घंटा पानी (40–50) लीटर देने से लीची के फलों का अच्छा विकास होता है। लीची के सफल उत्पादन के लिए मृदा में लगातार उपयुक्त नमी का रहना अतिआवश्यक है। जिसके लिए सिंचाई के साथ–साथ मल्चिंग द्वारा जल संरक्षण करना लाभदायक पाया गया है। पौधे के मुख्य तने के चारों तरफ सूखे खरपतवार या धान के पुआल की अवरोध परत बिछाकर मृदा जल को संरक्षित किया जा सकता है। इससे मृदा के भौतिक दशा में सुधार, खरपतवार नियंत्रण एवं उपज अच्छी होती है।

पौधों की देख-रेख एवं काट-छाँट

लीची के पौधे लगाने के पश्चात् शुरूआत के 3–4 वर्षों तक समुचित देख–रेख करने की आवश्यकता पड़ती है। खासतौर से ग्रीष्म ऋतु में तेज गर्म हवा (लू) एवं शीत ऋतु में पाले से बचाव के लिए कारगर प्रबन्ध करना चाहिए। प्रारम्भ के 3–4 वर्षों में पौधों की अवांछित शाखाओं को निकाल देना चाहिए जिससे मुख्य तने का उचित विकास हो सके। तत्पश्चात् चारों दिशाओं में 3–4 मुख्य शाखाओं को विकसित होने देना चाहिए जिससे वृक्ष का आकार सुडौल, ढांचा मजबूत एवं फलन अच्छी आती है। लीची के फल देने वाले पौधों में प्रतिवर्ष अच्छी उपज के लिए फल तोड़ाई के समय 15–20 से•मी• डाली सहित तोड़ने से उनमें अगले वर्ष अच्छे कल्ले निकलते हैं तथा उपज में वृद्धि होती है। पूर्ण विकसित पौधों में शाखाओं के घने होने के कारण पौधों के आन्तरिक भाग में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता है जिससे अनेक कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप देखा गया है। अध्ययन में यह भी देखा गया है कि लीची के पौधों में अधिकतम फलन नीचे के एक तिहाई छत्रक से होती है तथा वृक्ष के ऊपरी दो तिहाई भाग से अपेक्षाकृत कम उपज प्राप्त होती है। अतः पूर्ण विकसित पौधों के बीच की शाखाएँ जिनका विकास सीधा ऊपर के तरफ हो रहा है, को काट देने से उपज में बिना किसी क्षति के पौधों के अन्दर धूप एवं रोशनी का आवागमन बढ़ाया जा सकता है। ऐसा करने से तना वेधक कीड़ों का प्रकोप कम होता है तथा पौधों के अन्दर के तरफ भी फलन आती है। फल तोड़ाई के पश्चात् सूखी, रोगग्रसित अथवा कैंची से शाखाओं को काट देना चाहिए। पौधों की समुचित देख–रेख, गुड़ाई तथा कीड़े एवं बीमारियों से रक्षा करने से पौधों का विकास अच्छा होता है एवं उपज बढ़ती है।

पूरक पौधों एवं अन्तरशस्यन

लीची के वृक्ष के पूर्ण रूप से तैयार होने में लगभग 15–16 वर्ष का समय लगता है। अतः प्रारम्भिक अवस्था में लीची के पौधों के बीच की खाली पड़ी जमीन का सदुपयोग अन्य फलदार पौधों एवं दलहनी फसलों/सब्जियों को लगाकर किया जा सकता है। इससे किसान भाइयों को अतिरिक्त लाभ के साथ–साथ मृदा की उर्वराशक्ति का भी विकास होता है। शोध कार्यों से यह पता चला है कि लीची में पूरक पौधों के रूप में अमरूद, शरीफा

एवं पपीता जैसे फलदार वृक्ष लगाए जा सकते हैं। ये पौधे लीची के दो पौधों के बीच में रेखांकित करके 5 x 5 मी. की दूरी पर लगाने चाहिए। इस प्रकार एक हेक्टेयर जमीन में लीची के 100 पौधे तथा 300 पूरक पौधे लगाए जा सकते हैं। अन्तशस्य के रूप में दलहनी, तिलहनी एवं अन्य फसलें जैसे बोदी, फ्रेंचबीन, भिण्डी, मूँग, कुल्थी, सरगुजा, मडुआ एवं धान आदि की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

पुष्पन एवं फलन

गूटी द्वारा तैयार लीची के पौधों में चार से पाँच वर्षों के बाद फूल एवं फल आना आरम्भ हो जाता है। प्रयोग से यह देखा गया है कि फूल आने के संभावित समय से लगभग तीन माह पहले पौधों में सिंचाई बंद करने से मंजर बहुत ही अच्छा आता है। लीची के पौधों में तीन प्रकार के फूल आते हैं। शुद्ध नर फूल सबसे पहले आते हैं जो मादा फूल आने के पहले ही झड़ जाते हैं। अतः इनका उपयोग परागण कार्य में नहीं हो पाता है। कार्यकारी नर फूल जिनमें पुंकेसर भाग अधिक विकसित तथा अंडाशय भाग विकसित नहीं होता है, मादा फूल के साथ ही आते हैं। इन्हीं नर पुष्पों से मधुमक्खियों द्वारा परागण होता है। लीची में उभयलिंगी मादा फूलों में ही फल का विकास होता है। इन फूलों में पुंकेसर अंडाशय के नीचे होता है अतः स्वयं परागण न होकर कीटों द्वारा परागण की आवश्यकता होती है इसलिये अधिक फलन के लिये मादा फूलों का समुचित परागण होना चाहिए और परागण के समय कीटनाशी दवाओं का छिड़काव नहीं करना चाहिए इससे फलन प्रभावित होती है।

अच्छी फलन एवं गुणवत्ता के लिये सुझाव

लीची के बगीचे में अच्छी फलन एवं उत्तम गुणवत्ता के लिये निम्नलिखित बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिएः

1. मंजर आने के सम्भावित समय से तीन माह पहले पौधों में सिंचाई न करें तथा अन्तरशस्यन फसल न लगाएँ।
2. मंजर आने के 30 दिन पहले पौधों पर जिंक सल्फेट (2 ग्रा./लीटर) के घोल का पहला एवं 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करने से मंजर एवं फूल अच्छे होते हैं।
3. फूल आते समय पौधों पर कीटनाशी दवा का छिड़काव न करें तथा बगीचे में पर्याप्त संख्या में मधुमक्खी के छत्ते रखें।
4. फल लगने के एक सप्ताह बाद प्लैनोफिक्स (2 मि.ली./4.8 ली.) या एन.ए.ए (20 मि.ग्रा./ली.) का एक छिड़काव करके फलों को झड़ने से बचाएँ।
5. फल लगने के 15 दिन बाद से बोरिक अम्ल (4 ग्रा./ली.) या बोरेक्स (5 ग्रा./ली.) के घोल का 15 दिनों के अन्तराल पर तीन छिड़काव करने से फलों का झड़ना कम हो जाता है, मिठास में वृद्धि होती है तथा फल के आकार एवं रंग में सुधार होने के साथ–साथ फल फटने की समस्या भी कम हो जाती है।

समस्याएँ एवं निदान

1. **फलों का फटना** : फल विकसित होने के समय भूमि में नमी तथा तेज गर्म हवाओं से फल अधिक फटते हैं। यह समरूप फल विकास की द्वितीय अवस्था (अप्रैल के तृतीय सप्ताह) में आती है जिसका सीधा संबंध भूमि में जल स्तर तथा नमी धारण करने की क्षमता से है। सामान्य तौर पर जल्दी पकने वाली किस्मों में फल चटखन की समस्या देर से पकने वाली किस्मों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। इसके निराकरण के लिए वायु रोधी वृक्षों को बाग के चारों तरफ लगाएँ तथा अक्टूबर माह में पौधों के नीचे मल्चिंग करें। मृदा में नमी बनाए रखने के लिए अप्रैल के प्रथम सप्ताह से फलों के पकने एवं उनकी तोड़ाई तक बाग की हल्की सिंचाई करें और पौधों पर जल छिड़काव करें। परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पानी के उचित प्रबन्ध के साथ–साथ फल लगने के 15 दिनों के बाद से 15 दिनों के अन्तराल पर पौधों पर बोरेक्स (5 ग्रा./ली0) या बोरिक अम्ल (4 ग्रा./ली.)

के घोल का 2–3 छिड़काव करने से फलों के फटने की समस्या कम हो जाती है एवं पैदावार अच्छी होती है।

2. **फलों का झड़ना** : भूमि में नेत्रजन एवं पानी की कमी तथा गर्म एवं तेज हवाओं के कारण लीची के फल छोटी अवस्था में ही झड़ने लगते हैं। खाद एवं जल की उचित व्यवस्था करने से फल झड़ने की समस्या नहीं आती है। फल लगने के एक सप्ताह पश्चात् प्लैनोफिक्स (2 मि.ली./4.8 ली.) या एन.ए.ए. (20 मि.ग्रा./ली.) के घोल का एक छिड़काव करने से फलों को झड़ने से बचाया जा सकता है।

3. **लीची की मकड़ी (लीची माइट)** : सूक्ष्मदर्शी मकड़ी के नवजात और वयस्क दोनों ही कोमल पत्तियों की निचली सतह, टहनियों तथा पुष्पवृंतों से चिपक कर लगातार रस चूसते रहते हैं, जिससे पत्तियाँ मोटी एवं लंबी होकर मुड़ जाती है और उनपर मखमली (भेल्वेटी) रूआँ सा निकल जाता है जो बाद में भूरे या काले रंग में परिवर्तित हो जााता है तथा पत्ती में गड्ढे बन जाते हैं। पत्तियाँ परिपक्व होने के पहले ही गिरने लगती हैं, पौधे कमजोर हो जाते हैं और टहनियों में फलन बहुत कम हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए समय–समय पर ग्रसित पत्तियों एवं टहनियों को काटकर जला देना चाहिए। सितम्बर–अक्टूबर में नई कोपलों के आगमन के समय केलथेन या फॉसफामिडान (1.25 मि.ली./लीटर) का घोल बनाकर 7–10 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव लाभप्रद पाया गया है।

4. **टहनी छेदक (शूट बोरर)** : इसके पिल्लू पौधों की नई कोपलों के मुलायम टहनियों से प्रवेश कर उनके भतरी भाग को खाते हैं इससे टहनियाँ मुरझा कर सूख जाती हैं और पौधों की बढ़वार रूक जाती है। इसके निराकरण के लिए प्रभावित टहनी को तोड़कर जला देना चाहिए एवं सायपरमेथ्रिन (1.0 मि.ली./ली.) या पाडान (2 ग्रा.ली) घोल का कोपलों के आने के समय 7 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव करना चाहिए।

5. **फल एवं बीज बेधक (फ्रूट एवं सीड बोरर)** : फल परिपक्व होने के पहले यदि मौसम में अच्छी नमी का समावेश होता है तो फल वेधक के प्रकोप की सुभावना बढ़ जाती है। इसकी पिल्लू लीची के गूदे के ही रंग के होते हैं जो डंठल के पास से फलों में प्रवेश कर फल को खाकर उन्हें हानि पहुँचाते हैं अतः फल खाने योग्य नहीं रहते। इसके प्रकोप से बचाव के लिए फल तोड़ाई के लगभग 40–45 दिन पहले से सायपरमेथ्रिन का दो छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करें।

6. **लीची बग** : अक्सर मार्च–अप्रैल एवं जुलाई–अगस्त के महीने में पौधों पर लीची बग का प्रकोप देखा जाता है। इसके नवजात और वयस्क दोनों ही नरम टहनियों, पतियों एवं फलों से रस चूसकर उन्हें कमजोर कर देते हैं व फलों की बढ़वार रूक जाती है। वृक्ष के पास जाने पर एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध से इस कीड़े के प्रकोप का पता लगाया जा सकता है। इससे बचाव के लिए नवजात कीड़ों के दिखाई देते ही मेटासिस्टाक्स (1.0 मि.ली./ली.) या फॉस्फामिडान (1.25 मि.ली./ली.) के घोल का दो छिड़काव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करें।

7. **छिलका खाने वाले पिल्लू (बार्क इटिंग कैटरपिलर)** : ये पिल्लू बड़े आकार के होते हैं जो पेड़ों के छिलके खाकर जीवन निर्वाह करते हैं एवं छिपकर रहते हैं। तनों में छेदकर अपने बचाव के लिए टहनियों के ऊपर अपनी विष्टा की सहायता से जाला बनाते हैं। इनके प्रकोप से टहनियाँ कमजोर हो जाती हैं और कभी भी टूटकर गिर सकती हैं। इसका रोकथाम जीवित छिद्रों में पेट्रोल या नुवान या फार्मलीन से भीगी रूई ठूँसकर चिकनी मिट्टी से बंद करके किया जा सकता है। इन कीड़ों से बचाव के लिए बगीचे को साफ रखना श्रेयस्कर पाया गया है।

उपज

लीची के पौधों में जनवरी–फरवरी में फूल आते हैं एवं फल मई–जून में पक कर तैयार हो जाते हैं। फल पकने के बाद गहरे गुलाबी रंग के हो जाते हैं और उनके ऊपर के छोटे–छोटे उभार चपटे हो जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में लीची के पौधों से उपज कम मिलती है। परन्तु जैसे–जैसे पौधों का आकार बढ़ता है फलन एवं उपज में वृद्धि

होती है। पूर्ण विकसित 15–20 वर्ष के लीची के पौधों से औसतन 70–100 कि.ग्रा. फल प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं।

लीची पौधों के उचित काट-छाँट द्वारा फलन में सुधार

लीची झारखण्ड प्रदेश का एक महत्वपूर्ण फल होता जा रहा है। यहाँ की जलवायु एवं मिट्टी लीची की खेती के लिए सर्वथा उचित है। पूर्व में ऐसा मानना था कि लीची केवल उत्तरी बिहार में ही हो सकता है, परन्तु अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो गया है कि झारखण्ड की लीची उत्तरी बिहार के लीची से किसी मामले में कम नहीं है। यहाँ की लीची अन्य स्थानों की तुलना में 15–20 दिन पहले पक कर तैयार हो जाती है तथा उनमें मिठास और गुणवत्ता भी अच्छी होती है। अतः झारखण्ड में लीची के बागीचों में विभिन्न कृषि क्रियाओं को सही समय और उचित तरीके से करना चाहिए। छोटे व नवजात पौधों की उचित काट–छांट तथा ढांचा निर्माण एवं फल देने वाले पौधों में काट–छाँट अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया है अतः इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

छोटे पौधों में काट-छाँट

लीची के नवजात पौधों में काट–छांट का मुख्य उद्देश्य ढांचों का निर्माण होता है। जिससे पौधे लम्बे समय तक सतत् रूप से फल दे सकें। प्रारम्भ के 3–4 वर्षों तक पौधों के मुख्य तने की अवांछित शाखाओं को निकाल देने से मुख्य तना का अच्छा विकास होता है और अन्तरशस्यन में भी आसानी रहती है। जमीन से लगभग 1 मी. ऊँचाई पर चारों दिशाओं में 3–4 मुख्य शाखाएँ रखने से पौधों का ढांचा मजबूत एवं फलन अच्छी होती है। समय–समय पर कैंची व सीधा ऊपर की ओर बढ़ने वाली शाखाओं को काटते रहना चाहिए।

फल देने वाले पौधों में काट-छांट

लीची के फलों की तोड़ाई के बाद उसमें नये कल्ले निकलते हैं जिन पर दिसम्बर–जनवरी में मंजर और फूल आते हैं। यदि फलों की तोड़ाई करते समय किसी तेज धारदार औजार से गुच्छे के साथ–साथ 15–20 सेमी. टहनियों को भी काट दिया जाय तो उन्हीं डालियों से जुलाई–अगस्त में औजपूर्ण एवं स्वस्थ कल्लों का विकास होता है जिस पर फलन अच्छी होती है।

लीची एक सदाबहार फलदार वृक्ष है जिसके पूर्ण विकसित पौधों में शाखाओं के घने होने के कारण एक तरफ तो पौधों के भीतरी भाग में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता वहीं दूसरी तरफ पौधों पर अनेक कीड़ों और बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है। लीची की अधिकतम फलन क्षत्रक के निचले एक तिहाई भाग में होता है। क्षत्रक के ऊपरी भाग पर लगने वाले फल या तो चिड़ियों द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं या फट जाते हैं जिससे कोई व्यावसायिक उपज नहीं मिल पाती। अतः पूर्ण विकसित पौधों के बीच की शाखाएँ जिनका विकास सीधा ऊपर के तरफ हो रहा है, इसे काट देने से पौधों के भीतरी भाग में धूप एवं रोशनी का आवागमन बढ़ाया जा सकता है साथ ही साथ क्षत्रक के अन्दर के तरफ भी गुच्छे लगने से उपज में बढ़ोत्तरी होती है। लीची के शाही किस्म के पौधों के बीच वाले भाग से शाखाओं को काट देने से उसमें 74 प्रतिशत कल्लों में मंजर आये और प्रति गुच्छे में फलों की संख्या 7.2 फल/गुच्छा रही। बिना काट–छांट किये हुए पौधों में केवल 11.1 प्रतिशत कल्लों में मंजर लगे और औसतन 0.2 फल/मंजर प्राप्त हुए।

इसके अतिरिक्त लीची के पौधों के अन्दर की पतली, सूखी तथा न फल देने वाली शाखाओं को उनके निकलने के स्थान से काट देने से अन्य शाखाओं में कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है। कटाई के बाद शाखाओं के कटे भाग पर कॉपर–ऑक्सीक्लोराइड तथा करंज के तेल के मिश्रण लेप लगा देने से किसी भी प्रकार के संक्रमण की समस्या नहीं रहती है। काट–छांट के पश्चात् पौधों की समुचित देखरेख, खाद एवं उर्वरक प्रयोग तथा पौधों के नीचे गुड़ाई करने से पौधों में अच्छे कल्लों का विकास होता है तथा उपज भी बढ़ती है।

पपीता

पपीता उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय (Tropical and Sub Tropical) क्षेत्रों का प्रमुख फल है। झारखण्ड राज्य पपीते की खेती के लिए वर्षों से जाना जाता रहा है। यहाँ पर पपीते के किस्मों में अपार विविधता देखी गयी है जिसके परिस्करण करके अनेक किस्मों का भी विकास किया गया है। पपीते के पके फल सम्पूर्ण उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में खाए जाते हैं। पपीते का उपयोग जैम, पेय पदार्थ, आइसक्रीम एवं सीरप इत्यादि बनाने में किया जाता है। इसके बीज भी औषधीय गुणों के लिए महत्वपूर्ण हैं। कच्चे फल सब्जी के रूप में उपयोग किए जाते हैं।

पपीते के अधपके फलों के सूखे लेटेक्स (सफेद तरल पदार्थ) से पपेन तैयार किया जाता है यह एक प्रोटियो लिटिक एन्जाइमक (पाचक एन्जाइम) है जो पेपसीन की तरह कार्य करता है। इसका उपयोग माँस को मुलायम करने, च्यूंगिगम (Chewing gum) तथा सौन्दर्य प्रसाधन बनाने में किया जाता है। इसे पाचकीय औषधि के रूप में काम में लाया जाता है। इसमें पाये जाने वाले प्रमुख तत्वों का विवरण निम्न तालिका में दिया जा रहा है।

नमी	–	89.6 प्रतिशत	विटामिन ए.	–	2020 आई.यू./100 ग्राम
प्रोटीन	–	0.5 प्रतिशत	विटामिन बी.2	–	0.04 मिलीग्राम/100 ग्राम
वसा	–	0.1 प्रतिशत	विटामिन सी.	–	40 मिलीग्राम/100 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	–	9.5 प्रतिशत	निकोटिनिक एसिड	–	0.2 मिलीग्राम/100 ग्राम
कैल्शियम	–	0.01 प्रतिशत	राइबोफलेभिन	–	250 मिलीग्राम/100 ग्राम
फास्फोरस	–	0.01 प्रतिशत	कैलोरी	–	40 मिलीग्राम/100 ग्राम
लौह तत्व	–	0.4 प्रतिशत			

उत्पत्ति एवं प्रसार

पपीता, दुनिया के उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण फल है। इसकी उत्पत्ति 'उत्तरी अमेरिका' में हुई है तथा भारत में इसे 'सोलहवीं' सदी में लाया गया है। वर्तमान में इसकी खेती सभी उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय देशों जैसे आस्ट्रेलिया, हवाई, ताइवान, पेरू, फ्लोरिडा, टेक्सास, केलिफोर्निया, गोल्ड कोस्ट, मध्य एवं दक्षिण अफ्रीका के बहुत सारे भाग, पाकिस्तान, बंग्लादेश एवं भारत में की जाती है।

उन्नत किस्में :

वाशिंगटन : फल गोल से अण्डाकार होते हैं। इनका आकार मध्यम से बड़ा हो सकता है जो लगभग 20 से.मी. लम्बा और 40 से.मी. गोलाकार तथा एक फल का वजन 1 किलो तक हो सकता है।

हनीड्यू : यह किस्म उत्तरी भारत में काफी प्रचलित है। इसके एक वृक्ष में फलों की संख्या काफी अधिक होती है जिसमें बीजों की संख्या काफी कम होती है तथा स्वादिष्ट होते हैं।

सी.ओ.-1 : यह रांची किस्म से चुना गया है। फल गोल एवं अंडाकार होते हैं जिसके रंग सुनहरे पीले होते हैं तथा गुद्दे नारंगी रंग के होते हैं।

सी.ओ.-2 : यह स्थानीय किस्मों से चुनी गई प्रजाति है। जिसके पौधों की ऊँचाई मध्यम से लेकर लम्बी हो सकती है।

सी.ओ.-3 : यह एक संकर प्रजाति है जो सी.ओ.–2 x सनराइज सोलो के क्रॉसिंग के द्वारा तैयार की गई है। इसके पौधे लम्बे तथा स्वस्थ होते हैं।

सी.ओ.-4 : यह भी एक संकर प्रजाति है जो सी.ओ.–1 x वाशिंगटन के क्रॉसिंग के द्वारा तैयार की गई है। इसके फल बड़े एवं गुदे मोटे होते हैं। इसे काफी दिनों तक रखा जा सकता है।

पूसा मेजिस्टी : इसके फल मध्यम एवं गोलाकार होते हैं। पौधों में जीवाणु जनित रोगरोधी क्षमता होती है।

पूसा जायेन्ट : यह एक डायोसियस प्रजाति है तथा पौधों में फल एक मीटर की ऊँचाई पर लगते हैं।

पूसा ड्वार्फ : पौधों में फल 25 से 30 से.मी. की ऊँचाई पर लगने शुरू हो जाते हैं। अण्डाकार फल लगभग 1–2 कि.ग्रा. के होते हैं। यह प्रजाति सघन बागवानी, पोषक वाटिका तथा गृह वाटिका के लिए उपयुक्त है।

पंत पपीता-1 : यह किस्म जी.वी.पंत कृषि एवं तकनीक विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा निकाला गया है। यह एक बौनी प्रजाति है जिसका फल गोलाकार, मध्यम आकार एवं चिकनी त्वचा वाले होते हैं। जिसमें फल 40–45 सेमी. पौधें की ऊँचाई पर लगते हैं। फलों का औसत वजन 1.0 से 1.5 कि.ग्रा. तक होता है तथा उपज 40–45 फल प्रति पौधे होता है। यह प्रजाति पपीते के सघन बागवानी के लिए उपयुक्त है।

पंत पपीता-2 : यह भी पंतनगर से निकाली गई प्रजाति है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई के होते हैं जिसमें फल 50–60 सेमी की ऊँचाई पर लगते हैं। फल लम्बे आकार के होते हैं तथा उनका औसत वजन 1.5 कि.ग्रा. होते हैं। प्रति पौधा फलों की संख्या 30–35 तक हो सकती है।

सभी पूसा प्रजातियाँ : आई.ए.आर.आई. के क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा बिहार से निकाली गई है।

अन्य प्रजातियाँ : गिराडिमीया, रेड फ्रेष्ट, फिलिपाइंस, मधुबिंदु, बाखानी, रांची इत्यादि।

मिट्टी : पपीता एक सदाबहार पौधा है तथा इसके लिए जैविक खाद युक्त उर्वरक मिट्टी उपयुक्त होती है जिसमें जलनिकास का उचित प्रबंध हो। इसके पौधे के जड़ में पानी का जमाव नहीं होना चाहिए।

जलवायु : उष्णकटिबंधीय जलवायु पौधे के लिए लाभदायक है। यह बहुत अंश तक गर्मी भी सहन कर सकता है लेकिन निम्न तापमान इसके फलों की बढ़ोत्तरी एवं पकने की क्षमता को कम कर देता है। पाला पड़ने से पपीते की फसल अधिक प्रभावित होती है अतः पाला प्रभावित क्षेत्रों में इसकी खेती नहीं करनी चाहिए।

क्षेत्रफल एवं उत्पादन : दुनिया के अनेक देशों में पपीता की खेती की जा रही है। भारत वर्ष में पपीता की खेती अनेक राज्यों में की जाती है। झारखण्ड राज्य के रांची, सिमडेगा, गुमला, हजारीबाग, लोहरदगा आदि जिलों में व्यवसायिक स्तर पर पपीता की खेती की जा सकती है। भारत में पपीता मुख्यतः केरल, भारत के विभिन्न राज्यों में पपीते उत्पादन का क्षेत्र एवं क्षमता निम्नांकित है :–

राज्य	क्षेत्र (000 हे.)	उत्पादन (000 टन)
असम	4.15	66.71
गुजरात	3.30	165.00
कर्नाटक	0.90	2.00
केरल	9.67	61.10
लक्ष्यद्वीप	0.04	0.30
मेघालय	0.36	3.43
राजस्थान	0.29	–
पं. बंगाल	1.30	32.50

पौध प्रसारण : 1. पपीते का प्रसार बहुधा बीज के द्वारा किया जाता है यह एक पर परागित (क्रॉस पॉलिनेटेड) फसल है। अतः इसका बीज उत्पादन सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

बीज दर : एक हेक्टेयर में पौधा लगाने के लिए 500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। मध्य जून से अक्टूबर के अंत तक बिचड़े तैयार करने का सही समय है। बीज में अंकुरण 15–20 दिनों में शुरू हो जाता है।

पपीते का प्रसार डाल काट कर भी किया जा सकता है परन्तु इसमें मेहनत और खर्च ज्यादा पड़ते हैं। इसमें अधिक संख्या में पौधों की आवश्यकता होती है जिससे उम्दा किस्म के बीज रहित फल वाले वृक्षों का चुनाव कर उससे कटिंग तैयार किए जाते हैं।

बीज से बिचड़ा तैयार करना :

पके फलों से बीज एकत्रित किया जाना चाहिए। बीज बोने के लिए खास तौर पर जमीन तैयार करनी चाहिए और क्यारी की मिट्टी को हल्की करने के बाद बीज बोना चाहिए। क्यारी में नमी की भरपूर मात्रा होनी चाहिए और उसे खर–पतवार से ढककर रखना चाहिए, जिससे की मृदा की नमी बनी रहे। जब पौधे 3–4 इंच के हो जाएँ तो उन्हें उखाड़कर एक दूसरे से 6 इंच की दूरी पर अलग क्यारी में लगाया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार सिंचाई अवश्य की जानी चाहिए। जब ये पौधे 9 इंच के हो जाएँ तो इन्हें उखाड़कर निश्चित स्थान में लगाया जाना चाहिए। डायोसिस किस्म के पौधे लगाते समय एक स्थान पर 3 बीचड़ों को लगाना चाहिए।

गड्ढे का आकार एवं खाद की मात्रा : गड्ढे का आकार – 45 x 45 x 45 सेमी.

खाद की मात्रा : वृक्षारोपण के छः महीने के बाद प्रति पौधा उर्वरक देना चाहिए, नाईट्रोजन–150–200 ग्राम, फॉस्फोरस–200–250 ग्राम, पोटाशियम–100–150 ग्राम। तीनों उर्वरक 2–3 खुराक में वृक्ष लगाने से पहले फूल आने के समय तथा फल लगने के समय दे देना चाहिए।

बिचड़े लगाने का समय : मध्य जून से नवम्बर। नर पौधे एक पोलिनेटर के रूप में कार्य करते हैं। प्रत्येक 20 मादा पौधों के साथ एक नर पपीते का पौधा लगाना चाहिए। (5–10 प्रतिशत तक नर पौधे लगाए जा सकते हैं)

सिंचाई : नमी की कमी और अधिकता के कारण फल उत्पादन कम हो जाता है, इसलिए जाड़े के दिनों में 15 दिन के अंतराल पर तथा गर्मी के दिन में 7–10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। जब पेड़ फल से लदा हो तो उस समय सिंचाई करना अति आवश्यक है।

निकाई-गुड़ाई : जिस खेत में पपीता लगा हो, वहाँ के खरपतवार को हटा देना चाहिए, क्योंकि पपीता की जड़ ऊपरी सतह में छितरायी रहती है। ऐसा नहीं करने से फल उत्पादकता घट सकती है। प्रथम वर्ष गहरी जुताई बहुत जरूरी है क्योंकि खरपतवार ज्यादा होने से पानी खेत में जम जाता है और पौधे मर जाते हैं।

मिट्टी चढ़ाना : वर्षा शुरू होने से पहले प्रति पेड़ गड्ढा में 30 सेमी. व्यास से मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए जिससे पेड़ सीधा रहे।

तुड़ाई : परिपक्व फल, एक दिन के अंतराल पर पक जाते हैं तथा उसके छिलके का रंग हरे से पीलेपन में परिवर्तित हो जाते हैं। जब फल का तरल पदार्थ (लेटेक्स) पानी की तरह हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि फल तैयार हो गया है। 12–14 महीने के अन्दर फल की पहली तुड़ाई हो जाती है। उत्तरी भारत में, फल बसंत ऋतु एवं गर्मी में तैयार हो जाता है। पहाड़ी क्षेत्रों में फरवरी से मई के महीनों में फल तैयार होते हैं।

उपज : पहले दो वर्ष, हमें अधिक उपज प्राप्त होती है वनस्पति, तीसरे वर्ष के। नायक (1949) के अनुसार – 30 से 50 फल प्रत्येक पेड़ (वजन 450 ग्राम से 7.2 किलो)। 40–45 फल प्रत्येक पेड़ (विश्वास 1981) वजन 1.2 ग्राम

से 3.4 कि.ग्रा.। हवाई में 30 से 80 टन/एकड़–सोलो पपीते की उपज प्राप्त की गई। राम (1983) के अनुसार, पूसा में, पूसा नन्हा किस्म से 60–65 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की गयी जिसमें दूरी 1.25 x 1.25 सेमी. दी गई थी।

पैकिंग एवं भण्डारण : इसके फल को एक सतही कार्टून बक्से में पैक किया जाता है जिसके अन्तर्गत दो फलों के बीच पैकेजिंग मेटेरियल को रखकर पैक किया जााता है। फलों के पकने तथा स्टोरेज (भण्डारण) के लिए लगभग 20 डि.से. तापमान उपयुक्त होता है।

पपेन : अपरिपक्व पपीते में दूधिया तरल पदार्थ पाया जाता है जिसके सूखे स्वरूप को 'पपेन' कहा जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में इसकी काफी महत्ता है जैसे औषधि मिल एवं टेनिन उद्योग में। इसका उपयोग क्रीम, दंतमंजन, सिल्क तथा रेऑन के कपड़ों को डिगमिग करने में होता है। अमाशय तथा आंत के कैंसर को पता लगाने में भी पपेन का उपयोग होता है। यह डिथेरिया के इलाज में भी सहायक होता है।

पपीते से पपेन उत्पादन

पपेन उत्पादन विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होता है। जो इस प्रकार है –

1. **फल का आकार** : पपेन निकालने में फल का आकार एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह पाया गया है कि अण्डाकार फलों मे पपेन की मात्रा अधिक होती है। 14'3 सेमी. लम्बे तथा 10'9 सेंमी. चौड़े फल में पपेन की सबसे अधिक मात्रा पायी गयी है।
2. **फलों की परिपक्वता** : अधपके परन्तु पूर्ण रूप से तैयार फल में अत्यधिक पपेन की मात्रा होती है। ढाई महीने या 75 दिन पुराने फल में पपेन की मात्रा अधिक पायी जाती है।
3. **मौसम** : बेकर (1950) ने पाया कि तरल पदार्थ (लेटेक्स) का प्रवाह न्यूनतम तापमान (10 डि.से.) में अधिक होता है। केन्द्रीय खाद्य तकनीक अनुसंधान संस्थान (मैसूर) के रिपोर्ट के अनुसार, पपेन की मात्रा अक्टूबर महीने में अधिक पायी जाती है।
4. **प्रजाति** : पपेन की मात्रा, पपीते की प्रजाति पर भी निर्भर करती है। माधवराय (1977 ए.) के अनुसार, सी. ओ.–2 नामक पपीते की प्रजाति में 100–120 कि.ग्रा. पपेन प्रति एकड़ पाया जाता है। 6 महीने के अंतराल में सी.ओ–2 प्रजाति द्वारा लगभग 686.29 ग्राम प्रति (700 ग्राम) पौधे पपेन निकाला जाता है।
5. **इथरेल का प्रभाव** : चाको एवं सहयोगी (1972) वैज्ञानिकों ने पाया कि कुर्ग हनीड्यिू नामक पपीते की प्रजाति में 200 पी.पी.एम. इथरेल का छिड़काव, तरल पदार्थ (लेटेक्स) के प्रवाह को 172 प्रतिशत तक बढ़ा देता है।
6. **पपेन उत्सर्जन** : पपीते के वैसे फल जो करीब 90–100 दिन पुराने हो (पूर्णतः परिपक्व परन्तु पके नहीं) को चुन लिया जाता है। सुबह के समय लगभग 10.00 बजे पपीते को काटकर इसके लेटेक्स को एक बर्तन में जमा कर लिया जाता है, जिसे धूप में (50–55 डि.से.) सुखाया जाता है। सुखाने से पहले पोटाशियम मेटाबाइसल्फेट (0.05 प्रतिशत) : लेटेक्स में मिलाया जाता है ताकि उसके भंडारण अवधि बढ़ जाए। सूखे पपेन को चूर्ण कर उसे बर्तन में संरक्षित कर लिया जाता है।
7. **पपेन की मात्रा (उपज)** : एक पपीते का पेड़ 227 ग्राम तक पपेन देता है। प्रति एकड़ 45.4 कि.ग्रा. पपेन का उत्पादन होता है।

पपीता की मुख्य समस्याएँ

पपीता में मुख्य रूप से नर पौधों की अधिकता तथा पौधों पर रिंग स्पाट वायरस या पपीता मोजैक वायरस तथा कालर राट की समस्या आती है। बगीचे में ज्यादा पेड़ों को छोड़कर नर पौधों को निकाल दें। परागण के लिए

10 प्रतिशत नर पौधों को छोड़ दें। अन्यथा गाइनोडायोसियस किस्मों का प्रयोग करें। रिंग स्पाट वायरस तथा मोजैक के नियंत्रण के लिए पौधों के छोटी अवस्था में ही वायरस फैलाने वाले कीटों (एफिड) के नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफास 1.25 मि.ली./ली. का 2–3 छिड़काव करें। वायरस के प्रकोप से बचने के लिए पौधों को भरपूर पोषण दें और एक स्थान पर एक साल ही फसल लें। पपीते की खेती स्थानों को बदल बदल कर लगायें तथा पिछले फसल के अवशेषों एवं रोग ग्रसित पौधों को नष्ट करते रहें। कालर राट के प्रकोप से पौधे जमीन के सतह से ठीक ऊपर गल कर गिर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए पौधशाला से पौधों को रिडोमिल (2 ग्रा./ली.) दवा का छिड़काव करें, खेत में जलभराव न होने दें और जरूरत पड़ने पर खड़ी फल में भी रिडोमिल (2 ग्रा./ली.) के घोल से जड़ सिंचन करें।

केला

हमारे देश के फलों में केले का प्रमुख स्थान है। इसकी खेती पूर्वी उत्तर प्रदेश में बढ़ती जा रही है। केले का फल बहुत पौष्टिक होता है। इसमें शर्करा एवं खनिज लवण जैसे फास्फोरस तथा कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी खेती निम्न बातों को ध्यान में रखकर की जाये तो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होगा।

भूमि

दोमट भूमि जिसका जल निकास अच्छा हो और भूमि का पी.एच. मान 6 से 7.5 के बीच हो।

गड्ढे की खुदाई

गड्ढे की लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई 60 x 60 x 60 से.मी.

खुदाई का समय अप्रैल–मई

गड्ढे की भराई

गोबर या कम्पोस्ट की सड़ी खाद 20–25 कि.ग्रा. या 2–3 टोकरी तथा 100 ग्राम बी.एच.सी. प्रति गड्ढा, उपरोक्त पदार्थों को गड्ढे की ऊपर की मिट्टी में मिश्रित करके जमीन की सतह से लगभग 10 से.मी. ऊँचाई तक भरकर सिंचाई कर देनी चाहिए जिससे मिट्टी मिश्रण गड्ढे में अच्छी तरह से बैठ जाए।

पौधों की दूरी एवं संख्या

पौधों एवं कतार की दूरी 1.5 x 1.5 मीटर, 4400 पौधे प्रति हेक्टेयर

लगाने का समय

15 मई से 15 जुलाई

जून का महीना सबसे उपयुक्त है।

किस्में

केले की अनेक किस्में हैं जो इस क्षेत्र में उगायी जा सकती हैं, जैसे – ड्वार्फ कैवेन्डिश, रोवस्टा, मालभोग, चिनिया, चम्पा, अल्पान, मुठिया/कुठिया तथा बत्तीसा। इन किस्मों के विषय में कुछ जानकारी नीचे दी जा रही है:–

1. **ड्वार्फ कैवेन्डिश** : यह सबसे प्रचलित एवं पैदावार देने वाली किस्म है। इस पर पनामा उक्ठा नामक रोग का प्रकोप नहीं होता है। इस प्रजाति के पौधे बौने होते हैं व औसतन एक घौंद (गहर) का वजन 22–24 कि.ग्रा. होता है जिसमें 160–170 फलियाँ आती हैं। एक फली का वजन 150–200 ग्रा. होता है। फल पकने पर पीला एवं स्वाद में उत्तम होता है। फल पकने के बाद जल्दी खराब होने लगता है।
2. **रोवेस्टा** : इस किस्म का पौधा लम्बाई में ड्वार्फ कैवेन्डिश से ऊँचा होता है और इसकी घौंद या गहर का वजन अपेक्षाकृत अधिक और सुडौल होता है। यह किस्म पर्णचित्ती रोग से अधिक प्रभावित होती है। परन्तु पनामा उकठा के प्रति पूर्णतया प्रतिरोधी है।
3. **मालभोग** : यह जाति अपने लुभावने रंग, सुगन्ध एवं स्वाद के लिये लोगों को प्रिय है। लेकिन पनामा उक्ठा रोग के प्रकोप से फसल को हानि होती है। इनके पौधे बड़े होते हैं। फल का आकार मध्यम और उपज औसतन होती है।

4. **चिनिया चम्पा** : यह भी खाने योग्य स्वादिश्ट किस्म है जिसके पौधे बड़े होते हैं जिसपर लम्बी घौंद लगती है। फल का आकार छोटा होता है। फल पकने पर पीले एवं स्वादिष्ट होते हैं जिसे कुछ समय के लिये बिना खराब हुए रखा जा सकता हे।

6. **मुठिया/कुठिया** : यह सख्त किस्म है। इसकी उपज जल के अभाव में भी औसतन अच्छी होती है। फल मध्यम आकार के होते हैं जिनका उपयोग कच्ची अवस्था में सब्जी हेतु एवं पकने पर खाने के लिये किया जाता है। फल का स्वाद साधारण होता है।

7. **बत्तीसा** : यह किस्म सब्जी के लिये काफी प्रचलित है जिसकी घौंद लम्बी होती है और एक गहर में 250–300 तक फलियाँ आती हैं।

पुत्तियों का चुनाव

2–3 माह पुरानी, तलवारनुमा पुत्तियां हों

टीसू कल्चर से प्रवर्धित पौधे रोपण के लिए सर्वोत्तम होते हैं क्योंकि इनमें फलन शीघ्र तथा समय पर होती है।

खाद एवं उर्वरक

300 ग्राम नाइट्रोजन, 100 ग्राम फासफोरस तथा 300 ग्राम पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष नाइट्रोजन को पाँच, फासफोरस को दो तथा पोटाश को तीन भागों में बाँट कर देना चाहिए। जिसका विवरण निम्नवत् है –

पौध रोपण के समय	:	फासफोरस 50 ग्राम
पौध रोपण के एक माह बाद	:	नाइट्रोजन 60 ग्राम
पौध रोपण के दो माह बाद	:	नाइट्रोजन (60 ग्राम) + फासफोरस (50 ग्राम) + पोटाश (100 ग्राम)
पौध रोपण के तीन माह बाद	:	नाइट्रोजन (60 ग्राम) + पोटाश (100 ग्राम)
फूल आने के दो माह पहले	:	नाइट्रोजन 60 ग्राम
फूल आने के एक माह पहले	:	नाइट्रोजन (60 ग्राम) + पोटाश (100 ग्राम)

खाद एवं उर्वरक को पौधे के मुख्य तने से 10–15 सेमी की दूरी पर चारों तरफ गुड़ाई करके मिट्टी में मिला देना चाहिए और पौधे की तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए।

सिंचाई

सामान्यतः बरसात में (जुलाई–सितम्बर) सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। गर्मियों में (मार्च से जून तक) सिंचाई 5–6 दिन के अंतराल पर करनी चाहिए। सर्दियों में (अक्टूबर से फरवरी तक) 12–13 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

अवरोध परत (मल्चिंग)

पौधों के नीचे पुआल अथवा गन्ने की पत्ती की 8 सेमी मोटी पर्त अक्टूबर माह में बिछा देनी चाहिए। इससे सिंचाई की संख्या में 40 प्रतिशत की कमी हो जाती है, खर पतवार नहीं उगते तथा उपज एवं भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है।

पुत्ती निकलना

पौधे के बगल से निकलने वाली पुत्तियों को 20 सेमी तक वृद्धि करने के पहले ही भूमि की सतह से काट कर निकालते रहना चाहिए। मई–जून के महीने में एक पुत्ती हर पौधे के पास अगले वर्ष पेड़ की फसल के लिए छोड़ देना चाहिए।

नर फूल से गुच्छे काटना

फल टिकाव हो जाने पर घार के अगले भाग पर लटकते नर फूल के गुच्छे को काट देना चाहिए।

सहारा देना

घार निकलते समय बांस/बल्ली की कैंची बनाकर पौधों को दो तरफ से सहारा देना चाहिए।

मिट्टी चढ़ाना

बरसात से पहले एक पंक्ति के सभी पौधों को दोनों तरफ से मिट्टी चढ़ाकर बाँध देना चाहिए।

कीट एवं रोग नियंत्रण

पत्ती विटिल : यह कीट कोमल पत्तों तथा ताजे बने फलों के छिलके को खाता है। प्रकोप अप्रैल–मई प्रारम्भ होकर सितम्बर–अक्टूबर तक रहता है। रोकथाम के लिए इन्डोसल्फान 2 मिली अथवा कार्वरिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पहला छिड़काव फूल आने के तुरन्त बाद तथा दूसरा इसके 15 दिन बाद करना चाहिए।

केले का घुन (बनाना विविल) : इस कीट के प्रौढ़ तथा सुंडियाँ दोनों हानिकारक होते हैं। इसका प्रकोप बरसात से अधिक होता है। भूमि सतह के पास तने अथवा प्रकन्द में छेद बनाकर मादा अंडे देती है। इनसे सुंडियाँ निकलकर तने में छेद करके खाती रहती है। इसके फलस्वरूप सड़न पैदा हो जाती है तथा पौधा कमजोर होकर गिर जाता है।

इसकी रोकथाम हेतु -

क. स्वस्थ कन्द लगाने चाहिए।

ख. कदों को लगाने से पहले साफ करके एक मिली फासफेमिडान अथवा 1.5 मिली मोनोक्रोटोफॉस प्रति लीटर पानी के बने घोल में 12 घंटे तक डुबो कर उपचारित कर लेना चाहिए।

ग. अधिक प्रकोप होने पर एक मिली फासफेमिडान प्रति 3 लीटर पानी अथवा डाईमेथियोयेट 1.0 मिली अथवा आक्सीडीमेटान मिथाइल 1.25 मिली का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर 15–20 दिन बाद यह छिड़काव दुबारा कर देना चाहिए।

पनामा बिल्ट : यह कवक के कारण होता है। इसके प्रकोप से पौधे की पत्तियाँ पीली पड़कर डंठल के पास से नीचे झुक जाती है। अंत में पूरा पौधा सूख जाता है। रोकथाम के लिए बैविस्टीन के 1.5 मि.ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल से पौधों के चारों तरफ की मिट्टी को 20 दिन के अंतर से दो बार तर कर देना चाहिए।

तना गलन (सूडोहर्ट राट) : यह रोग फफूंदी के कारण होता है। इसके प्रकोप से निकलने वाली नई पत्ती काली पड़कर सड़ने लगती है। इससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है और पौधा पीला पड़कर सूखने लगता है। रोकथाम हेतु डाइथेन एम.–45 के 2 ग्राम अथवा बैविस्टीन के 1.0 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल का 2–3 छिड़काव आवश्यकतानुसार 10–15 दिन के अन्तर से करना चाहिए।

लीफ स्पाट : यह रोग कवक के कारण होता है। पत्तियों पर पीले भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। पौधा कमजोर हो जाता है तथा बढ़वार रूक जाती है। रोकथाम हेतु डाईथेन एम.–45 के 2 ग्राम अथवा कापर आक्सीक्लोराइड के 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल 2–3 छिड़काव 10–15 दिन के अंतर से करना चाहिए।

बन्चीटाप : यह विषाणु द्वारा होता है तथा माहूँ द्वारा फैलता है। रोगी पौधों की पत्तियाँ छोटी होकर गुच्छे का रूप धारण कर लेती हैं। पौधों की वृद्धि रूक जाती है तथा फलन नहीं होती है। रोकथाम हेतु प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए। अगली फसल के रोपण हेतु रोग प्रभावित बाग से पुत्तियाँ नहीं लेनी चाहिए। माहूँ के नियंत्रण के लिए दैहिक रसायन जैसे डाईमथियोयेट 1.0 मिली. प्रति लीटर पानी अथवा 1.0 मिली. फासफेमिडान प्रति 3 लीटर पानी के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

फलन एवं तोड़ाई

केले में रोपण के लगभग 12 माह बाद फूल आते हैं। इसके लगभग 3½ माह बाद घार काटने योग्य हो जाती है। जब फलियाँ तिकोनी न रहकर गोलाई ले लें तो इन्हें पूर्ण विकसित समझना चाहिए।

उपज

एक हेक्टेयर बाग से 60–70 टन उपज प्राप्त की जा सकती है जिससे शुद्ध आय 60–70 हजार तक मिल सकती है।

अमरूद

अमरूद भारत वर्ष का एक प्रमुख फल है जिसकी 1,51,501 हे. भूमि में खेती से 1,63,140 मि.टन (1997–98) उपज प्राप्त हुई। इसके निर्यात से लगभग 10 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। इसकी खेती प्रमुख रूप से उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, बस्ती, फैजाबाद के साथ–साथ आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र, महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र, गुजरात के उत्तरी एवं मध्य क्षेत्रों तथा झारखंड में सफलतापूर्वक की जाती है। अमरूद का फल ताजे रूप में खाने के अलावा परिरक्षित पदार्थ (जैसे स्क्वैश, नेक्टर, साइडर तथा जूस निकालने के बाद बचे गूदे से टॉफी) बनाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। अमरूद के फलों में विटामिन 'सी', लौह एवं अन्य खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

भूमि एवं जलवायु

अमरूद की सफल खेती के लिए उचित जल निकासयुक्त बलुई–दोमट मिट्टी उत्याधिक उपयुक्त पायी गई है। झारखंड क्षेत्र की उपरवार मिट्टी जिसका पी.एच. मान सामान्य से थोड़ा कम है अमरूद की खेती के लिए उपयुक्त साबित हो रही है।

यह एक उष्ण कटिबन्धीय फल वृक्ष है जो झारखंड के कम आर्द्रता वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। उष्ण जलवायु के कारण इस क्षेत्र में अमरूद लम्बे समय तक मिलता रहता है, परन्तु हस्त बहार के फल जो शरद ऋतु में पककर तैयार होते हैं सबसे अच्छे माने जाते हैं। झारखंड की उष्ण कटिबंधीय जलवायु में अमरूद के पौधों में फूल मध्य मार्च से आने प्रारम्भ हो जाते हैं जो रूक–रूक कर सितम्बर तक आते रहते हैं एवं इसके फल अगस्त के मध्य से मार्च के अन्त तक प्राप्त होते रहते हैं। इस प्रकार की संभावनायें देश के अन्य जगहों पर संभवतः बहुत कम पायी जाती हैं। यदि नवम्बर से मार्च तक अमरूद में सिंचाई की व्यवस्था की जाये तो इसके फल गुणवत्ता में इलाहाबाद के समतुल्य देखे गये हैं।

किस्में

सरदार (लखनऊ-49) : इस किस्म के वृक्ष मध्य ऊँचाई एवं फैलाव वाले होते हैं। यह एक व्यावसायिक किस्म है जिसके फल अण्डाकार, हल्के हरे से पीले तथा कभी–कभी चित्तीदार होते हैं। इसमें गूदा अधिक एवं बीज कठोर होता है।

इलाहाबाद सफेदा : इसके वृक्ष मध्यम आकार और अधिक फैलावदार होते हैं। फल का आकार गोल से चपटा गोल होता है, जो पकने पर हल्के पीले रंग का हो जाता है। इस किस्म के फलों में बीज मुलायम तथा मिठास अधिक होती है। यह एक व्यवसायिक किस्म है जो इलाहाबाद के गंगीय मैदान में बहुत प्रचलित है।

अर्का मृदुला : यह इलाहाबाद सफेदा के बीजू पौधे से चयनित किस्म है। इसके वृक्ष छोटे, मध्यम आकार वाले एवं फैलावदार होते हैं। इस किस्म के फल गोल एवं चपटे आकार के होते हैं जिसमें बीज कम एवं मुलायम होता है। इसका गूदा अधिक मुलायम, मीठा एवं स्वादिष्ट होता है।

अमरूद के प्रमुख किस्मों का तुलनात्मक विवरण निम्नवत् है :

किस्म	फल वजन (ग्रा.)	फल की लंबाई (सेमी)	फल की चौड़ाई (सेमी)	कुल घुलनशील ठोस (ब्रिक्स)	अम्लता (%)	विटामिन 'सी' (मि. ग्रा.) 100 ग्रा.	बीज का गुण
लखनऊ–49	235	6.2	6.7	9.5	0.77	150.6	कठोर
इलाहाबाद सफेदा	210	5.0	5.9	11.6	0.98	120.4	मुलायम
अर्का मृदुला	225	5.7	6.0	11.9	0.91	115.8	अति मुलायम
चित्तीदार	285	6.2	7.0	10.5	0.70	149.2	कठोर
एपल कलर	155	5.2	5.9	8.2	0.91	10.0	कठोर
बनारसी	170	5.6	5.0	10.0	0.84	110.5	मुलायम
संगम	145	4.2	4.5	9.2	0.98	100.6	कठोर
बेहट कोकोनेट	210	4.2	6.2	11.2	0.84	120.0	कठोर
पियर शेप्ड	175	4.4	5.0	9.0	0.91	115.0	कठोर
मुस्तफापुर	145	5.4	5.9	9.0	0.98	150.0	कठोर

पौध प्रवर्धन

व्यावसायिक खेती के लिए अमरूद के पौधे वानस्पतिक विधि से तैयार किये जाते हैं। इस विधि से तैयार पौधे फलन जल्दी देते हैं और किस्म की सत्यरूपता बनी रहती है। इस विधि में गूटी लगाना, दाबा लगाना (स्टूल लेयरिंग) तथा चश्मा बाँधना (पैचबंडिंग) प्रमुख है।

गूटी द्वारा : गूटी तैयार करने के लिए जून–जुलाई के महीने में चुनी हुई डाली पर शीर्ष से 40–50 सेमी. पहले गांठ के पास 2 सेमी. की छाल उतार कर छल्ला बनाते हैं। छल्ले के ऊपरी सिरे पर 1000 पीपी.एम., आई.बी.ए. का लेप लगाकर छल्ले को नम मॉस घास से ढककर 300 गॉज की पॉलीथीन का टुकड़ा लपेट कर सुतली से कस कर बांध देते हैं। गूटी बांधने के करीब 2 माह के अन्दर जड़े निकल आती हैं अतः इस समय डाली की लगभग आधी पत्तियों को निकाल कर एवं मुख्य पौधे से काटकर पौधशाला में आंशिक छायादार स्थान पर लगा दिया जाता है। मॉस घास के स्थान पर तालाब की मिट्टी (40 किग्रा.), सड़ी हुई गोबर की खाद (40 कि.ग्रा.), जूट के बोरे का सड़ा हुआ टुकड़ा (10 किग्रा.) तथा करंज की खली (10 कि.ग्रा.) के सड़े मिश्रण का भी प्रयोग कर सकते हैं।

स्टूल लेयरिंग : स्टूल लेयरिंग करने के लिए गूटी द्वारा तैयार पौधे की 2 x 2 मी. की दूरी पर नर्सरी में लगाते हैं। जब पौधा एक से दो वर्ष पुराना हो जाये तो उसे मार्च–अप्रैल में जमीन के बराबर काट देते हैं। काटने के बाद उससे कई नये कल्ले निकलते हैं। इन कल्लों पर जमीन से 5–6 सेमी की ऊँचाई पर गूटी की भांति ही छल्ला बनाकर आई.बी.ए. पेस्ट लगाते हैं। तत्पश्चात गोबर की सड़ी खाद तथा मिट्टी को अच्छी तरह मिलाकर छल्ले को ढक देते हैं। पौधे को आवश्यकतानुसार समय–समय पर सिंचाई करते रहते हैं। स्टूल लेयरिंग में 2 माह के अन्दर जड़ें निकल आती हैं जिनको मुख्य पौधे से अलग करके छायादार स्थान पर लगा दिया जाता है। स्टूलिंग करते समय एक 'नर्स शूट' (बिना छल्ला की हुई) छोड़ देते हैं जो पौधे को भोजन देता रहता है।

पैच बडिंग : पैच बडिंग द्वारा पौधा तैयार करने के लिए एक साल पुराने बीजू पौधों को मूलवृन्त के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस केन्द्र पर किये गये अध्ययन में मई–जून का महीना अमरूद में पैच बडिंग के लिए सबसे उपयुक्त पाया गया है।

पौधा रोपण एवं देखरेख

अमरूद का पौधा अपेक्षाकृत छोटे कद का होता है। अतः इसे 5 x 5 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। झारखंड में अमरूद के पौधों को आम, लीची, आँवला और कटहल के बाग में पूरक पौधों के रूप में भी लगाया जा सकता है। प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक फल पैदा करने के लिए अमरूद को 2.5 x 2.5 x 5 मी. की दूरी पर 'डबल हेज रो' तरीके से लगाया जा सकता है। इस क्षेत्र में पौधा लगाने के लिए जुलाई से सितम्बर का समय अत्यन्त उपयुक्त पाया गया है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहाँ फरवरी–मार्च में भी पौध रोपण किया जा सकता है। पौधा लगाने के एक माह पहले निर्धारित दूरी पर 60 x 60 x 60 सेमी आकार के गड्ढे तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढे को सड़ी खाद, 1 कि.ग्रा. करंज/नीम की खली तथा 60 ग्राम एन.पी.के. का मिश्रण मिलाकर गड्ढे को अच्छी तरह भर दें। एक बरसात के बाद जब गड्ढे की मिट्टी दब जाये तब जुलाई के महीने में पौधों की गड्ढे के बीचोबीच में लगाये। पौधा लगाने के बाद उसके चारों किनारों की मिट्टी से अच्छी तरह दबा दें। पौधे के चारों तरफ एक थाला बनाकर 10–15 ली. पानी दे दें एवं पौधों की पूर्ण रूप से स्थापना तक पानी देते रहें।

अमरूद के पौधों में सुन्दर एवं मजबूत ढांचा देने के लिए 2–3 वर्ष तक कटाई–छंटाई की जाती है। ढांचा देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जमीन से 30–40 सेमी तक मुख्य तने पर कोई शाखा न हो। इसी ऊँचाई पर मुख्य तने से 3–4 शाखाओं को चारों तरफ समान रूप से निकलने देनी चाहिए। तदोपरान्त पौधे के आकार को नियमित रखने एवं अच्छी पैदावार के लिए समय–समय पर आवश्यक काट–छांट करते रहना चाहिए।

अमरूद के छोटे पौधों में नियमित सिंचाई करते रहना चाहिए। सर्दियों में 20–25 दिन तथा गर्मियों में 10–15 दिन के अन्तराल पर परिवर्तित थाला विधि से सिंचाई करते रहने से पौधों का विकास अच्छा होता है। सिंचाई के बाद समय–समय पर गुड़ाई एवं घास निकालते रहना चाहिए। जब पौधा फलन में आ जाता है तो निर्धारित मौसम की फसल लेने के लिए आवश्यकतानुसार सिंचाई करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। झारखण्ड क्षेत्र में यह देखा गया है कि यदि अक्टूबर माह में पौधों के थालों मे पुवाल या घास की पलवार बिछा दी जाये तो फल उपज और गुणवत्ता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

खाद एवं उर्वरक

अमरूद के बाग से अच्छी गुणवत्तायुक्त अधिक फलोत्पादन के लिए संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग आवश्यक होता है। इस क्षेत्र के लिए पौधों के उम्र के अनुसार निम्नलिखित खाद एवं उर्वरक की मात्रा संस्तुति की गयी है जिसे दो भागों में बांट कर पहला भाग जून–जुलाई तथा दूसरा भाग अक्टूबर माह में देना चाहिए। जून–जुलाई में गोबर की सड़ी खाद, फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा तने से एक मी. दूरी पर पौधों के क्षत्रक के नीचे गोलाई में 15 सेमी. गहरी नाली/खाई में देकर मिट्टी से ढक दें। यूरिया की बची आधी मात्रा को अक्टूबर में पेड़ों के क्षत्रक के नीचे देकर मिट्टी में मिला दें। यदि बरसात न हो रही हो तो खाद के बाद पानी देना आवश्यक होता है जिससे नमी बनी रहे।

पौधे की आयु (वर्ष)	गोबर की सड़ी खाद (कि.ग्रा.)	यूरिया (ग्रा.)	सुपरफास्फेट (ग्रा.)	पोटेशियम सल्फेट (ग्रा.)
1	15	260	375	100
2	30	500	750	200
3	45	780	1125	300
4	60	1050	1500	400
5 वर्ष और अधिक	75	1300	1975	500

फसल प्रबन्धन

साधारणतः अमरूद के पौधों में साल में तीन बार फूल और फल लगते हैं। पहली फसल के फूल फरवरी–मार्च में आते हैं, जिनके फल मई–जून में पककर तैयार होते हैं। इसे 'अम्बे बहार' कहा जाता है। जिन स्थानों पर सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो वहाँ पर 'अम्बे बहार' की फसल से अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। दूसरी फसल के फूल मई–जून में आते हैं जिसे 'मृग बहार' कहा जाता है। इस बहार के फल बरसात के मौसम में पककर तैयार होते हैं जिसके कारण फलों की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है और उसमें फल छेदक कीट के साथ–साथ बिमारियों का भी प्रकोप अधिक होता है। तीसरी फसल के फूल अक्टूबर–नवम्बर में आते हैं जिसे 'हस्त बहार' कहा जाता है। इस फसल के फल जाड़े में (जनवरी–फरवरी) तैयार होते हैं। इस फसल में अपेक्षाकृत अधिक उपज एवं गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं। झारखण्ड प्रदेश की जलवायु में 'हस्त बहार' की फसल से किसानों को अन्य किसी भी फसल की अपेक्षा अधिक गुणवत्ता के फल एवं ज्यादा उपज प्राप्त होती है। ऐसा देखा गया है कि 'मृग बहार' की फसल को नियंत्रित करने से 'हस्त बहार' की फसल अच्छी होती है। जिसके लिए एक फसल नियमन तकनीक का भी विकास किया गया है जो व्यवसायिक दृष्टि से सरल एवं लाभप्रद है। इसके अन्तर्गत अप्रैल–मई में 10 दिनों के अन्तराल पर पौधों पर यूरिया के 15 प्रतिशत घोल का दो छिड़काव कर दिया जाता है जिससे आने वाले फूल एवं पत्तियाँ गिर जाती हैं। तत्पश्चात् पर्णीय शक्ति से 'हस्त बहार' की फसल में अधिक ओजपूर्ण फूल और फल आते हैं। जिससे उपज में वृद्धि होती है।

उपज एवं विपणन

अमरूद के फल अधपके अवस्था में ही पसन्द किये जाते हैं अतः फलों के रंग एवं गूदे की कठोरता के अनुसार ही तुड़ाई करना चाहिए। दो पत्ती सहित फलों की तुड़ाई 2–3 दिनों के अन्तराल पर करने से बाजार में अच्छी कीमत प्राप्त होती है। फलों को बांस या अरहर के टोकरियों में अमरूद की पत्ती या अखबार के एक तह पर रखकर बाजार में भेजा जा सकता है।

अमरूद का पौधा लगाने के दो वर्ष बाद फल देने लगता है। पाँच वर्ष के एक पौधे के औसतन 30–40 कि.ग्रा. तथा 10 वर्ष पुराने पौधे से 70–80 कि.ग्रा. फल प्रति वर्ष प्राप्त हो जाता है। यदि अच्छी देखरेख की जाये तो अमरूद के बाग से 15–25 वर्ष तक फल का उपज प्राप्त कर सकते हैं।

कीट, रोग एवं नियंत्रण

फल-मक्खी : इस कीट के नवजात भीतरी भाग को खाते हैं। इसकी मादा परिपक्व फलों को छेदकर अंडे देती है। 2–3 दिन बाद अंडे से सूंडी निकल कर गूदे को खाना शुरू कर देती है। प्रभावित फल सड़कर गिर जाते हैं। सूंडी 12–15 दिन बाद फलों के अन्दर या भूमि में प्यूपा में बदल जाती है और बाद में मक्खी बनकर उड़ जाती है। बरसात के फलों को यह मक्खी अधिक प्रभावित करती है। फल–मक्खी के नियंत्रण के लिए साइपरमेथ्रिन 2.0 मि.ली/ली. या मोनोक्रोटोफॉस 1.5 मिली./ली. की दर से पानी में घोल बनाकर फल परिपक्वता के पूर्व 10 दिनों के अन्तर पर 2–3 छिड़काव करें। प्रभावित फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए तथा बागीचे में फल मक्खी के वयस्क नर को फंसाने के लिए फेरोमोन ट्रेप लगाने चाहिए।

तना वेधक : यह अमरूद का एक हानिकारक कीट है जिसका प्रकोप उन बागों में अधिक होता है जिनकी देख–रेख ठीक से नहीं की जाती है। इस कीट के सूंडी मुलायम प्रारोहों के ऊपरी भाग को छेद कर नुकसान पहुँचाती है। इसके रोकथाम हेतु तनें के छिद्रों को साफ कर नुवान (2 मि.ली./ली. पानी) के घोल में रूई भिगा कर छिद्रों में भर कर गीली मिट्टी से बन्द कर देते हैं।

उकठा रोग : उकठा रोग फफूँद के प्रभाव से होता है। रोगग्रस्त पौधे 2–4 सप्ताह में मुरझा कर मर जाते हैं। कभी–कभी आंशिक मुरझा क्लान्ति से कुछ डाल सूख जाते हैं तथा कुछ हरे रहते हैं, पर ऐसे पेड़ भी अगले वर्ष पूर्ण रूप से सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कालीसेना (एस्पर्जिलस नाइजर के व्यवसायिक स्वरूप) नामक जैव कीटनाशी का पौधरोपण के समय प्रयोग करने से आंशिक सफलता मिली है। इस जैव कीटनाशी की 50 ग्रा. मात्रा व 5 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ गड्ढे में मिलाकर पौध रोपाई करें। पौधों में पोटेशियम एवं करंज की खली के प्रयोग से उकठा रोग की उग्रता में कमी पायी गयी है।

जस्ता की कमी : जस्ता तत्व की कमी होने से पत्तियों का पीला पड़ना, छोटा होना तथा पौधे की बढ़वार कम हो जाने के लक्षण मिलते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 2 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव अथवा 300 ग्रा. जिंक सल्फेट (कृषि ग्रेड) का पौधों की जड़ों में देना लाभप्रद पाया गया है।

आँवला

युफोरबिएसी परिवार का पौधा है। यह भारतीय मूल का एक महत्वपूर्ण फल है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसे विभिन्न नामों, जैसे, हिन्दी में 'आँवला', संस्कृत में 'धात्री' या 'अमलकी', बंगाली एवं उड़ीया में, 'अमला' या 'अमलकी', तमिल एवं मलयालम में, 'नेल्ली', तेलगु में 'अमलाकामू', गुरूमुखी में, 'अमोलफल', तथा अंग्रेजी में 'ऐम्बलिक', 'माइरोबालान' या इन्डियन गूजबेरी के नाम से जाना जाता है। अपने अद्वितीय औषधीय एवं पोषक गुणों के कारण, भारतीय पौराणिक साहित्य जैसे वेद, स्कन्दपुराण, शिवपुराण, पद्मपुराण, रामायण, कादम्बरी, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता में इसका वर्णन मिलता है। महर्षि चरक ने इस फल को जीवन दात्री अथवा अमृतफल के समान लाभकारी माना है। अतः इसे अमृत फल तथा कल्प वृक्ष के नाम से भी जाना जाता है। आँवले की विशेषतायें हैं, प्रति इकाई उच्च उत्पादकता (15–20 टन / हेक्टेयर), विभिन्न प्रकार की भूमि (उसर, बीहड़, खादर, शुष्क, अर्धशुष्क, कान्डी, घाड़) हेतु उपयुक्तता, पोषण एवं औषधीय (विटाामिन सी, खनिज, फिनॉल, टैनिन) गुणों से भरपूर तथा विभिन्न रूपों में (खाद्य, प्रसाधन, आयुर्वेदिक) उपयोग के कारण आँवला 21वीं सदी का प्रमुख फल हो सकता है। धर्म परायण हिन्दू इसके फलों एवं वृक्ष को अत्यन्त पवित्र मानते हैं तथा इसका पौराणिक महत्व भी है। ऐसा कहा जाता है कि यदि कार्तिक मास में इसके वृक्ष के नीचे बैठ कर विष्णु की पूजा की जाये तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यदि तुलसी का पौधा नहीं मिले तो भगवान विष्णु की पूजा आँवले के वृक्ष के नीचे बैठ कर की जा सकती है। हिन्दू धर्म में ऐसी मान्यता है कि आँवले के वृक्ष के नीचे बैठ कर विष्णु की पूजा की जाये तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है। हिन्दू धर्म के अनुसार कार्तिक मास में कम से कम एक दिन आँवले के वृक्ष के नीचे भोजन करना अत्यन्त शुभ माना जाता है, जब इसके फल परिपक्व होते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार आँवले के फल का लगातार 40 दिनों तक सेवन करते रहने वाले व्यक्ति में नई शारीरिक स्फूर्ति आती है तथा कायाकल्प हो जाता है।

क्षेत्र एवं वितरण

आँवले के प्राकृतिक रूप से उगे वृक्ष भारत, श्रीलंका, क्यूबा, पोर्ट रिको, हवाई, फ्लोरिडा, ईरान, इराक, जावा, ट्रिनीडाड, पाकिस्तान, मलाया, चीन, और पनामा में पाये जाते हैं। परन्तु इसकी खेती भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश प्रान्त में ज्यादा प्रचलित है। आज कल आँवले का सघन वृक्षारोपण उत्तर प्रदेश के लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं वाले बीहड़ एवं खादर वाले जिलों, जैसे आगरा, मथुरा, इटावा एवं फतेहपुर एवं बुन्देलखण्ड के अर्ध शुष्क क्षत्रों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसके अलावा आँवले के क्षेत्र अन्य प्रदेशों जैसे, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू के अर्ध शुष्क क्षेत्रों में, हरियाणा के अरावली क्षेत्रों में, पंजाब, उत्तरांचल एवं हिमाचल में तेजी से बढ़ रहे हैं। एक नये आँकड़े के अनुसार भारतवर्ष में आँवले का क्षेत्रफल लगभग 50,000 हेक्टेयर तथा कुल उत्पादन लगभग 1.5 लाख टन आँका गया है। झारखण्ड राज्य के शुष्क एवं अर्धशुष्क जिलों जैसे – लातेहार, डाल्टनगंज, चतरा, कोडरमा, गिरिडीह, देवघर आदि में आँवला उत्पादन की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं।

उपयोग

आँवले के पौधों के प्रत्येक भाग का आर्थिक महत्व है। इसके फलों में विटामिन 'सी' की अत्यधिक मात्रा पायी जाती है। इसके अतिरिक्त इसके फल लवण, कार्बोहाइड्रेट, फास्फोरस, कैल्शियम, लोहा, रेशा एवं अन्य विटामिनों के भी धनी होते हैं। इसमें पानी 81.2 प्रतिशत, प्रोटीन 0.50 प्रतिशत, वसा 0.10 प्रतिशत, रेशा 3.40 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 14.00 प्रतिशत, कैल्शियम 0.05 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.02 प्रतिशत, लोहा 1.20 (मि.ली. ग्रा. / 100 ग्रा.), विटामिन 'सी' 400–1300 (मिली ग्रा. / 100 ग्रा.), विटामिन 'बी' 30.00 (माइक्रो ग्रा. / 100 ग्रा0) पाये जाते हैं। भारत में औषधीय गुणों से युक्त फलों में आँवले का अत्यन्त महत्व है। शायद

यह फल ही एक ऐसा फल है जो आयुर्वेदिक औषधि के रूप में पूर्ण स्वास्थ्य के लिए प्रयुक्त होता है। हिन्दू शास्त्र के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि तुलसी एवं आँवले के फलों से सिक्त जल से स्नान करना गंगा जल से स्नान करने के तुल्य है।

इसका फल तीक्ष्ण शीतलता दायक एवं मूत्रक और मृदुरेचक होता है। एक चम्मच आँवले के रस को यदि शहद के साथ मिला कर सेवन किया जाय तो इससे कई प्रकार के विकार जैसे क्षय रोग, दमा, खून का बहना, स्कर्वी, मधुमेह, खून की कमी, स्मरण शक्ति की दुर्बलता, कैंसर अवसाद एवं अन्य मस्तिष्क विकार इन्फ्जलुएन्जा, ठंडक, समय से पहले बुढ़ापा एवं बालों का झड़ना एवं सफेद होने से बचा जा सकता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि यदि एक चम्मच ताजे आँवले का रस, एक कप करेले के रस में मिश्रित करके दो महीने तक प्रातः काल सेवन किया जाय तो प्राकृतिक इन्सुलिन का श्राव बढ़ जाता है। इस प्रकार यह मधुमेह रोग में रक्त मधु को नियंत्रित करके शरीर को स्वस्थ करता है। साथ ही रक्त की कमी, सामान्य दुर्बलता तथा अन्य कई परेशानियों से मुक्ति दिलाता है। इसका प्रतिदिन प्रातः सेवन करने से कुछ ही दिनों में शरीर में नई स्फूर्ति आती है। यदि ताजे फल प्राप्त न हो तो इसके सूखे चूर्ण को शहद के साथ मिश्रित करके सेवन किया जा सकता है। त्रिफला, च्यवनप्राश, अमृतकलश ख्याति प्राप्त स्वदेशी आयुर्वेदिक औषधियाँ हैं, जो मुख्यतः आँवले के फलों से बनायी जाती हैं। आँवला के इन्हीं गुणों के कारण इसे 'रसायन' एवं 'मेधा रसायन' (बुद्धि का विकास करने वाला) की श्रेणी में रखा जाता है। इसकी पत्तियों को पानी में उबालने के पश्चात् उस पानी से कुल्ला करने पर मुँह के छाले ठीक हो जाते हैं। ऐसा इसकी पत्तियों में विद्यमान टेनिन एवं फिनोल की अधिकता के कारण होता है। यही नहीं, आँवले के फूल को यदि खाया जाय तो वह मृदुरेंचक (पेट साफ) का कार्य करता है एवं इसकी जड़ का सेवन पीलिया रोग को दूर करने में सहायक होता है। हिन्दू पौराणिक साहित्य में आँवले एवं तुलसी की लकड़ी की माला पहनना काफी शुभ माना गया है। इस प्रकार आँवला की लकड़ी भी उपयोगी है।

जलवायु

आँवला एक शुष्क उपोष्ण (जहाँ जाड़ा एवं गर्मी स्पष्ट रूप से पड़ती है) क्षेत्र का पौधा है परन्तु इसकी खेती उष्ण जलवायु में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। भारत में इसकी खेती समुद्र तटीय क्षेत्रों से 1800 मीटर ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। जाड़े में आँवले के नये बगीचों में पाले का हानिकारक प्रभाव पड़ता है परन्तु एक पूर्ण विकसित आँवले का वृक्ष 0–46° सेंटीग्रेड तापमान तक सहन करने की क्षमता रखता है। गर्म वातावरण, पुष्प कलिकाओं के निकलने हेतु सहायक होता है जबकि जुलाई–अगस्त माह में अधिक आर्द्रता का वातावरण सुसुप्त छोटे फलों की वृद्धि हेतु सहायक होता है। वर्षा ऋतु के शुष्क काल में छोटे फल अधिकता में गिरते हैं तथा नए छोटे फलों के निकलने में देरी होती है।

भूमि

आँवला एक सहिष्णु फल है और बलुई भूमि से लेकर चिकनी मिट्टी तक में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। गहरी उर्वर बलुई दोमट मिट्टी इसकी खेती हेतु सर्वोत्तम पायी जाती है। बंजर, कम अम्लीय एवं उसर भूमि (पी.एच. मान 6.5–9.5, विनिमय शील सोडियम 30–35 प्रतिशत एवं विद्युत चालकता 9.0 मि.ली. प्रति से.मी. तक) में भी इसकी खेती सम्भव है। भारी मृदायें तथा ऐसी मृदायें जिनमें पानी का स्तर काफी ऊँचा हो, इसकी खेती हेतु अनुपयुक्त पायी गई है।

किस्में

पूर्व में आँवला की तीन प्रमुख किस्में यथा बनारसी, फ्रान्सिस (हाथी झूल) एवं चकैइया हुआ करती थीं। इन किस्मों की अपनी खूबियाँ एवं कमियाँ रही हैं। बनारसी किस्म में फलों का गिरना एवं फलों का कम भण्डारण क्षमता,

फ्रान्सिस किस्म में यद्यपि बड़े आकार के फल लगते हैं परन्तु उत्तक क्षय रोग अधिक होता है। चकैइया के फलों में अधिक रेशा एवं एकान्तर फलन की समस्या के कारण इन किस्मों के रोपण को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। पारम्परिक किस्मों की इन सब समस्याओं के निदान हेतु नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद ने कुछ नयी किस्मों का चयन किया है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न है :–

कंचन (ए ए-4)

यह चकैइया किस्म से चयनित किस्म है। इस किस्म में मादा फूलों की संख्या अधिक (4–7 मादा फूल प्रति शाखा) होने के कारण यह अधिक फलन नियमित रूप से देती है। फल मध्यम आकार के गोल एवं हल्के पीले रंग के व अधिक गूदायुक्त होते हैं। रेशेयुक्त होने के कारण यह किस्म गूदा निकालने हेतु एवं अन्य परिरक्षित पदार्थ बनने हेतु औद्योगिक इकाइयों द्वारा पसन्द की जाती है। यह मध्यम समय में परिपक्व होने वाले किस्म हैं (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर) तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में सफलता पूर्वक उगायी जा रही है।

कृष्णा (एन.ए.-5)

यह बनारसी किस्म से चयनित एक अगेती किस्म है जो अक्टूबर से मध्य नवम्बर में पक कर तैयार हो जाती है। इस किस्म के फल बड़े ऊपर से तिकोने, फल की सतह चिकनी, सफेद हरी हल्की पीली तथा लाल धब्बेदार होती है। फल का गूदा गुलाबी हरे रंग का, कम रेशायुक्त तथा अत्यधिक कसैला होता है। फल मध्यम भण्डारण क्षमता वाले होते हैं। अपेक्षाकृत अधिक मादा फूल आने के कारण, इस किस्म की उत्पादन क्षमता बनारसी किस्म की अपेक्षा अधिक होती है। यह किस्म मुरब्बा, कैण्डी एवं जूस बनाने हेतु अत्यन्त उपयुक्त पायी गयी है।

नरेन्द्र आँवला-6

यह चकैइया किस्म से चयनित किस्म है जो मध्यम समय (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर) में पक कर तैयार हो जाती है। पेड़ फैलाव लिए अधिक उत्पादन देने वाले होते हैं। (फलों का आकार मध्यम से बड़ा गोल, सतह चिकनी, हरी पीली, चमकदार, आकर्षक) गूदा लगभग रेशाहीन एवं मुलायम होता है। यह किस्म मुरब्बा, जैम एवं कैण्डी बनाने हेतु उपयुक्त पायी जाती है।

नरेन्द्र आँवला-7

यह फ्रांसिस (हाथीझूल) किस्म के बीजू पौधों से चयनित किस्म है। यह शीघ्र फलने वाली, नियमित एवं अत्यधिक फलन देने वाली किस्म है। इस किस्म में प्रति शाखा में औसत मादा फूलों की संख्या 9.7 तक पायी जाती है। यह मध्यम समय (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर) तक पक कर तैयार हो जाती है। यह किस्म उत्तक क्षय रोग से मुक्त है। फल मध्यम से बड़े आकार, के ऊपर तिकोने, चिकनी सतह तथा हल्के पीले रंग वाले होते हैं। गूदे में रेशे की मात्रा एन ए–6 किस्म से थोड़ी अधिक होती है। इस किस्म की प्रमुख समस्या अधिक फलन के कारण इसकी शाखाओं को टूटना है। अतः फल वृद्धि के समय शाखाओं में सहारा देना उचित होता है यह किस्म च्यवनप्राश, चटनी, अचार, जैम एवं स्क्वैश बनाने हेतु अच्छी पायी गयी है। इस किस्म को राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल तथा तमिलनाडु के क्षेत्रों में अच्छी तरह अपनाया गया है।

नरेन्द्र आँवला-10

यह किस्म बनारसी किस्म के बीजू पौधों से चयनित अधिक फलन देने वाली किस्म है। फल देखने में आकर्षक, मध्यम से बड़े आकार वाले, चपटे गोल होते हैं। सतह कम चिकनी, हल्के पीले रंग वाली गुलाबी रंग लिए होती

है। फलों का गूदा सफेद हरा, रेशे की मात्रा अधिक एवं फिनाल की मात्रा कम होती है। अधिक उत्पादन क्षमता, शीघ्र पकने के कारण एवं सुखाने एवं अचार बनाने हेतु उपयुक्तता के कारण यह व्यवसायिक खेती हेतु उपयुक्त किस्म है, परन्तु इस किस्म में एकान्तर फलन की समस्या पायी जाती है।

इन सब किस्मों के अलावा लक्ष्मी–52, किसान चकला, हार्प–5, भवनी सागर आनन्द–1, आनन्द–2 एवं आनन्द–3 किस्में विभिन्न शोध संस्थाओं से विकसित की गयी हैं परन्तु इनकी श्रेष्ठता देश के अन्य भागों में अभी सिद्ध नहीं हो पाई है।

प्रवर्धन एवं मूलवृन्त

आँवले के बाग स्थापना में सबसे बड़ी समस्या सही किस्मों के पौधों का न मिलना है। हाल के वर्षों में आँवले के पौधों की माँग में कई गुना वृद्धि हुई है। अतः कायिक प्रवर्धन की व्यवसायिक विधि का मानकीकरण आवश्यक हो गया है।

पारम्परिक रूप से आँवले के पौधों के बीज द्वारा या भेंट कलम बंधन द्वारा तैयार किये जाते थे। बीज द्वारा प्रवर्धन आसान एवं सस्ता होता है, परन्तु परंपरागित होने के कारण बीज द्वारा तैयार पौधे अधिक समय में फलन देते हैं एवं गुण, आकार में भी मातृ पौधों के समान नहीं पाये जाते हैं। आँवले के पौधे ऊपर की तरफ बढ़ने वाले होते हैं। अतः निचली सतह से बहुत कम शाख निकलती है, जिससे भेंट कलम बंधन अधिक सफल नहीं है। हाल के वर्षों में आँवले के प्रवर्धन हेतु कई कायिक विधियों का मानकीकरण किया गया है। अब इसका सफल प्रवर्धन पैबंदी चश्मा, विरूपित छल्ला विधि, विनियर कलम एवं कोमल शाखा बंधन द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

बीज निकालना

उत्तर भारत में बीज निकालने हेतु चकैइया या देशी किस्मों के फलों को जनवरी या फरवरी माह में एकत्र कर लेते हैं। फलों को धूप में सूखा लिया जाता है। पूरी तरह से सूखने के बाद फल अपने आप फट जाते है और उनके अन्दर से बीज बाहर आ जाते हैं। यदि बीज अपने आप फल से नहीं निकल रहे हों तो हल्का सा दबाव दिया जा सकता है। एक फल से प्रायः छह बीज प्राप्त होते हैं। लगभग एक क्विंटल फल से एक किलोग्राम बीज प्राप्त होता है।

बीज का जमना

बीज को बोने से 12 घंटे पहले पानी में भिगो देना चाहिए। जो बीज पानी में तैरने लगे उन बीजों को फेंक देना चाहिए। मार्च–अप्रैल के महीने में बीजों को जमीन की सतह से थोड़ी उठी हुई क्यारियों में बोना चाहिए। पाली हाउस में बीजों को जल्दी (फरवरी माह में) भी बोया जा सकता है। देर (मई एवं जून माह में) से बोये गये बीजों से उत्पन्न पौधे कलिकायन हेतु उपयुक्त होते हैं। मार्च–अप्रैल में बोये गये बीजों का जमाव करीब दो सप्ताह में हो जाता है तथा बुवाई के बाद 10 से.मी. ऊँची पौध करीब 35–40 दिनों में तैयार हो जाती है। इस प्रकार की पौध को खोद कर तीन दिनों तक छाया में रख कर पुनः लगाने से अधिकांश पौधे स्थापित हो जाते हैं।

कलिकायन

छह मास से एक वर्ष तक की पौध (मूलवृन्त) कलिकायन के लिए उपयुक्त होती है। शॉकुर शाखा का चुनाव ऐसे मातृवृक्ष से करना चाहिए जो अधिक फलन देने वाला हो तथा कीड़ों एवं व्याधियों के प्रकोप से मुक्त हो। उत्तर भारतीय दशाओं में पैबन्दी चश्मा तथा विरूपित छल्ला विधि से मई से सितम्बर माह तक चश्मा करने से 60 से 90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त होती है, जबकि दक्षिण भारतीय दशाओं में ग्रीन हाउस एवं नेट हाउस

की सहायता से आँवले का प्रवर्धन साल के आठ से दस माह तक किया जा रहा है। कलिकायन के अतिरिक्त आँवला का प्रवर्धन वीनियर कलम, कोमल शाखा बंधन के द्वारा 70 प्रतिशत सफलता के साथ किया जा सकता है, लेकिन कलिकायन की सफलता एवं क्षमता को देखते हुए आँवला प्रवर्धन हेतु यह विधि सर्वोत्तम पायी गयी है।

आँवले के प्रवर्धन के लिए पालीथीन के थैले, पाली ट्यूब्स, रूट ट्रेनर या स्व–स्थाने बाग स्थापन (मूल रूप से सूखा ग्रस्त क्षेत्र हेतु) आदि विधियों का भी मानकीकरण किया गया है, परन्तु उनके व्यापक प्रसार की आवश्यकता है। आँवले की शाँकुल शाखों को भीगी हुई मॉस घास या अखबार के टुकड़ों में लपेट कर 5–7 दिनों तक परिवहन/भण्डारण किया जा सकता है।

पौध रोपण

कलम बंधन या कलिकायन के द्वारा तैयार पौधों को जुलाई–अगस्त या फरवरी के महीने में 8–10 मीटर की दूरी पर रोपाई करते हैं। पौधों की रोपाई वर्गाकार विधि से करते हैं, जिसमें पौधों से पौधों एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी बराबर रखी जाती है। प्रत्येक पौधों के वर्ग के बीच में एक अन्य पौधा भी लगाया जा सकता है। इस विधि को पूरक विधि या क्विनकन्स भी कहते हैं। इससे बागवान अधिक लाभ के अलावा खाली पड़े क्षेत्र का भी सही उपयोग कर सकते हैं। इस विधि हेतु अन्य फलों में बेर, अमरूद, नींबू, करौंदा एवं सहजन को पूरक पौधों के रूप में लगाना काफी अच्छा साबित हुआ है। कई स्थानों का पौधा रोपण झाड़नुमा पंक्ति में भी किया गया है। इस विधि में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 8 मीटर एवं पौधों से पौधों की दूरी घटा कर 4–5 मीटर तक रखते हैं। परती (खाली) भूमि में पौध रोपण से दो मास पूर्व एक घन मीटर का गड्ढा खोद लेते हैं। गड्ढे से निकली मिट्टी को दो भागों में बाँट देते हैं। ऊपरी आधे भाग को एक जगह तथा निचली आधी मिट्टी को दूसरी जगह रख देते हैं। ऊपरी आधी मिट्टी में तीन से चार टोकरी (25–40 किलोग्राम) सड़ी गोबर की खाद एवं एक किलोग्राम नीम की खली या 500 ग्राम हड्डी का चूरा मिला मिश्रण मिला लेते हैं। इस प्रकार से तैयार मिश्रण को गड्ढे में इस प्रकार भरते हैं कि भरा हुआ गड्ढा 6 से 10 से•मी• सतह से उठा रहे। क्षारीय मृदाओं में यदि पौध रोपण करना है तो ऊपरोक्त मिश्रण में जिप्सम आवश्यकतानुसार 5 से 8 किलोग्राम या पाइराइट या उसर तोड़ खाद एवं 20 किलोग्राम बालु मिला कर गड्ढे की भराई करनी चाहिए। यदि वर्षा न हो तो इस प्रकार से भरे गड्ढों के मध्य में कलमी पौधों को पिण्डी के साथ रोपित कर देना चाहिए एवं चारों तरफ की मिट्टी को अच्छी तरह से दबा देना चाहिए। तत्पश्चात् हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। उसर भूमि का रेखांकन करके बीजू पौधों को सीधे लगना चाहिए तथा उपयुक्त आयु आने पर एक निश्चित ऊँचाई पर इन पर चश्मा चढा देना चाहिए। इस विधि को स्व–स्थाने कलिकायन भी कहते हैं। आँवले की विभिन्न किस्मों में स्व–बन्ध्यता पायी जाती है। अतः अधिक उत्पादन हेतु एकान्तर पंक्ति में दो किस्मों को लगाना चाहिए। इसके लिए सबसे उत्तम संयोग एन ए–6 एवं एन ए–7 एवं एन ए–10 या कंचन एवं कृष्णा को पाया गया है।

संधायी एवं छंटाई

आँवले के पौधों को मध्यम ऊँचाई तक विकसित करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए। नये पौधों को जमीन की सतह से लगभग 75 सेमी. से एक मीटर तक अकेले बढ़ने देना चाहिए। तदुपरान्त शाखाओं को निकलने देना चाहिए हिस्से पौधों के ढाँचे का भली प्रकार से विकास हो सके। पौधों को रूपान्तरित प्ररोह प्रणाली के अनुसार साधना चाहिए। शुरू में अधिक कोण वाली दो से चार शाखाएं विपरीत दिशाओं में निकलने देना चाहिए। अनावश्यक शाखाओं को शुरू में निरन्तर हटाते रहना चाहिए। इसके बाद चार से छह शाखाओं को चारों दिशाओं में बढ़ने देना चाहिए। आँवले के फलन वाले वृक्षों में नियमित काट–छांट की आवश्यकता नहीं होती है। आँवला अपने वृद्धि के अनुसार सारे सीमित प्ररोहों को गिरा देता है जो अगले साल की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं। कमजोर, सूखी, रोग ग्रस्त, टूटी हुई, आपस में मिली हुई शाखाओं एवं मुलवृत्त से निकली हुई कलिकाओं को समय–समय पर निकालते रहना चाहिये।

शिखा रोपण

पुराने, बड़े, कम अच्छी किस्मों के पौधों (जैसे पुरानी किस्में बनारसी, फ्रान्सिस एवं देशी) का शिखा रोपण द्वारा जीर्णोद्धार या नयी किस्मों में परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार के पौधों को जमीन की सतह से 3–4 मीटर की ऊँचाई पर (दिसम्बर–जनवरी माह में) इस प्रकार से काटते हैं कि चारों दिशाओं में 4–6 मुख्य शाखाएँ कटी हुई रहें। इन कटे भागों पर वृक्ष लेप (गाय का गोबर+मिट्टी+पानी) या काली गाय के गोबर का लेप लगा देते हैं, जिससे इन भागों में फफूँदी का प्रकोप न होने पाये। इस प्रकार से कटी हुई मुख्य शाखाओं से 4 से 6 प्ररोह जो कि बाहर की तरू निकल रहे हों, को बढ़ने दिया जाता है। जून–जुलाई माह में इन्हीं प्ररोहों पर उन्नत किस्म की शाँकुर शाखा से कलिकायन कर दिया जाता है। इसके उपरान्त जब कलिका फुटाव ले लेती है तब प्ररोह के शीर्ष भाग को फुटाव वाली कलिका के ऊपर से काट दिया जाता है। इस प्रकार के पौधों में कीड़े, व्याधियों एवं तेज हवा से नुकसान की अधिक सम्भावनाएं पायी जाती हैं। अतः पुर्ण सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

आँवले की पोषण आवश्यकता पर क्रमबद्ध तरीके से कार्य नहीं हुआ है। खाद की मात्रा मुख्य रूप से मृदा उर्वरकता, पौधों की आयु एवं उत्पादन पर निर्भर करती है। अनुभव के आधार पर खाद एवं उर्वरक की मात्रा निम्न सारणी के अनुसार देनी चाहिए।

पौधों की आयु (वर्ष)	नाइट्रोजन (ग्रा.)	फॉस्फोरस (ग्रा.)	पोटाश (ग्रा.)	गोबर की खाद (कि.ग्रा)
1	100	50	5	
2	200	100	200	10
3	300	150	300	15
4	400	200	400	20
5	500	250	500	25
6	600	300	600	30
7	700	350	700	35
8	800	400	800	40
9	900	450	900	45
10	1000	500	1000	50

गोबर की खाद की सम्पूर्ण मात्रा, नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस एवं पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा जनवरी–फरवरी माह में फूल आने से पहले डाल देनी चाहिए। शेष नत्रजन की आधी मात्रा जुलाई–अगस्त के महीने में डालनी चाहिए। गोबर की खाद एवं अन्य खादों के मिश्रण को पेड़ की छाया के बराबर बने थालों में फैला कर हल्की गुड़ाई एवं सिंचाई कर देनी चाहिए। क्षारीय मृदाओं में उपरोक्त खाद के मिश्रण के अतिरिक्त 100 ग्राम बोरेक्स (सुहागा), जिंक सल्फेट एवं कॉपर सल्फेट (100 ग्रा. प्रत्येक का) प्रति पेड़, पौधों की आयु का ध्यान में रखते हुए डालना चाहिए। इसके अलावा सूक्ष्म तत्वों, जैसे बोरान, जिंक, कॉपर (0.4 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव बुझे हुए चुने के साथ मिला कर करने से फलों का गिरना कम हो जाता है तथा फलों की गुणवत्ता में सुधार होता है।

आँवले का जैविक उत्पादन

ज्यादातर आँवले के फलों का उपयोग स्वास्थ्य सुधार एवं औषधीय गुणों के लिए किया जाता है। अतः इसका जैविक उत्पादन बड़ा महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से उत्पादित आँवले से तैयार उत्पाद अधिक गुणवत्तायुक्त होने के कारण घरेलू एवं विदेशी बाजार में अधिक सराहे जाते हैं। आँवले के जैविक उत्पादन की दिशा में किये गये प्रारम्भिक कार्य में काफी अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। कई प्रयोग करने के पश्चात ऐसा पाया गया है कि एक छिड़काव बी.डी.–500 का तथा 1.0 कि.ग्रा. केंचुए की खाद प्रति पौधों के थालों में एवं केले की पत्ती एवं धान के पुवाल से पलवार करने से काफी अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। बी.डी.पेस्टसाइड (बी.डी.501) के द्वारा कीड़ों एवं बीमारियों को भी सफलतापूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है।

सिंचाई

आँवले का पौधा काफी सहिष्णु होता है। अतः इसको सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती है। एक पूर्ण विकसित आँवले के बाग में ज्यादातर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। प्रायः वर्षा आधारित जल से ही सिंचाई की आवश्यकता पूरी हो जाती है, यदि बाग सही किस्म की भूमि में स्थापित हो। वर्षा एवं शरद ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है, परन्तु ग्रीष्म ऋतु में नये स्थापित बागों में 10–15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई के लिए खारे पानी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। फल देने वाले बागानों में पहली सिंचाई खाद देने के तुरन्त बाद जनवरी–फरवरी में देनी चाहिए। फूल आने के समय (मध्य मार्च से मध्य अप्रैल तक) सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

सिंचाई के विभिन्न तरीकों में थाला विधि से सिंचाई करना सर्वोत्तम पाया गया है। टपक सिंचाई विधि से सिंचाई करने पर किये गये आरम्भिक अध्ययन के अच्छे नतीजे प्राप्त हुए हैं। इस विधि द्वारा 60 प्रतिशत सीपीई पर सिंचाई करने से 40–60 प्रतिशत तक पानी की बचत के साथ–साथ खरपतवार नियंत्रण तथा स्वस्थ पौध वृद्धि एवं उच्च गुणवत्तायुक्त अधिक फलन प्राप्त होती है। पानी की कमी वाले क्षेत्रों में नये बागों की स्थापना में घड़ा सिंचाई विधि भी काफी सहायक सिद्ध हुई है।

अवरोध परत

आँवले के बाग स्थापन में जैविक पदार्थों द्वारा अवरोध परत करने से अच्छे परिणाम मिले हैं। विभिन्न प्रकार के पदार्थों जैसे पुवाल, केले के पत्ते, ईख की पत्ती एवं गोबर की खाद से मल्चिंग करने पर अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। जैविक पदार्थ से कई वर्षों तक मल्चिंग करने से खरपतवार नियंत्रित रहते हैं, जड़ों का तापमान नियंत्रित रहता है, जैविक पदार्थ सड़ कर भूमि की उर्वराशक्ति तथा जल धारण करने की क्षमता को बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त ये हानिकारक लवणों को जमीन की सतह पर आने से भी रोकता है। इस प्रकार, यह उसर भूमि में हानिकारक लवणों के प्रभाव को कम करते हैं, साथ ही मल्चिंग करने से पौधों की जड़ों के पास केंचुओं एवं लाभकारी सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि भी होती है।

सहफसलें या आँवला आधारित खेती की विधियाँ

फलदार वृक्षों का, काफी समय उपरान्त, फलन में आना एक प्रमुख समस्या है। इसकी वजह से किसान अधिक क्षेत्र में फलों का रोपण नहीं कर पाते हैं। आँवला गहरी जड़ों वाला एवं छितरी पत्तियों वाला एक पर्णपाती वृक्ष है। साल के तीन–चार माह में पेड़ पर पत्तियाँ नहीं रहती हैं तथा शेष माह में छितरी पत्तियाँ होने को कारण भूमि पर पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश उपलब्ध रहता है। परिणामतः इसके साथ सहफसली खेती की अनेक सम्भावनायें हैं। फलों में अमरूद, करौंदा, सहजन एवं बेर, सब्जियों में लौकी, भिण्डी, फूलगोभी, धनिया, फूलों में ग्लैडियोलस

एवं गेंदा एवं अन्य औषधि एवं सुगंधित पौधों, आँवले के साथ सहफसली खेती के रूप में काफी उपयुक्त पाये गये हैं। कुछ सह फसली खेती के नमूने निम्नवत् हैं :–

आँवला + बेर + मोठ या मूँग

आँवला + अमरूद + उरद या वर्षाश्रित धान्य फसलें

आँवला + बेर + फालसा (तीन पंक्ति खेती)

आँवला + ढ़ैचा + गेहूँ या जौ

आँवला + ढ़ैचा + प्याज/लहसुन + मेथी या बैगन

आँवला + ढ़ैचा + जरमन चमोमिल

इसके अलावा तुलसी, कालमेघ, सतावर, सर्पगन्धा एवं अश्वगंधा की सह फसली खेती के भी अच्छे नतीजे प्राप्त हुए हैं। कुछ फसलें, जैसे धान एवं बरसीम, जिनको अत्यधिक पानी की आवश्यकता होती है, आँवला के साथ सह फसली खेती के रूप में बढ़ावा नहीं देनी चाहिए। उसर या कम उपजाऊ जमीन में कुछ सालों तक ढ़ैचा की सह फसली खेती करना काफी लाभप्रद साबित हुआ है। इससे भूमि की भौतिक एवं रसायनिक गुणवत्ता में काफी सुधार होता है।

पुष्पन एवं फल वृद्धि

आँवले में फूल सीमित शाखाओं पर जो कि असीमित शाखओं की गाँठ से निकलती है, बसन्त ऋतु में आते हैं। फूलों का खिलना मार्च के अंतिम सप्ताह से शुरू होता है तथा तीन सप्ताह तक चलता है। बीजू किस्मों में पुष्पन की क्रिया पहले प्रारम्भ होती है, जबकि व्यवसायिक किस्मों में पुष्पन बाद में होता है। दक्षिण भारत में पुष्पन साल में दो बार होता है। पहली बार फरवरी–मार्च में और दूसरी बार जून–जुलाई में। पहली बार वाले पुष्प अच्छी फलन देते हैं परन्तु दूसरी बार के पुष्प कम फलन देते हैं। सीमित शाखाओं के निचले भाग पर पत्तियों के अक्ष से नर पुष्प गुच्छों में निकलते हैं और बाद में मादा पुष्प इन्हीं शाखाओं पर निकलते हैं। सीमित शाखाओं के अर्थ दूरस्थ भाग पर साधारणतः पत्तियाँ निकलती हैं। पुष्पक्रम असीमाक्षी प्रकार के होते हैं। फूल छोटे एक लिंगाश्रयी एवं छोटे वृत्तक से जुड़े होते हैं। नर पुष्प गुच्छों में पहले प्रकट होते हैं। परिदलपुँज 6, पीले हरे रंग से लेकर गहरे गुलाबी रंग के होते हैं एवं फलों की पंखुड़िया कार्स्पशी रूप में जुड़ी होती हैं। पुमंग में तीन पुंकेसर होते हैं। तंतु का जुड़ाव नीचे से होता है एवं परागकोष युक्त कोषी होते हैं। उनमें 5–7 भाग होते हैं, लेकिन सामान्यतः 6 भाग पाये जाते हैं। अण्डाशय जायाँगधार मणिबंधिका 3–4 तीन कक्षीय, बीजांडन्यस कक्षीय एवं दो बीजांड प्रतिकोष्ठक में पाये जाते हैं। आँवला एक पर–परागित पौधा है। अतः इनके परागण में मधुमक्खियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आँवले की किस्मों में स्व–अनिषेच्यता पायी जाती है। अतः एक से अधिक किस्मों को साथ–साथ रोपित करना चाहिए। निषेचन के तुरन्त बाद, जो परागण के 36 घंटे बाद होता है, युग्मनज 120 से 130 दिनों तक एवं भ्रूणपोष नाभि में विभाजन के साथ फलों की सुसुप्तावस्था समाप्त हो जाती है। फलों में सर्वाधिक वृद्धि सितम्बर माह में होती है तथा उत्तर भारतीय दशाओं में फल नवम्बर तक परिपक्व हो जाते हैं।

आँवले का फल कैप्सूल अण्डाकार गोल से लेकर चपटे गोल आकृति के, रंग सफेद हरा छिलका चिकना से खुरदुरा, अर्धपारदर्शी, 6–8 खण्डों में विभाजित एवं फलों की सतह चिकनी या हल्की उठी हुई होती है। फल की गुठली कड़ी, गोल से लेकर त्रिकोणिय आकार की होती है। बीज की बाहरी भित्ति कड़ी, बीज 6–8 हल्के भूरे रंग से लेकर गहरे भूरे रंग के होते हैं।

आँवले के रोग

आँवले की खेती सम्पूर्ण भारतवर्ष में की जाती है। यह एक ऐसी फसल है। जिसमें रोगों का प्रकोप कम होता है किन्तु आँवले के कुछ रोग महत्वपूर्ण है तथा आँवले की फसल के लिए अत्यन्त हानिकारक है। आँवले का रस्ट रोग राजस्थान में खासतौर पर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे फल तथा पत्तियाँ ग्रसित होती हैं तथा अत्यन्त हानि होती है। अन्य प्रमुख रोग हैं आँवले की विभिन्न प्रकार की फलों की सड़न। चूँकि आँवले के फल शीघ्र खराब हो जाते हैं अतः फलों पर साधारण सी भी चोट भण्डारण तथा परिवहन के दौरान फलों को नुकसान पहुँचाती हैं। आँवले के कुछ रोगों का विवरण निम्नवत है :

रस्ट (रेवेलिया इम्बलिकी)

आँवले का रस्ट रोग आँवले की एक महत्वपूर्ण समस्या है। खासतौर से राजस्थान के उदयपूर जिले में यह अत्यंत गंभीर है। हाल में लखनऊ तथा प्रतापगढ़ क्षेत्र में आँवले की देशी किस्मों में फलों तथा पत्तियों पर इस रोग को पाया गया।

फलों पर आरंभ में काले छोटे उभार दिखाई देते हैं जो बाद में एक दूसरे से मिल कर घेरे के रूप में विकसित हो जाते हैं। धब्बे एक दूसरे से जुड़ कर फल को काफी क्षेत्र घेर लेते हैं। इन धब्बों के ऊपर कागजनुमा चमकीली झिल्ली दिखाई देती है। यह बाद में फट जाती है। जिससे काले बीजाणु बाहर बिखर जाते हैं। फल खराब दिखते हैं तथा बाजार में इनकी कीमत नहीं मिलता है। पत्तियों पर आरम्भ में गुलाबी भूरे छोटे–छोटे उभार नजर आते हैं जो अलग–अलग या समूह में विकसित होते हैं। बाद में इसका रंग गहरा भूरा हो जाता है। ऐसा समझा जाता है कि रोग फल से पत्तियों पर तथा पत्तियों से फल पर नहीं जाता है। फफूँदी रेवेनेलिया इम्बलिकी के टीलियोस्पोर फल तथा पत्तियों पर रोग पैदा करते हैं। घुलनशील गंधक (0-4%C या क्लोरथैलोनिल (0-2%) का तीन छिड़काव एक माह के अन्तराल पर जुलाई से करने पर रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

उकठा (विल्ट)

हाल में आँवले के पौधों के सूखने की समस्या राजस्थान में देखी गई। राजस्थान में काफी संख्या में आँवले के पौधों में छालों का फटना, पत्तियों का झड़ा तथा पौधों के सूखने की समस्या देखी गई है। पेड़ के सूखने की समस्या ऐसे तो मुख्य रूप से पाले के कारण समझी जा रही है किन्तु ऐसे पौधों में ''यूजेरियम जाति की फफूँद भी संबंधित पाई गई है। नियंत्रण के लिए –

1. पाले के समय छोटे पौधों को ढकना चाहिए तथा सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे पाले का असर न हो।
2. थालों में घास–फूस या काली पालीथीन बिछाने तथा तने पर गाय के गोबर का लेप लगाने से रोग में कमी पाई गई। चूँकि पाले से रोग बढ़ता है, अतः पौधों को पाले से बचाने की पूरी व्यवस्था करनी चाहिए।

काली फफूँद

ऐसे आँवले के पौधों जिनमें स्केल कीट का प्रकोप होता है उनमें काली फफूँद का भी प्रकोप होता है। आँवले की काली फफूँदी रोग में कई प्रकार की फफूँदी देखी गयी है। काली फफूँद रोग (सूटी मोल्ड) में पत्तियों, टहनियों तथा फूलों पर मखमली काली फफूँदी विकसित होती है। जो कीट द्वारा चिपचिपे पदार्थ के ऊपर विकसित होती है। यह फफूँदी सतह तक ही सीमित रहती है तथा पत्तियों टहनियों, फूल आदि में अन्दर इसका प्रकोप नहीं होता है। काली फफूँद के प्रकोप को 2 प्रतिशत स्टार्च के छिड़काव के द्वारा रोका जा सकता है। यदि प्रकोप अधिक हो तो स्टार्च में 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस तथा 0.2 प्रतिशत घुलनशील गंधक मिला कर छिड़काव करना चाहिए।

नीली फफूँद (पेनीसीलियम सिट्रिनम)

सर्वप्रथम आँवले की नीली फफूँदी को वाराणसी में देखा गया किन्तु यह रोग आँवले का एक ऐसा रोग है जो सभी आँवला उगाने वाले क्षत्रों में आम है। आरम्भ में फलों पर भूरे जलसिक्त धब्बे बनते हैं। रोग के बढ़ने पर फलों में फफूँद के तीन प्रकार के रंग एक के बाद एक दिखाई देते हैं। पहले चमकीला पीला रंग फिर भूरा रंग तथा अंत में हरा नीला रंग विकसित होता है जो सतह पर उभरती फफूँद के कारण होता है। फल की सतह पर पीली बूँदें भी दिखाई देती हैं। फलों से बुरी बदबू निकलती है। पूरा फल बाद में दानेदार नीली हरी फफूँद से ढका नजर आता है। प्रबंधन के लिए

1. फलों की तुड़ाई अत्यन्त सावधानीपूर्वक करनी चाहिए जिससे उसमें किसी प्रकार की चोट न लगे। चोट लगने से फलों पर नीली फफूँद का प्रकोप होने की संभावना रहती है।
2. भण्डारण में साफ–सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए तथा भंडारण स्थल को ओजोन गैस से शोधित करना चाहिए।
3. फलों को बोरेक्स या नमक से उपचारित करने से रोग को रोका जा सकता है।
4. फलों को कोर्बेन्डाजिम या थायोफनेट मिथइल 0.1 प्रतिशत से उपचारित करके भी रोग नियंत्रित किया जा सकता है।
5. फलों के ऊपर मेंथी के तेल के हल्के लेप से भी रोग को रोका जा सकता है।

एन्थ्रेकनोज (कालिटोट्राइकम ग्लीयोस्पोराइडिस या ग्लोमेरेला सिंगूलाटा)

एन्थ्रेकनोज, आँवले की पत्तियों व फलों पर अगस्त–सितम्बर माह में दिखाई देता है। सर्वप्रथम इसे उदयपुर में देखा गया। पत्तियों पर पहले छोटे, गोल, भूरे, पीले किनारों वाली धब्बे नजर आते हैं। धब्बों का मध्य भाग हल्का भूरा तथा काले पिन के सिरे से उभार सहित दिखाई देता है। फलों पर धंसे हुए भूरे धब्बे बनते हैं, जिनके मध्य में पनि के सिरे से गोलाई में गहरे काले उभार दिखाई देते हैं। धब्बे विभिन्न आकार एवं साइज के बनते हैं। अधिक नमी होने पर धब्बे से बीजाणु अधिक मात्रा में निकलते हैं, साथ ही फल सिकुड़े से नजर आते हैं और फिर सड़ जाते हैं।

मृदू सड़न : (फोमोप्सिस फाइलेन्थाई)

आँवले के मृदू सड़न दिसम्बर से फरवरी के मध्य अधिक देखी जा सकती है। धुंए से भूरे काले, गोल धब्बे फलों पर 2–3 दिनों में विकसित होते हैं। संक्रमित भाग पर जलसिक्त भूरे रंग का धब्बा बनाता है, जो पूरे फल को करीब 8 दिनों में आच्छादित कर फल के आकार को विकृत कर देता है। ऐसे तो रोग छोटे तथा परिपक्व फल, दोनों को प्रभावित करता है, किन्तु परिपक्व फलों में इसका प्रकोप अधिक होता है। इस रोग के बढ़ने के लिए फलों में इसका प्रकोप अधिक होता है। इस रोग के बढ़ने के लिए फलों में चोट आवश्यक होती है। तुड़ाई उपरांत फलों को डाइफोलेटान (0.15 प्रतिशत), डाइथेन एम–45 या बैवेस्टीन (0.1 प्रतिशत) से उपचारित करके भण्डारित करने से रोग की रोक थाम की जा सकती है।

फल सड़न : (पेस्टेलोशिया क्रुएन्टा)

यह रोग नवम्बर माह में आमतौर पर देखा जाता है। इस रोग में धब्बे अधिकतर अनियताकार तथा भूरे रंग के होते हैं। आरम्भ में भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो धीरे–धीरे बढ़ते हैं। बाद में ये धब्बे सूखे भूरे हो जाते हैं जिनके किनारे हल्के भूरे होते हैं तथा ग्रसित भाग पर रूई की तरह सफेद फफूँद दिखाई देती हैं। संक्रामित फल का अन्दर का हिस्सा सूखा, गहरा भूरा नजर आता है।

फल सड़न : (अल्टरनेरिया अल्टरनेटा)

गिरे हुए फलों में अल्टरनेरिया अल्टरनेटा द्वारा सड़न पैदा होती है। फल सड़न को रोकने के सामान्य तरीकों में

1. फल तोड़ने के 15 दिनों पूर्व 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम का छिड़काव करना चाहिए।
2. फल तुड़ाई पूरी सावधानी से करनी चाहिए, जिससे फलों में किसी प्रकार की चोट न लगे।
3. फलों को स्वच्छ पात्रों में भण्डारित करना चाहिए।
4. फलों के भण्डारण तथा परिवहन के समय पूर्ण स्वच्छता बरतनी चाहिए।
5. भण्डारण स्थान स्वच्छ होना चाहिए तथा उसे ओजोन से उपचारित किया जाना चाहिए।
6. फलों का उपचार बोरेक्स या नमक से करना चाहिए जिससे रोग का प्रकोप न हो।

आँवले के विकार

आन्तरिक सड़न

आन्तरिक सड़न आँवले के फलों में देखी गयी है। आँवले की प्रजाति फ्रान्सिस में यह रोग सबसे अधिक होता है। बनारसी प्रजाति में भी इसका प्रकोप पाया गया है। जब अन्तः उत्तक कड़ी लगती है तब यह सबसे पहले अन्दर की ओर से भूरा होना आरम्भ करती है। बाद में मध्य उत्तक तथा अन्त में बाहरी भूरी काली नजर आती है। आमतौर पर सितम्बर के दूसरे तथा तीसरे सप्ताह में यह दिखाई देती है। रोग के बढ़ने पर ये भाग कार्कनुमा कड़ा हो जाता है तथा रिक्त स्थान बनते हैं, जो गोंद से भरे होते हैं। चकैइया, एन.ए.–6 तथा एन.ए.–7 में यह रोग नहीं देखा गया है। अतः इन प्रजातियों को लगाने हेतु बढ़ावा देना, चाहिए। प्रबंधन के लिए जिंक सल्फेट (0.4 प्रतिशत) कापर सल्फेट (0.4 प्रतिशत) तथा बोरेक्स (0.4 प्रतिशत) का छिड़काव सितम्बर–अक्टूबर माह में करना लाभप्रद होता है।

आँवले के नाशीकीट

छालभक्षी कीट (इन्डरबेला टेट्राओनिस)

यह कीट पूरे देश में पाया गया है और बहुत से फल, फूलों वाले एवं वन वृक्षों को क्षति पहुंचाता है। आँवलें के बागों में यह सामान्यतः पाया जाता है। साधारणतः जिन बागों की ठीक से देख–भाल नहीं होती, उनमें इस कीट का प्रकोप अधिक होता है। कीट का प्रकोप अप्रैल महीने में माथ निकलने के साथ प्रारम्भ होता है। इसके लार्वे प्ररोहों, शाखाओं एवं मुख्य तने की छाल को खाते एवं उनमें छेद करते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पेड़ों की वृद्धि रूक जाती है एवं पुष्पन और फलन प्रभावित होती है।

इसके प्रकोप की पहचान लार्वे द्वारा प्ररोहों, शाखाओं एवं तनों पर बनायी गयी अनियमित सुरंगों से होता है, जो रेशमी जालों, जिसमें चबायी हुई छाल के टुकड़े और इनके मल सम्मिलित होते हैं, से ढकी होती हे। इनके आवासीय छिद्र विशेष कर प्ररोहों एवं शाखओं के जोड़ पर देखे जा सकते हैं। प्ररोह सूख कर मर जाते हैं, जिससे पेड़ बीमार सा दिखता है। प्रबंधन के लिए

1. बाग को साफ–सुथरा और स्वस्थ रखना चाहिए।
2. समय–समय पर बागों में जाकर नये सूखे प्ररोहों की जाँच करनी चाहिए ताकि समय रहते ही इस कीट का पता लग जाए।
3. प्रकोप के शुरूआत में ही, आवासीय छिद्रों को साफ कर, उनमें तार डाल कर लार्वे को नष्ट कर देना चाहिए।

4. अधिक प्रकोप होने पर सुरंगों एवं आवासीय छिद्रो को साफ कर रूई के फाये को 0.025 प्रतिशत डाइक्लोरवॉस के घोल में भिगो कर छिद्रों में रख कर, गीली मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।
5. इसके लार्वे बेवेरिया बैसिआना नामक फफूँद से प्राकृतिक रूप से ग्रसित होते हैं। इसका प्रयोग जैविक नियंत्रण के लिए किया जा सकता है।

प्ररोह पिटिका या शूट गाल बनाने वाला कीट (बेटूसा स्टाइलोफोरा)

इस कीट का प्रकोप नर्सरी के पौधों एवं पुराने फलदार वृक्षों में अधिक होता है। यह कीट जून से दिसम्बर माह तक क्रियाशील रहता है। इस कीट के लार्वे बढ़ते हुए तनों, प्ररोहों के आगे भाग में सुरंग बनाते हैं और यह भाग फूल का गॉल (पीटिका) आकार ले लेता है। जब लार्वा इसके अन्दर क्रियाशील रहता है तो इसके एक सिरे से लाल रंग का बुरादा सा निकलता दिखायी पड़ता है। नयी पिटिका जून से अगस्त के दौरान बनती है। पूर्ण विकसित पिटिका या गॉल 2.3 से 2.5 सेमी. लम्बी एवं 1 से 1.5 सेमी. चौड़ी होती है। गर्मी के मौसम के शुरूआत में यह लार्वा बाहर आ जाता है और पर्णकों (लीफलेट) के बीच प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है। यह कीड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका गम्भीर प्रकोप होने पर पेड़ की वृद्धि रूक जाती है, जिससे पुष्पन और फलत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बचाव के दृष्टि से पेड़ बहुत घने नहीं होने चाहिए। गॉल वाले प्ररोहों काट कर कीड़ों सहित नष्ट कर देना चाहिए। जिन बागों में इसका प्रकोप लगातार होता रहा है उसमें 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस कीटनाशी का छिड़काव मौसम के शुरूआत में करें। यदि आवश्यकता हो तो दूसरा छिड़काव 15 दिनों के बाद करें।

अनार तितली (ड्यूडोरिक्स (वाइरेकोला) आइसोक्रेटस)

यह अनार का प्रमुख कीट है, किन्तु आँवले और अन्य दूसरे फलों को भी हानि पहुँचाता है। इस कीट का प्रकोप सितम्बर–अक्टूबर माह में फलों के मौसम में होता है। बैंगनी–भूरी सी मादा तितली एक–एक करके छोटे, चमकदार, सफेद अंडे फलों पर देती है। इनमें से लार्वे निकल कर फल को छेद कर अन्दर चले जाते हैं एवं गुठली वाले भाग को खा कर, खोखला कर देते हैं। यह मजबूत शरीर वाला, छोटे बालों से ढका, चपटा, लगभग 2 सेमी. तक लम्बा होता है। यह फल के अन्दर ही या बाहर आ कर प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है। कैटरपिलर के अन्दर घुसने एवं बाहर आने वाले छिद्रों के द्वारा अन्य विभिन्न जीवाणुओं का भी फल पर प्रकोप हो जाता है। आमतौर पर कीट द्वारा ग्रसित फल कैटरपिलर के अन्दर जाने वाले छिद्रों के पास विकृत हो जाते हैं, और ऐसे फल कमजोर होकर सड़ जाते हैं, तथा पकने से पहले ही गिर जाते हैं। ग्रसित फलों में छेद से बुरादा निकलता हुआ भी दिखायी पड़ता है। अधिक प्रकोप होने पर फलों को काफी हानि हो सकती है। प्रबन्धन के लिए

1. आँवला के बाग के साथ, अनार का बाग नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि यह इन फलों का मुख्य कीटनाशी है।
2. ग्रसित फलों तथा जमीन पर गिरे हुए सभी फलों को एकत्र कर, कीड़ों सहित नष्ट कर देना चाहिए ताकि इनके प्रकोप दुबारा होने से रोका जा सके।
3. इस कीट की रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत कार्बेरिल या 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटाफॉस कीटनाशी का छिड़काव फल के मटर के दाने के बराबर होने की अवस्था में करना चाहिए। दूसरा छिड़काव प्रकोप की तीव्रता पर निर्भर करता है, जिसे 15 दिनों के अन्तराल पर किया जा सकता है।

मिली बग या चूर्णी बग (नाइलीकॉकस वाइरीडिस)

इनका प्रकोप मार्च से जुलाई के मध्य होता है और अप्रैल–मई में इनकी संख्या अधिक होती है। मादा अण्डाकार होती है और निम्फ के बीच में आसानी से पहचानी जा सकती है। एक मादा सैकड़ों की तादाद में अंडे देती हैं।

निम्फ पत्तियों, प्ररोहों एवं पुष्प मन्जरियों पर स्थापित हो जाते हैं और इनका रस चूसते हैं। निम्फ 15–20 दिनों में वयस्क हो जाते हैं। अधिक रस चूस जाने के कारण पत्तियाँ और फूल सूख सूख कर गिर जाते हैं। इसका प्रकोप पेड़ की बढ़वार, पुष्पन और फलत पर पड़ता है। ग्रसित नये प्ररोह झुके, मुड़े हुए से प्रतीत होते हैं एवं पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर टहनियाँ पत्ती रहित होकर सूखने लगती हैं। इसके द्वारा काफी मात्रा में विसर्जित मधु भी देखा जा सकता है। इससे फूल सूख कर गिर जाते हैं। नियंत्रण के लिए

1. बाग को साफ–सुथरा और स्वस्थ रखना चाहिए।
2. प्रभावित पत्तियों एवं प्ररोहों को शुरूआत में ही काट कर कीड़ों सहित नष्ट कर देना चाहिए जिससे वे आगे और फैलने न पायें।
3. अधिक प्रकोप होने पर 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस या 0.05 प्रतिशत क्वीनलफॉस का छिड़काव करना चाहिए।

आँवला एफिड (सरसीएफ्सि एम्बलिका)

इन कीटों का प्रकोप जुलाई से अक्टूबर तक रहता है तथा सितम्बर माह में प्रकोप सबसे अधिक होता है। इनका प्रकोप पेड़ों में नये प्ररोहों के अग्रभाग पर होता है। निम्फ एवं वयस्क दोनों रस चूस कर क्षति पहुँचाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पेड़ की (वृद्धि) पर प्रतिकूल असर पड़ता है जो अन्ततः पुष्पन एवं फलत को प्रभावित करता है। प्रभावित पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और सूख कर गिरने लगती हैं। प्रभावित प्ररोह के अग्रभाग झुके और मुड़े हुए से प्रतीत होते हैं। चीटियों की मौजूदगी से भी इस कीट के प्रकोप होने की पहचान होती है इसके नियंत्रण के लिए प्रकोप के शुरूआत में ही प्रभावित पत्तियों एवं प्ररोहों को काट कर कीड़ों सहित नष्ट करना चाहिए। अधिक प्रकोप होने पर 0.06 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस कीटनाशी का छिड़काव करना चाहिए।

गुठली भेदक (करक्यूलिओ जाति)

यह कीट जून से जनवरी माह तक क्रियाशील रहता है। इस कीट का वयस्क एक छोटा सा घुन होता है, जो जून माह में बरसात शुरू होने पर जमीन के अन्दर से बाहर आता है। घुन का निकलना जुलाई–अगस्त में जारी रहता है जो आँवले के फल लगने से मेल खाता है। अण्डे फल में एक छोटा सा गड्ढा बना कर वाह्य सतह से नीचे दिए जाते हैं। अण्डे देने के लिए 1.5 से.मी. से 2 से.मी. व्यास के फल पसंद किए जाते हैं। इसका लार्वा निकलने के बाद गूदे से होता हुआ गुठली को छेदता अन्दर चला जाता है और बीजों को खाकर पूर्णतः नष्ट कर देता है। पूर्ण विकसित लार्वा, फल में एक छोटा छेद करके बाहर निकल कर जमीन पर गिर जाता है और भूमि में घुस कर अगले मौसम आने तक वहीं पड़ा रहता है। इस कीट का प्रकोप देशी एवं बनारसी जाति के आँवलों पर देखा गया है।

यह घुन जिस स्थान पर फल में अण्डे देती है वहाँ एक छोटा, भूरा धब्बा दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त फलों में कीड़े के बाहर निकलने वाले छेदों को देखकर भी इसके प्रकोप की पहचान की जा सकती है।

फल तुड़ाई के उपरान्त गहरी जुताई करने से जमीन के अन्दर प्रवेश किए लार्वों को नष्ट किया जा सकता है और इनकी संख्या में कमी लायी जा सकती है। अधिक प्रकोप होने पर प्रथम छिड़काव 0.2 प्रतिशत कार्बेरिल या 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस या 0.05 प्रतिशत क्वीनलफॉस या 0.07 प्रतिशत एन्डोसल्फान कीटनाशी का फलों के मटर के दाने के बराबर की अवस्था में करना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो दूसरा छिड़काव कीटनाशी बदल कर 15 दिनों के अन्तराल पर करें।

परिपक्वता, तुड़ाई, पैकिंग एवं भण्डारण

तुड़ाई के समय फल की परिपक्वता, उसकी गुणवत्ता एवं भण्डारण क्षमता का निर्धारण करती है। फलों का गिरना प्रारम्भ हो जाता है। यह समस्या बनारसी एवं फ्रान्सिस किस्मों में ज्यादा पायी जाती है। तुड़ाई में विलम्ब करने से अगले साल की फलत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलों को हाथ के द्वारा तोड़ा जाता है। तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए। चोटिल या खरोंच लगे फलों में भण्डारण के दौरान भूरे या काले रंग के धब्बे बनना प्रारम्भ हो जाते हैं। तुड़ाई उपरान्त नुकसान को उचित तुड़ाई, पैकिंग एवं सही भण्डारण तकनीक अपना कर कम किया जा सकता है।

परिपक्वता

आँवला के फलों की परिपक्वता कई कारकों पर निर्भर करती है, जैसे, स्थिति, जलवायु, मृदा प्रकार, नमी, इत्यादि। आँवला की व्यावसायिक किस्मों में परिपक्वता सूचकांक का निर्धारण फल लगने के उपरान्त अवधि, टी.एस.एस. एसिड अनुपात, आपेक्षिक घनत्व आदि के अनुसार किया जाता है। बनारसी एवं कृष्णा किस्मों में परिपक्वता फल लगने के 17–18 सप्ताह बाद आती है, जबकि कंचन और फ्रांसिस में 20 सप्ताह का समय लगता है। चकैइया किस्म, फल लगने के 23 सप्ताह बाद परिपक्व होते हैं। परिपक्वता के समय आपेक्षिक घनत्व सभी किस्मों में 1.0 से अधिक पाया जाता है। आँवले में परिपक्वता निर्धारण का सबसे अच्छा तरीका फलों के रंग में परिवर्तन (हरे से चमकदार सफेद हरा या पीला हरा) एवं बीज के रंग में परिवर्तन (हल्के पीले सफेद से भूरे रंग में) को देख कर किया जा सकता है।

तुड़ाई

आँवले के फलों की तुड़ााई हाथ से करते हैं परन्तु यह क्रिया बड़े वृक्षों में सम्भव न होने के कारण, बाँस से बनी सीढ़ियों पर चढ़ कर तुड़ाई की जाती है। फलों को प्रातःकाल में तोड़ना चाहिए एवं प्लास्टिक के क्रेट्स में रखना चाहिए। फलों को तोड़ते समय जमीन में नहीं गिरने देना चाहिए अन्यथा चोटिल फल पैकिंग एवं भण्डारण के समय सड़ कर अन्य फलों को भी नुकसान पहुँचाते हैं।

फलन

आँवले का कलमी पौधा रोपण से तीसरे साल तथा बीजू पौधा 6–8 साल बाद फलन देना प्रारम्भ कर देता है। कलमी पौधा 10–12 साल बाद पूर्ण फलन देने लगता है तथा अच्छे प्रकार से रख–रखाव के द्वारा 60–75 साल तक फलन देता रहता है। आँवले की विभिन्न किस्मों की उपज में भिन्नता पायी जाती है।

बनारसी कम फलन देने वाली, फ्रान्सिस एवं नरेन्द्र आँवला–6 औसत फलन देने वाली, कंचन एवं नरेन्द्र आँवला–7 अत्यधिक फलन देने वाली किस्में हैं। आँवले की फलन को कई कारक प्रभावित करते हैं जैसे किस्म की आन्तरिक क्षमता, वातावरणीय कारक एवं प्रबंधन तकनीकें इत्यादि। एक पूर्ण विकसित आँवले का वृक्ष एक से तीन क्विंटल फल देता है। इस प्रकार से 15–20 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

श्रेणीकरण

आँवले के फलों को तीन श्रेणियों में उनके आकार, भार, रंग एवं पकने के समय के आधार पर बाँटा जा सकता है। बड़े आकार के फल (व्यास 4 सेमी. से अधिक) को मुरब्बा बनाने हेतु प्रयोग किया जाता है मध्यम आकार के फलों को अन्य परिरक्षित पदार्थ बनाने में एवं छोटे आकार के फलों को औषधीय उत्पाद जैसे च्यवनप्राश, त्रिफला इत्यादि बनाने में प्रयोग किया जाता है। अपरिपक्व, चोटिल एवं व्याधिग्रस्त फलों को फेंक देना चाहिए।

पेटीबंदी

आँवले के फलों का अच्छी तरह से सम्भलाव एवं पेटीबन्दी न करने से लगभग 20 प्रतिशत तक का नुकसान होता है। इसलिए आँवले की पेटीबंदी करते समय अत्यधिक सावधानी रखने की आवश्यकता है। जूट की बोरियों एवं अरहर पौधों के तने की टोकरियाँ प्रायः आँवले की पेटीबंदी में प्रयुक्त की जाती है, जबकि इन पैकिंग पदार्थों में भार सहने की क्षमता कम होती है तथा रख–रखाव भी उपयुक्त नहीं हो पाता है। लगभग 40–50 किलोग्राम क्षमता की अरहर के तने द्वारा बनी टोकरियाँ आँवला की पैकिंग में प्रयोग की जाती है जिनमें अखबार की परत एवं आँवला की पत्तियों को कुखन के रूप में प्रयोग किया जाता है। आँवला को दूरस्थ स्थानों पर भेजने के लिए गत्ते (कारूगेटेट फाइबर बोर्ड) से बने डिब्बों में पैकिंग करके भेजा जा सकता है।

आय

आँवले का विक्रय मूल्य 40.0 रूपये से लेकर 4000 रूपये प्रति क्विंटल तक रहता है। अतः प्रति हेक्टेयर क्षेत्र से 40,000 रूपये से लेकर दो लाख रूपये प्राप्त किये जा सकते हैं।

भण्डारण

आँवले के भण्डारण का मुख्य उद्देश्य संसाधन हेतु उसकी उपलब्धता को बढ़ाना है। किस्मों के अनुसार परिपक्व फलों को 6 से 9 दिनों तक कम ऊर्जा वाले शीतकक्षों में रख कर बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आँवले के फलों को शीत तापक्रम (5–7^{o}C) पर दो माह तक रखा जा सकता है। फलों को 15 प्रतिशत नमक के घोल में रख कर 75 दिनों तक सामान्य तापक्रम पर भण्डारित किया जा सकता है।

कटहल

कटहल का पौधा एक सदाबहार, 8–15 मी. ऊँचा बढ़ने वाला, फैलावदार एवं घने क्षेत्रयुक्त बहुशाखीय वृक्ष होता है जो भारत का देशज है। भारत वर्ष में इसकी खेती पूर्वी एवं पश्चिमी घाट के मैदानों, उत्तर–पूर्व के पर्वतीय क्षेत्रों, संथाल परगना एवं छोटानागपुर के पठारी क्षेत्रों, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बंगाल के मैदानी भागों में मुख्य रूप से की जाती है। कटहल के वृक्ष की छाया में कॉफी, इलाइची, काली मिर्च, जिमीकन्द हल्दी, अदरक इत्यादि की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

स्वाद एवं पौष्टिकता की दृष्टि से कटहल का फल अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके फल बसन्त ऋतु से वर्षा ऋतु तक उपलब्ध होते हैं। बसन्त ऋतु में जब प्रायः सब्जी की अन्य प्रजातियों का अभाव रहता है, कटहल के छोटे एवं नवजात मुलायम फल एक प्रमुख एवं स्वादिष्ट सब्जी के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। जैसे–जैसे फल बड़े होते जाते हैं इनमें गुणवत्ता का विकास होता जाता है एवं परिपक्व होने पर इसके फलों में शर्करा, पेक्टिन, खनिज पदार्थ एवं विटामिन 'ए' का अच्छा विकास होता है। कटहल के फल एवं बीज में पाये जाने वाले विभिन्न पोषक तत्वों को नीचे की सारणी में दिया गया है।

पोषक तत्व (प्रति 100 ग्रा.)	कच्चे फल	पके फल	बीज
नमी (प्रतिशत)	84.0	77.2	64.5
कार्बोहाइड्रेड (ग्रा.)	9.4	18.9	25.8
प्रोटीन (ग्रा.)	2.6	1.9	6.6
कुल खनिज पदार्थ	0.9	0.8	1.2
कैल्शियम (मि.ग्रा.)	50.0	20.0	21.0
फॉस्फोरस (मि.ग्रा.)	97.0	30.0	20.1
लौह तत्व (मि.ग्रा.)	1.5	500.0	17.0
विटामिन 'ए' (आइ.यू.)	0.0	540.0	17.0
थायमिन (मि.ग्रा.)	0.3	30.0	17.0

भूमि एवं जलवायु

कटहल के पौधे लगभग सभी प्रकार के भूमि में पनप जाते हैं परन्तु अच्छी जल निकास की व्यवस्था वाली गहरी दोमट मिट्टी इसके बढ़वार एवं पैदावार के लिए उपयुक्त होती है। मध्यम से अधिक वर्षा एवं गर्म जलवायु वाले क्षेत्र कटहल की खेती के लिए उपयुक्त होते हैं। यह देखा गया है कि छोटानागपुर एवं संथाल परगना तथा आस–पास के क्षेत्रों की टांड़ जमीन जिसमें मृदा पी.एच.मान सामान्य से थोड़ा कम, संरचना हल्का तथा जल का निकास अच्छा है, कटहल की खेती के लिए उपयुक्त पायी गयी है।

उन्नत किस्में

कटहल एक परंपरागत फल वृक्ष होने तथा प्रमुखतः बीज द्वारा प्रसारित होने के कारण इसमें प्रचुर जैव विविधता है। अभी तक कटहल की कोई मानक प्रजाति का विकास नहीं हुआ था परन्तु फलन एवं गुणवत्ता के आधार पर विभिन्न शोध केन्द्रों द्वारा कटहल की कुछ उन्नतशील चयनित प्रजातियाँ इस प्रकार हैं :

संस्थान	विकसित प्रजातियाँ
बागवानी एवं कृषि–वानिकी शोध कार्यक्रम, रांची	खजवा, स्वर्ण मनोहर, स्वर्ण पूर्ति (सब्जी के लिए)
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि., फैजाबाद	एन.जे.–1, एन.जे.–2, एन.जे.–15 एवं एन.जे.–3
केरल कृषि वि.वि., तिरूअनन्तपुरम।	मत्तमवरक्का।

खजवा : इस किस्म के फल जल्दी पक जाते हैं। यह ताजे पके फलों के लिए एक उपयुक्त किस्म है।

स्वर्ण मनेहर : छोटे आकार के पेड़ में बड़े–बड़े एवं अधिक संख्या में फल देने वाली यह एक उम्दा किस्म है। इसके लगभग 15 वर्ष के पेड़ की ऊँचाई 5.5 मी., तने की मोटाई 86 सेमी., क्षत्रक फैलाव 25.4 वर्ग मी. तथा पेड़ का आयतन 71.2 घन मी. होता है। मध्यम घने क्षत्रक वाले इस किस्म में फरवरी के प्रथम सप्ताह में फल लग जाते हैं। जिनको छोटी अवस्था में बेचकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। फल लगने के 20–25 दिन बाद इसके एक पेड़ से 45–50 कि.ग्रा. फल सब्जी के लिए प्राप्त किया जा सकता है। इस किस्म के पूर्ण रूप से विकसित फल की लम्बाई 45.2 सेमी., परिधि 70 सेमी. तथा वजन 15–20 किग्रा. होता है। इसके कोये (फलैक्स) का आकार बड़ा (6.0 x 3.9 सेमी.), संख्या अधिक (280–350 कोये/फल) तथा मिठास ज्यादा (20 डि. ब्रिक्स) होता है। यह किस्म छोटानागपुर एवं संथाल परगना तथा आस–पास के क्षेत्र के लिए अधिक उपयुक्त पाई गई है। इसकी प्रति वृक्ष औसत उपज 350–500 कि.ग्रा. (पकने के बाद) है।

स्वर्ण पूर्ति : यह सब्जी के लिए एक उपयुक्त किस्म है। इसका फल छोटा (3–4 किग्रा.), रंग गहरा हरा, रेशा कम, बीज छोटा एवं पतले आवरण वाला तथा बीच का भाग मुलायम होता है। इस किस्म के फल देर से पकने के कारण लंबे समय तक सब्जी के रूप में उपयोग किये जा सकते हैं। इसके वृक्ष छोटे तथा मध्यम फैलावदार होते हैं जिसमें 80–90 फल प्रति वर्ष लगते हैं। फलों का आकार गोल एवं कोये की मात्रा अधिक होता है।

पौधा प्रसारण

कटहल मुख्य रूप से बीच द्वारा प्रसारित किया जाता है एक समान पेड़ तैयार करने के लिए वानस्पतिक विधि द्वारा पौधा तैयार करना चाहिए। वानस्पतिक विधि में कलिकायन तथा ग्राफ्टिंग अधिक सफल पायी गयी है। इस विधि से पौध तैयार करने के लिए मूल वृन्त की आवश्यकता होती है जिसके लिए कटहल के बीजू पौधों का प्रयोग किया जाता है। मूल वृन्त को तैयार करने के लिए ताजे पके कटहल से बीज निकाल कर 400 गॉज की 25 x 12 x 12 सेमी आकार वाली काली पॉलीथीन को थैलियों में बुआई करना चाहिए। थैलियों को बालू, चिकनी मिट्टी या बागीचे की मिट्टी तथा गोबर की सड़ी खाद को बराबर मात्रा में मिलाकर बुवाई से पहले ही भर देना चाहिए। चूँकि कटहल का बीज जल्दी ही सूख जाता है अतः उसे फल से निकालने के तुरन्त बाद थैलियों में 4–5 से.मी. गहराई पर बुआई कर देना चाहिए। उचित देख–रेख करने से मूलवृन्त लगभग 8–10 माह में बंडिंग/ग्राफ्टिंग योग्य तैयार हो जाते हैं।

कटहल के पौधे को पैच बडिंग या क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग विधि द्वारा तैयार किया जा सकता है। पैच बडिंग के लिए मातृ वृक्ष से सांकुर डाली काटकर ले आते हैं जिससे 2–3 सेमी. लम्बी कली निकाल कर मूलवृन्त पर उचित ऊँचाई पर उसी आकार की छाल हटाकर बडिंग कर देते हैं। बडिंग के बाद कली को सफेद पालीथीन की पट्टी (100 गॉज) से अच्छी तरह बाँध देते हैं तथा मूलवृन्त का ऊपरी भाग काट देते हैं। ग्राफ्टिंग विधि से पौधा तैयार करने के लिए मातृवृक्ष पर ही सांकुर डाली की पत्तियों को लगभग एक सप्ताह पहले पर्णवृन्त छोड़कर काट देते हैं। जब पत्ती का पर्णवृन्त गिरने लगे तब सांकुर डाली को काटकर ले आते हैं। मूलवृन्त को उचित ऊँचाई पर काट देते हैं तथा उसके बीचोबीच 3–4 से.मी. लम्बा चीरा लगा देते हैं। सांकुर डाली के निचले भाग को दोनों तरफ

से 3–4 सेमी लगा कलम बनाते हैं जिसे मूलवृन्त के चीरे में घुसाकर 100 गॉज मोटाई की सफेद पॉलीथीन की पट्टी से बाँध देते हैं। छोटानागपुर क्षेत्र में बडिंग के लिए फरवरी–मार्च तथा ग्राफि्टंग के लिए अक्टूबर–नवम्बर का महीना उचित पाया गया है।

पौधा रोपण एवं देखरेख

कटहल का पौधा आकार में बड़ा तथा अधिक फैलावदार होता है अतः इसे 10 x 10 मी. की दूरी पर लगाया जाता है। पौध रोपण के लिए समुचित रेखांकन के बाद निर्धारित स्थान पर मई–जून के महीने में 1 x 1 x 1 मीटर आकार के गड्ढे तैयार किये जाते हैं। गड्ढा तैयार करते समय ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ तथा आधी मिट्टी दूसरी तरफ रख देते हैं। इन गड्ढों को 15 दिन खुला रखने के बाद ऊपरी मिट्टी दूसरी तरफ रख देते हैं। इन गड्ढ़ों को 15 दिन खुला रखने के बाद ऊपरी मिट्टी में 20–30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 1–2 कि.ग्रा. करंज की खली तथा 100 ग्रा.एन.पी. के मिश्रण अच्छी तरह मिलाकर भर देना चाहिए। जब गड्ढे की मिट्टी अच्छी तरह दब जाये तब उसके बीचोबीच में पौधे के पिण्डी के आकार का गड्ढा बनाकर पौधा लगा दें। पौधा लगाने के बाद चारों तरफ से अच्छी तरह दबा दें और उसके चारों तरफ थाला बनाकर पानी दें। यदि वर्षा न हो रही हो तो पौधों को हर तीसरे दिन एक बाल्टी (15 लीटर) पानी देने से पौध स्थापना अच्छी होती है।

पौधा लगाने के बाद से एक वर्ष तक पौधों की अच्छी देख–रेख करनी चाहिए। पौधों के थालों में समय–समय पर खरपतवार निकाल कर निकाई–गुड़ाई करते रहना चाहिए। पौधों को जुलाई–अगस्त में खाद एवं उर्वरक तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। नये पौधों में 3 वर्ष तक उचित ढांचा देने के लिए काट–छांट करना चाहिए। ढांचे देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि तने पर 1.5–2.0 मी. ऊँचाई तक किसी भी शाखा को नहीं निकलने दें। उसके ऊपर 3–4 अच्छी शाखाओं को चारों तरफ बढ़ने देना चाहिए जो पौधों का मुख्य ढांचा बनाती है। कटहल के पौधों के मुख्य तनों एवं शाखाओं से निकलने वाले उसी वर्ष के कल्लों पर फल लगता है। अतः इसके पौधों में किसी विशेष काट–छांट की आवश्यकता नहीं होती है। फल तोड़ाई के बाद फल से जुड़े पुष्पवृन्त टहनी को काट दें जिससे अगले वर्ष अच्छी फलत हो सके। पुराने पेड़ों पर पनपने वाले परजीवी जैसे बांदा (लोरेन्थस), सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

कटहल के पेड़ में प्रत्येक वर्ष फलन होती है अतः अच्छी पैदावार के लिए पौधे को खाद एवं उर्वरक पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। प्रत्येक पौधे को 20–25 किग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 100 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 100 ग्रा. म्युरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष की दर से जुलाई माह में देना चाहिए। तत्पश्चात् पौधे के बढ़वार के साथ खाद की मात्रा में वृद्धि करते रहना चाहिए। जब पौधे 10 वर्ष के हो जाये तब उसमें 80–100 किग्रा. गोबर की खाद, 1 किग्रा. यूरिया, 2 किग्रा. सि.सु.फा. तथा 1 किग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष देते रहना चाहिए। खाद एवं उर्वरक देने के लिए पौधे के क्षत्रक के नीचे मुख्य तने से लगभग 1–2 मी. दुरी पर गोलाई में 25–30 सेमी गहरी खाई में खाद के मिश्रण को डालकर मिट्टी से ढक देना चाहिए।

पुष्पण एवं फलन

कटहल एक मोनोसियस पौधा है जिसमें नर एवं मादा पुष्पक्रम (स्पाइक) एक ही पेड़ पर परन्तु अलग–अलग स्थानों पर आते हैं। नर फूल, जिसकी सतह अपेक्षाकृत चिकनी होती है नवम्बर–दिसम्बर में पेड़ की पतली शाखाओं पर आते हैं। ये फूल कुछ समय बाद गिर जाते हैं। मादा फूल मुख्य तने एवं मोटी डालियों पर जनवरी–फरवरी में आते हैं। मादा फूल अधिक ओजपूर्ण वृन्त, जिसे 'फूटस्टॉक' कहते हैं, पर एकल एवं गुच्छे में आते हैं। जिनके

साथ नर पुष्प भी निकलते हैं। कटहल एक परंपरागत फल है जिसमें परागण समकालीन नर पुष्प से ही होता है। यदि मादा फूल में समान परागण नहीं होता है तो फल विकास सामान्य नहीं होता है। परागण के पश्चात् पुष्पक्रम का आधार, अण्डाशय और दलाभ (पेरियन्थ) एक साथ विकसित होकर संयुक्त फल (सोरोसिस) का विकास होता है। फल जनवरी–फरवरी से जून–जुलाई तक विकसित होते रहते हैं। इसी समय में फल के अंदर बीज, कोया इत्यादि का विकास होता है और अन्ततः जून–जुलाई में फल पकने लगते हैं।

परिपक्वता एवं उपज

कटहल के फलों का विकास के साथ कई प्रकार से उपयोग में लाया जाता है अतः इसकी परिपक्वता एवं तोड़ाई को उपयोग के आधार पर कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। अतिनवजात एवं मध्यम उम्र के फल, ताजे सब्जी के लिए प्रयोग किया जाता है, को उस समय तोड़ना चाहिए जब उसके डंठल का रंग गहरा हरा, गूदा कठोर और कोर मुलायम हो। इसके साथ–साथ बाजार में मांग के आधार पर तोड़ाई को नियंत्रित कर सकते हैं। कटहल के पूर्ण विकसित फल पेड़ पर एवं तोड़ने के बाद भी पकते हैं। अतः ताजा फल खाने के लिए फलों को पूर्ण परिपक्वता पर तोड़ना चाहिए। साधारणतः फल लगने के 100–120 दिनों बाद तोड़ने लायक हो जाते हैं। इस समय तक डंठल तथा डंठल से लगी पत्तियों का रंग हल्का पीला हो जाता है। फल के ऊपर के काँटे बिरल हो जाते हैं एवं काँटों का नुकीलापन कम हो जाता है। कटहल के कच्चे फल को छड़ी से मारने पर खट–खट एवं पके फल से धब–धब की आवाज आती है। फलों को किसी तेज चाकू से लगभग 10 सेमी. डंठल के साथ तोड़ने से दूध का बहाव कम हो जाता है। तोड़ते समय फलों के सीधा जमीन पर गिरने से फल फट जाते हैं इसलिए फल के वृन्त को रस्सी से बाँध कर धीरे–धीरे नीचे सावधानीपूर्वक उतार कर किसी छायादार स्थान पर रखना चाहिए। फलों के आपस में रगड़ से छिलके के भूरे होने का भय रहता है जिससे फल की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कटहल के बीजू पौधे में 7–8 वर्ष में फलन प्रारम्भ होता है जबकि कलमी पौधों में 4–5 वर्ष में ही फल मिलने लगते हैं। रोपण के 15 वर्ष बाद पौधा पूर्ण विकसित हो जाता है। ऐसा देखा गया है कि जिन वृक्षों में छोटे आकार के फल लगते हैं उनमें संख्या अधिक एवं जिन वृक्षों के फल का आकार बड़ा होता है उनमें फलों की संख्या कम होती है। एक पूर्ण विकसित वृक्ष से लगभग 150 से 250 कि.ग्रा. फल प्रति वर्ष प्राप्त होता है।

कीट रोग एवं नियंत्रण

तना वेधक : इस कीट के नवजात पिल्लू कटहल के मोटे तने एवं डालियों में छेद बनाकर नुकसान पहुँचाते हैं। उग्रता की अवस्था में मोटी–मोटी शाखायें सूख जाती हैं एवं फसल को प्रभावित करती है। इसके नियंत्रण के लिए छिद्र को किसी पतले तार से साफ करके नुवाक्रान का घोल (10 मिली./ली.) अथवा पेट्रोल या किरोसिन तेल के चार–पाँच बूँद रूई में डालकर गीली चिकनी मिट्टी से बन्द कर दें। इस प्रकार वाष्पीकृत गंध के प्रभाव से पिल्लू मर जाते हैं एवं तने में बने छिद्र धीरे–धीरे भर जाते हैं।

गुलाबी धब्बा : इस रोग में पत्तियों को निचली सतह पर गुलाबी रंग का धब्बा बन जाता है जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है और फल विकास सुचारू रूप से नहीं हो पाता। इसके नियंत्रण के लिए कॉपर जनित फफूँद नाशी जैसे कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या ब्लू कॉपर के 0.3ः घोल का पणीय छिड़काव करना चाहिए।

फल सड़न रोग : यह रोग राइजोपस आर्टोकार्पी नामक फफूँद के कारण होता है जिसमें नवजात फल डंठल के पास से धीरे–धीरे सड़ने लगते हैं। कभी–कभी विकसित फल को भी सड़ते हुए देखा गया है। इसके नियंत्रण के लिए फल लगने के बाद लक्षण स्पष्ट होते ही ब्लू कॉपर के 0.3ः घोल का दो छिड़काव 15–20 दिनों के अन्तराल पर करें।

काजू

काजू विदेशी मुद्रा प्राप्त करने वाली भारत की एक प्रमुख फसल है। वैसे तो काजू की व्यवसायिक एवं बड़े पैमाने पर खेती केरल, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा एवं प.बंगाल में की जाती है परन्तु झारखण्ड राज्य के कुछ जिले जो बंगाल और उड़ीसा से सटे हुए हैं वहाँ पर भी इसकी खेती की विपुल सम्भावनाएँ हैं। प्रायः देखा गया है कि राज्य के पूर्वी सिंहभूम, प. सिंहभूम, सरायकेला खरसावां एवं अन्य कुछ जिलों में काजू के देशी प्रजातियों के पौधे पाये जाते हैं। इन पौधों से बहुत गुणवत्ता के काजू नट तो नहीं पैदा होते हैं परन्तु इससे एक संकेत जरूर मिलता है कि यदि इन क्षेत्रों में काजू की उन्नत किस्मों के बगीचे लगाये जाएं एवं उनका सही तरीके से देख रेख एवं रख रखाव किया जाय तो झारखण्ड से भी काजू का निर्यात सम्भव है। प्रस्तुत अध्याय में काजू की व्यवसायिक खेती के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

भूमि एवं जलवायु

काजू एक उष्ण कटिबन्धीय फसल है जो गर्म एवं उष्ण जलवायु में अच्छी पैदावार देता है। जिन क्षेत्रों में पाला पड़ने की सम्भावना होती है या लम्बे समय तक सर्दी पड़ती है वहाँ पर इसकी खेती प्रभावित होती है। 700 मी. ऊँचाई वाले क्षेत्र जहाँ पर तापमान 20° सें.ग्रे. से ऊपर रहता है काजू की अच्छी उपज होती है। 600–4500 मि. मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र के लिए उपयुक्त माने गये हैं। काजू को अनेक प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है परन्तु समुद्र तटीय प्रभाव वाले लाल एवं लेटराइट मिट्टी वाले भू–भाग इसकी खेती के लिए ज्यादा उपयुक्त होते हैं। झारखण्ड राज्य के पूर्वी एवं पश्चिमी सिंहभूम, सरायकेला खरसावां जिले काजू की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त पाये गये हैं। इन जिलों की मिट्टी एवं जलवायु काजू की खेती के लिए उपयुक्त है।

उन्नत किस्में

विभिन्न राज्यों के लिए काजू की उन्नत किस्मों की संस्तुति राष्ट्रीय काजू अनुसंधान केन्द्र (पुत्तूर) द्वारा की गई है। इसके अनुसार वैसे तो झारखण्ड राज्य के लिए किस्मों की संस्तुति नहीं है परन्तु जो किस्में उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल एवं कर्नाटक के लिए उपयुक्त है उनकी खेती झारखण्ड राज्य में भी की जा सकती है। क्षेत्र के लिए काजू की प्रमुख किस्में वेंगुरला–4, उल्लाल–2, उल्लाल–4, बी.पी.पी.–1, बी.पी.पी.–2, टी.–40 आदि है।

खेत की तैयारी

काजू की खेती के लिए सर्वप्रथम खेत की झाड़ियों तथा घासों को साफ करके खेत की 2–3 बार जुताई कर दें। झाड़ियों की जड़ों को निकाल कर खेत को बराबर कर दें। जिससे नये पौधों को प्रारम्भिक अवस्था में पनपने में कोई कठिनाई न हो।

काजू के पौधों को 7–8 मी. की दूरी पर वर्गाकार विधि में लगाते हैं। अतः खेत की तैयारी के बाद अप्रैल–मई के महीने में निश्चित दूरी पर 60 x 60 x 60 सेमी. आकार के गड्ढे तैयार कर लेते हैं। अगर जमीन में कड़ी परत है तो गड्ढे के आकार को आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता है। गड्ढों को 15–20 दिन तक खुला छोड़ने के बाद 5 कि.ग्रा. गोबर की खाद या कम्पोस्ट, 2 कि.ग्रा. राक फॉस्फेट या डीएपी के मिश्रण को गड्ढे की ऊपरी मिट्टी में मिलाकर भर देते हैं। गड्ढों के आसपास ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि वहाँ पानी न रूके। अधिक सघनता से बाग लगाने के पौधों की दूरी 5 x 5 या 4 x 4 मी. रखते हैं। शेष प्रक्रियाएँ सामान्य ही रहती है।

पौध प्रसारण

काजू के पौधों को साफ्ट वुड ग्राफ्टिंग विधि से तैयार किया जा सकता है। भेंट कलम द्वारा भी पौधों को तैयार कर सकते हैं। पौधा तैयार करने का उपयुक्त समय मई–जुलाई का महीना होता है।

पौध रोपण

काजू के पौधों को वर्षा काल में ही लगाने से अच्छी सफलता मिलती है। तैयार गड्ढों में पौधा रोपने के बाद थाला बना देते हैं तथा थालों में खर पतवार की समय–समय पर निकाई–गुड़ाई करते रहते हैं। जल संरक्षण के लिए थालों में सूखी घास का पलवार भी बिछाते हैं।

खाद एवं उर्वरक

प्रत्येक वर्ष पौधों को 10–15 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, के साथ–साथ रासायनिक उर्वरकों की भी उपयुक्त मात्रा देनी चाहिए। प्रथम वर्ष में 300 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा. रॉक फास्फेट, 70 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा की दर से दें दूसरे वर्ष इसकी मात्रा दुगुनी कर दें और तीन वर्ष के बाद पौधों को 1 किग्रा यूरिया, 600 ग्रा. रॉक फॉस्फेट एवं 200 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष मई–जून और सितम्बर–अक्टूबर के महीनों में आधा–आधा बांटकर देते रहें।

काट-छांट

काजू के पौधों को प्रारंभिक अवस्था में अच्छा ढांचा देने की जरूरत होती है अतः उपयुक्त काट–छाँट के द्वारा पौधों को अच्छा ढांचा के तत्पश्चात फसल तोड़ाई के बाद सूखी, रोग एवं कीट ग्रसित तथा कैंची शाखाओं को काटते रहें।

पौध संरक्षण

काजू में 'टी मास्कीटो बग' की प्रमुख समस्या होती है। इसके वयस्क तथा नवजात नई कोपलों, मंजरों, फलों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं। कभी–कभी इसकी समस्या इतनी गम्भीर हो जाती है कि इसके नियंत्रण के लिए पूरे क्षेत्र में एक साथ स्पेशल छिड़काव का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके नियंत्रण के लिए एक स्प्रे सिड्यूल बनाया गया है जो इस प्रकार है।

पहला स्प्रे	–	कल्ले आते समय	–	मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत) का
दूसरा स्प्रे	–	फूल आते समय	–	कार्वेरिल (0.1 प्रतिशत) का तथा
तीसरा स्प्रे	–	फल लगते समय	–	कार्वेरिल (0.1 प्रतिशत) का

फसल तोड़ाई एवं उपज -

काजू में पूरे फल की तोड़ाई नहीं की जाती है केवल गिरे हुए नट को इकट्ठा किया जाता है और इसे धूप में सुखाकर तथा जूट के बोरों में भरकर ऊँचे स्थान पर रख दिया जाता है। प्रत्येक पौधे से लगभग 8 किलोग्राम नट प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार एक हेक्टेयर में लगभग 10–15 क्विंटल काजू के नट प्राप्त होते हैं। जिनको प्रसंस्करण के बाद खाने योग्य काजू प्राप्त होता है।

नींबू वर्गीय फल

झारखण्ड राज्य के कुछ जिले नींबू वर्गीय फलों की खेती के लिए उपयुक्त है। अर्ध शुष्क क्षेत्र में अवस्थित भूभाग जिनमें गढ़वा, चतरा, डाल्टनगंज, लातेहार जिले मुख्य रूप से आते हैं, यहाँ नींबू वर्गीय फलों की अच्छी खेती की जा सकती है। यहाँ पर सन्तरा, मौसमी, किन्नों, नींबू आदि के बागवानी की अपार सम्भावना है। परन्तु जैसा कि देखा गया है यदि इन बगीचों की समुचित देख रेख न की जाय तो इनके पौधे उम्र से पहले ही उत्पादन देना बन्द कर देते हैं और सूखने लगते हैं। जिसे 'सिट्रस डिक्लाइन' कहते हैं, अतः नींबू वर्गीय फल फसलों की भरपूर पैदावार के लिए उनके उचित बाग प्रबन्धन की आवश्यकता है। इसके बारे में यहाँ पर विस्तार से चर्चा की जा रही है।

भूमि एवं जलवायु

हल्की एवं मध्यम उपज वाली बलुई दोमट मिट्टी नींबू वर्गीय फलों के लिए उपयुक्त होती है। झारखण्ड राज्य की लाल लेटराईट मिट्टी जिसमें जल निकास की अच्छी व्यवस्था होती है तथा पी.एच. मान भी अम्लीय है नींबू वर्गीय फलों के लिए उपयुक्त है। इसके लिए उपोष्ण कटिबन्धीय अर्धशुष्क जलवायु अत्यंत उपयुक्त है। जिन क्षेत्रों में सर्दी लम्बे समय तक होती है और पाला पड़ने की सम्भावना रहती है इसके लिए उपयुक्त नहीं है। फल परिपक्व होते समय कम तापमान तथा शुष्क वातावरण में सन्तरा, मौसमी, डाब आदि में अच्छी मिठास विकसित होती है। रात एवं दिन के तापमान का सामन्जस्य फलों में अच्छे रंग, मिठास एवं गुणवत्ता के विकास में मददगार साबित होते हैं।

उन्नत किस्में

नींबू वर्गीय फलों में दो प्रकार के फल प्रमुख हैं। एक तो वे जो खट्टे फल देते हैं और दूसरे जो मीठे फलों के लिए उगाए जाते हैं। खट्टे फलों में मुख्य रूप से लाइम और लेमन है जबकि मीठे फलों में सन्तरा, मौसमी, मीठा नींबू, ग्रेपफ्रूट, डाब आदि प्रमुख हैं। झारखण्ड राज्य में विभिन्न फलों की निम्नलिखित किस्में उगाई जा सकती हैं।

खटटा नींबू (लाइम)	–	कागजी कलान, सीडलेस, रंगपुर लाइन, विक्रम, प्रोमालिनी
नींबू (लेमन)	–	नेपाली ओवलांग, पन्त लेमन–1, आसाम लेमन (गन्धराज), सीडलेस, बारामासी
सन्तरा	–	किन्नो, नागपुर, सन्तरा, कुर्ग सन्तरा, खासी सन्तरा
मौसमी	–	माल्टा, मुसम्बी, सथगुड़ी, पाइनएप्पल, ब्लड रेड, जाफा
ग्रेपफ्रूट	–	मार्स सीडलेस, गंगानगर रेड, डन्कन, रूबी रेड
डाब	–	चकोतरा, गागर, स्थानीय डाव

उपरोक्त किस्मों में से मीठे वर्ग में किन्नों और नागपुर सन्तरा, माल्टा, ब्लड रेड, सथगुड़ी, मुसम्बी, चकोतरा और स्थानीय डाब तथा खट्टे वर्ग में कागजी कलान, सीडलेस, नेपाली ओवलंग, पन्त लेमन–1 ओरह गन्धराज की व्यवसायिक खेती झारखण्ड में की जा सकती है।

पौध प्रसारण

नींबूवर्गीय फलों को मुख्यतयाः बडिंग एवं कुछ हद तक ग्राफ्टिंग विधि द्वारा प्रसारित किया जाता है। कागजी नींबू को मुख्य रूप से बीज अथवा गूटी द्वारा प्रसारित किया जाता है। लेमन के पौधे गूटी, दाबा या कलम द्वारा तैयार किये जाते हैं। नींबू वर्गीय फलों में डिक्लाइन की समस्या गंभीर होती है अतः इनमें उपयुक्त मूलवृन्त का

प्रयोग भी किया जाता है जिनपर बडिंग या ग्राफि्टंग (सन्तरा, मोसमी) द्वारा अच्छी गुणवत्ता के पौधे तैयार किये जा सकते हैं।

बगीचा लगाने का तरीका

बगीचा लगाने के लिए 5 x 5 मी. दूरी पर वर्गाकार विधि में रेखांकन करके 60 सेमी. x 60 सेमी. x 60 सेमी. आकार के गड्ढे तैयार करने चाहिए। लातेहार, डाल्टनगंज एवं चतरा जैसे जिलों में जहां की मिट्टी में मोरम या पत्थर के टुकड़ों की अधिकता है वहाँ गड्ढों की गहराई 1–1.5 मी. तक रखनी चाहिए। गड्ढों की खुदाई मई–जून में तथा भराई जून–जुलाई में करनी चाहिए। यदि मिट्टी अत्यन्त खराब है तो तालाब की अच्छी मिट्टी में 20–25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 1 किग्रा. करंज/नीम/महुआ की खली, 50–60 ग्राम दीमकनाशी रसायन, 100 ग्रा. सि.सु.फा./डीएपी प्रति गड्ढे के दर से देने से बाग स्थापना अच्छी होती है और पौधों की बढ़वार भी उचित रहती है। पौधों को जुलाई–अगस्त में गड्ढों के बीचोबीच उनके पिण्डी के आकार की जगह बनाकर लगाना चाहिए तथा उनके चारों तरफ थाला बनाकर पानी देना चाहिए। पौधा लगाते समय यह ध्यान रखें कि उनका ग्राफ्टिंग/बंडिंग का जोड़ जमीन से 10–15 सेमी. ऊपर रहें।

पौधों की देख-रेख

नींबू वर्गीय फलों के नवजात पौधों को उचित देख रेख की आवश्यकता होती है। नये पौधों को गर्मी के मौसम में तेज धूप एवं लू तथा सर्दी के मौसम में ठण्ड एवं पाले के बचाव का समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। पौधों के जड़ों के पास पर्याप्त नमी बनाये रखने के लिए समय–समय पर सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए एवं पलवार बिछानी चाहिए। खर पतवार नियंत्रण हेतू भी थालों की समय पर गुड़ाई एवं पलवार का प्रयोग लाभकर पाया गया है।

वानस्पतिक अवस्था में पौधों में उचित ढांचा निर्माण अत्यन्त जरूरी होता है, अतः उनकी उचित काट–छांट भी करनी चाहिए। पौधों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व भी देना जरूरी होता है। अतः सन्तरा और मौसमी के प्रत्येक पौधे को 20–30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 1–1.5 किग्रा. यूरिया 1–1.5 किग्रा. सि.सु.फा. तथा 0.5 – 0.6 किग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष देने चाहिए। इसके साथ ही साथ फल देने वाले पौधों को जिंक सल्फेट (200 ग्रा./पौधा) तथा बोरान (100 ग्रा./पौधा) भी दिया जाना चाहिए। उर्वरक की आधी मात्रा नये कल्ले निकलने के समय तथा आधी मात्रा फल लगने के बाद देने से अच्छी उपज मिलती है। पौधों की वानस्पतिक अवस्था में खाद एवं उर्वरक का संतुलित प्रयोग से उनकी बढ़वार अच्छी होती है। नींबू में भी इसी प्रकार से उर्वरक का व्यवहार किया जाता है।

फल एवं उपज

नींबूवर्गीय फलों में मुख्यतः फरवरी मार्च में फूल आते हैं, परन्तु नींबू में सितम्बर–अक्टूबर में भी फूल आते हैं सन्तरा, मैसमी, ग्रेपफ्रूट के फल 7–8 महीनों में तैयार होते हैं जबकि नींबू के फल 3–4 महीनों में उपयोग के लायक हो जाते हैं। अतः फलों की तोड़ाई उनकी उपयोगिता, गुणवत्ता, बाजार मांग आदि के आधार पर सुनिश्चित करना चाहिए। किन्नों तथा कागजी नींबू के पौधे अधिक उपज देने वाले माने गये हैं। किन्नों के पूर्ण विकसित पौधे से 2000–2500 फल/वर्ष तथा कागजी नींबू के पौधे से 2000–3000 फल/वर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

अच्छी पैदावार के गुर

नींबू वर्गीय फलों की सबसे विराट समस्या है फलों का झड़ना। फूल और फलों का गिरना मुख्य रूप से अण्डाशय के निष्क्रिय होने, निषेचन क्रिया न होने तथा पोषक तत्वों की कमी एवं नमी की कमी अथवा तापमान में उतार

चढ़ाव के कारण होता है। परिणाम स्वरूप मात्र 8–10 प्रतिशत फूल ही फल के रूप में विकसित हो पाते हैं। अतः अच्छी फसल के लिए पौधों पर फल लगने के बाद प्लैनोफिक्स (2 मीली./5 ली.) एवं जिंक सल्फेट (5 ग्रा./ली.) का 2–3 छिड़काव करना चाहिए साथ ही साथ पौधों को पर्याप्त पोषण, नमी तथा कीड़ों एवं बीमारियों का रोकथाम भी करना चाहिए। इसके अतिरिक्त नींबू में फलों का फटना तथा सन्तरा एवं मौसमी में जूस का ना बनना आदि भी समस्या है। जिसे पर्याप्त पोषण से ठीक किया जा सकता है।

रोग एवं कीट नियंत्रण

नींबू वर्गीय फलों में कैंकर, एन्थ्रेकनोज, गोंद रिसाव जैसे रोगों के साथ–साथ अनेक प्रकार के विषाणु जनित रोग लगते हैं। कैंकर के नियंत्रण हेतु स्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट (500–1000 पी.पी.एम.) का 2–3 छिड़काव 15 दिनों पर करें। एन्थ्रेकनोज के लिए बोर्डो मिश्रण (5:5:50) या बैविस्टीन/ब्लूकापर (3 ग्रा./ली.) का छिड़काव करें एवं विषाणु जनित रोग के नियंत्रण हेतु विषाणु मुक्त पौधों का ही बाग लगायें, पौधों को पर्याप्त पोषण एवं देख रेख की व्यवस्था करें तथा डिक्लाइन नियंत्रण सिड्यूल का अनुपालन करें।

इसी प्रकार सिट्रस सैला, नींबू की तितली, लीफ माइनर, सफेद मक्खी, छाल खाने वाले कीट, थ्रिप्स माइटस, नेमैटोड, मिली बग, जैसे कीट भी नींबू वर्गीय फलों के उपज को प्रभावित करते हैं। तितली के गिडार नई पत्तियों को काट कर खा जाते हैं, जबकि सैला के नवजात पत्तियों के रस चूसकर पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं। कीड़ों को चुन कर मारने तथा पौधों पर मोनोक्रोटोफास/मेथाईल पैराथियान (0.2 प्रतिशत) के छिड़काव से इनका नियंत्रण किया जा सकता है। इसी प्रकार से अन्य कीड़ों तथा बीमारियों का समय पर समुचित इलाज करके नींबू वर्गीय फलों से अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।

पौधे की सूखने की समस्या (सिट्स डिक्लाइन) एवं निदान

नींबू वर्गीय फलों के पौधे जब 15–20 वर्ष के हो जाते हैं तब उनमें सूखने की समस्या पैदा हो जाती है। जिसे सिट्रस डिक्लाइन' कहते हैं। झारखण्ड की अम्लीय मिट्टी में यह समस्या ज्यादा देखी गयी है अतः उसका उचित निदान एवं पोषण प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया (डिक्लाइन नियंत्रण सिड्यूल) अपनानी चाहिए।

काट-छांट एवं सफाई

1. सूखी एवं रोग ग्रसित डालियों को काट कर हटा दें।
2. मुख्य तने पर लगे बोरर के छिद्रों को साफ कर उसमें किरोसिन तेल से भींगी रूई ठूंस कर बन्द कर दें।
3. मकड़ी के जालों तथा कैंकर से ग्रसित पत्तियों को साफ कर दें।
4. डालियों के कटे भागों पर ब्लू कापर + अरण्डी तेल का पेंट बनाकर लगायें।
5. रोगग्रसित पत्तियों, डालियों को इकट्ठा करके जला दें तथा बागीचे की जमीन की गुड़ाई करें। उपरोक्त प्रक्रिया मार्च–अप्रैल में करें और गर्मी में जमीन खुला रखें।

पोषण एवं रोग प्रबंध

1. रोगग्रसित पौधों में 40 किग्रा गोबर की खाद + 4.5 किलो नीम/करंज खली + 150 ग्रा. ट्राइकोडर्मा (मोनीटर) + 1 किग्रा. यूरिया + 800 ग्रा. सि.सु.फा. + 500 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश + 1 कि.ग्रा. चूना प्रति वृक्ष के हिसाब से दो भागों में बांटकर जून–जुलाई और अक्टूबर में दें। यह प्रक्रिया लगातार 2 वर्षों तक अवश्य करें।

2. जब पौधों पर पत्तियां आ जायें तब उन पर 200 ग्रा. नाइट्रोजन, 75 ग्रा. फास्फेट, 125 ग्रा. पोटाश का घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें। इसी के साथ जिंक सल्फेट (2 ग्रा./ली.) तथा कैल्सियम क्लोराइड/कैल्सियम नाइट्रेट (5 ग्रा./ली.) का 2 छिड़काव भी करें।

3. वायरस को फैलाने वाले कीड़ों के नियंत्रण का समुचित प्रबन्ध करें। इसके लिए नये कल्ले निकलते समय इमिडाक्लोरप्रिड (3 मिली/10 ली.) या क्वीनालफॉस (20 मिली./10 ली.) तथा डाइमेथोएट (15 मिली./10 ली.) या कार्बोरिल (20 ग्रा./10 ली.) का घोल बनाकर दो–दो छिड़काव एकान्तर विधि से करें।

4. मृदाजनित एवं पत्तियों पर लगने वाले रोगों के नियंत्रण का प्रबन्ध करें फाइटोपथोरा के नियंत्रण के लिए 1 प्रतिशत बोडो मिक्चर में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का घोल बनाकर वर्षा ऋतु में छिड़काव करें। कैंकर के निदान हेतु स्ट्रेपटोसाइक्लिन या पाउसामाइसिन (500 पीपीएम) का 2–3 छिड़काव नये कल्ले आते समय करें।

इस प्रकार से यदि सूचीबद्ध तरीके से प्रयास किये जाय तो नींबूवर्गीय फलों में सूखने की समस्या तथा कम पैदावार की समस्या से निजात मिल सकती है।

अन्य फल

नवोदित झारखण्ड प्रान्त में अनेक स्थानीय एवं देशी फल बहुतायत में पाये जाते हैं जिनका उत्पादन केवल उनके प्राकृतिक आवास क्षेत्रों में ही होता है। चिरौंजी, बेल, कमरख, आसाम लेमन, जामुन, कैथा, केंद आदि इस क्षेत्र के देशी फल हैं जबकि इमली, शरीफा, सपोटा (चीकू) नाशपाती, सतालु, इत्यादि इस क्षेत्र में वर्षा से उगाये जाने के कारण इस क्षेत्र की जलवायु में स्थानीय फलों की तरह ही उत्पादन देते हैं। ये फल स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अत्यंत ही उपयोगी है। इनमें अनेक खनिज तत्व एवं विटामिन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जिनका विवरण नीचे सारणी में दिया गया है। ये स्थानीय फल यहाँ की भूमि और जलवायु में अच्छी तरह पनपते और उत्पादन देते हैं परन्तु इनकी व्यवसायिक खेती न होने के कारण इन्हें गौण फलों की श्रेणी में रखा जाता है। यदि इनका वैज्ञानिक तरीके से खेती की जाये तो इनसे अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। उत्पादन बढ़ाने के साथ ही साथ यदि इनके उपयोग एवं परिरक्षण पर भी ध्यान दिया जाये तो इस क्षेत्र के किसानों को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। विभिन्न फलों की आवश्यक जानकारी यहां पर दिया जा रहा है जबकि कुछ फल जो दिन प्रतिदिन ज्यादा प्रचलित होते जा रहे हैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी भी इस पुस्तक में देने का प्रयास किया गया है।

सारणी - 1 : विभिन्न स्थानीय फलों में प्रमुख पोषक तत्व

फल प्रजाति	प्रमुख पोषक तत्व (ग्रा/100 ग्राम)				
	नमी	प्रोटीन वास	खनिज	रेशा	तत्व
शरीफा	70	2.4	1.	0.10	2.5
बेल	61	2.6	0.4	0.10	2.9
चीकू	74	0.7	1.1	0.5	2.6
जामुन	85	0.7	1.3	0.03	0.9
गुलाब जामुन	90	1.0	0.9	0.02	0.6
चिरौंजी	3	21.6	59.1	0.06	3.8
कमरख	91	0.8	0.1	0.03	0.9
कैथा	64	8.0	3.5	0.01	5.0
केंद	83	2.8	0.2	0.07	1.8
नाशपाती	83	0.4	0.1	0.30	2.1
सतालू	88	0.8	0.1	0.40	2.3
आसाम लेमन	87	0.1	0.1	0.05	0.4
इमली	52	3.1	0.1	0.30	5.6

भूमि का चुनाव

स्थानीय फलों के फसल उत्पादन के लिए इस क्षेत्र की टांड़ एवं उपरवार जमीन अत्यंत उपयुक्त पायी गयी है। इस जमीन में वर्षा ऋतु में मृदा कटाव के कारण ऊपरी उपजाऊ भाग बह जाया करता है। अतः उसमें कन्टूर के अनुसार मेड़ बना करके छोटे–छोटे खेत बनाकर इन पौधों की खेती की जा सकती है। जहाँ तक संभव हो, किसी स्थान पर उन्हीं स्थानीय फलों की खेती करें जहाँ पर प्राकृतिक जंगलों एवं आस–पास के क्षेत्रों में उसके पौधे उग रहे हों। उदाहरण के लिए नेतरहाट के आस–पास का क्षेत्र सतालू एवं नाशपाती, साहिबगंज, पाकुड़, रांची एवं दुमका का क्षेत्र शरीफा; रांची, पश्चिम सिंहभूम एवं आस–पास का क्षेत्र सपोटा, इमली, केंद, बेल, जामुन, गुलाब जामुन, कमरख, कैथा तथा झारखण्ड का मध्य एवं पूर्वी भाग आसाम लेमन, चीकू, शरीफा, इमली, चिरौंजी, जामुन, नाशपाती इत्यादि फलों के सफल उत्पादन के लिए उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त कुछ देशी फलों जैसे

केंद, शरीफा, चिरौंजी, इमली इत्यादि को उनके प्राकृतिक आवास में (स्वस्थान पर ही) रख–रखाव करके उनसे अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

बाग लगाने की तैयारी एवं रोपण

स्थानीय फलों की लाभदायक खेती के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करें जहाँ अन्य फसलों को पैदा करने में समस्या हो। चुने हुए स्थान को पहले साफ करके कन्टूर के अनुसार मेढ़बन्दी कर लें। तत्पश्चात् उसमें निश्चित दूरी पर गड्ढा तैयार करके पौध रोपण करना चाहिए। बड़े आकार वाले पौधों जैसे – इमली, केंद, चीकू इत्यादि को 8–10 मी. लाइन से लाइन तथा 8–10 मी. पौधे से पौधे की दूरी पर लगाना चाहिए जबकि छोटे आकार वाले पौधों जैसे – शरीफा, नाशपाती, गंधराज इत्यादि को 5 मी. लाइन से लाइन और 5 मी. पौधे से पौधे की दूरी पर लगाना चाहिए। रेखांकन करने के बाद मई माह में निश्चित दूरी पर 1 x 1 x 1 मी. (बड़े पौधों के लिए) 60 x 60 x 60 सेमी (छोटे पौधों के लिए) आकार के गड्ढे तैयार कर लेना चाहिए। 15 दिन खुला छोड़ने के पश्चात् गड्ढे को उसके ऊपरी भाग की मिट्टी में 25–30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद की दर से मिलाकर भर देना चाहिए। जब गड्ढे की मिट्टी 1 या 2 बरसात के बाद अच्छी तरह दब जाये तब जून–जुलाई के महीने में गड्ढे के बीचोबीच पौधों का पिंडी के आकार का गड्ढा बनाकर लगाने से अच्छी सफलता मिलती है। पौधा लगाने के बाद उसके चारों तरफ की मिट्टी को अच्छी तरह से दबाकर एक थाला बना देना चाहिए। इन थालों में 1 सप्ताह तक प्रति दिन एक बाल्टी पानी देते रहना चाहिए। यदि बरसात हो रही हो तो पानी देने की आवश्यकता नहीं होती।

पौधा तैयार करना

गौण फलों की अधिकांश प्रजातियों के पौधे बीज द्वारा ही तैयार किये जाते हैं परन्तु पूर्ण सत्यरूपता के लिए वानस्पतिक विधि से पौधा तैयार करना चाहिए। आसाम लेमन का पौधा दाब कलम या अर्द्धकठोर कलम विधि से तैयार किया जा सकता है जबकि नाशपाती और सतालू का पौधा कठोर कलम विधि द्वारा तैयार कर सकते हैं। इमली के बीजू पौधों में फलन देर से आती है अतः जल्दी फलन के लिए कलिकायन विधि द्वारा पौधा तैयार कर सकते हैं। शरीफा के पौधों को फरवरी–मार्च में एक साल पुराने बीजू पौधों पर ग्राफ्टिंग विधि द्वारा तैयार किया जा सकता है। इसके बीजू पौधों से भी तीसरे वर्ष फल मिलना प्रारंभ हो जाता है। विभिन्न स्थानीय फलों के पौधों को तैयार करने की विधि एवं उचित समय का विवरण निम्न सारणी में दिया जा रहा है।

स्थानीय फलों के पौधे तैयार करने की विधि एवं समय

फल प्रजाति	पौधा तैयार करने की विधि	पौधा तैयार करने का उचित समय
शरीफा	बीज, ग्राफ्टिंग	जून–अगस्त, फरवरी–मार्च
बेल	बीज, कलिकायन	जून–अगस्त
चीकू	बीज, ग्राफ्टिंग	जून–अगस्त
जामुन	बीज, कलिकायन	जून–अगस्त
गुलाब जामुन	गूटी, बीज	जुलाई–अगस्त
चिरौंजी	बीज, ग्राफ्टिंग	जून–जुलाई
कमरख	गूटी, बीज, जड़ कलम	जून–अगस्त
कैथा	बीज	जुलाई–अगस्त

केंद	बीज, ग्राफि्टंग, जड़ कलम	जुलाई–अगस्त
नाशपाती	कठोर कलम	फरवरी–मार्च
सतालू	ग्राफि्टंग, कलिकायन	फरवरी–मार्च
आसाम लेमन	दाब कलम, अर्द्धकठोर कलम	जुलाई–अक्टूबर
इमली	बीज, कलिकायन	जून–अगस्त

किस्मों

देशी फलों के उन्नत किस्मों के चयन एवं सुधार का काम बागवानी एवं कृषि वानिकी शोध कार्यक्रम, प्लाण्डु, रांची में किया जा रहा है। उत्पादकता एवं गुणवत्ता के आधार पर केन्द्र ने बेल, शरीफा, इमली एवं गंधराज की कुछ अच्छी किस्मों का पता लगाया है। नाशपाती की नेतरहाट लोकल तथा नख पीयर, सतालू की प्रताप, शान–ए–पंजाब एवं प्रभात तथा चीकू की काली पत्ती, पी.के.एम.1, डी.एस.एच.2, क्रिकेट बाल एवं भूरी पत्ती इस क्षेत्र की सफलतम् किस्में हैं। इस क्षेत्र के लिए विभिन्न स्थानीय एवं देशी फलों की उपयुक्त किस्मों का विवरण निम्न सारणी में दिया जा रहा है।

झारखण्ड के लिए स्थानीय फलों की प्रमुख किस्में

फल प्रजाति	उपयुक्त किस्में
शरीफा	सी.एच.इ.एस, सेलेक्सन, बालानगर, अर्का सहन
बेल	नरेन्द्र बेल–5, नरेन्द्र बेल–7, पंत अपर्णा, सी एस एच बेल–2, गया कागजी
चीकू	क्रिकेट बाल, काली पत्ती, भूरी पत्ती, डीएस.एच–2
जामुन	स्थानीय, फरेन्दा
गुलाब जामुन	स्थानीय
चिरौंजी	स्थानीय
कमरख	स्थानीय
कैथा	स्थानीय
केंद	स्थानीय
नाशपाती	नेतरहाट लोकल, नख पीयर
सतालू	प्रभात, प्रताप, फ्लोरिडा सन, फ्लोरिडा रेड, शान–ए–पंजाब
आसाम लेमन	गंधराज
इमली	पी.के.एम.–1, प्रतिष्ठान, 3 स्थानीय

पौधों की देख-रेख एवं काट-छांट

पौधा लगाने के प्रथम 2–3 वर्षों तक समुचित देख–रेख की आवश्यकता पड़ती है। खास तौर पर जाड़े एवं गरमी में पौधों की नियमित सिंचाई तथा 'लू' एवं पाले से बचाना जरूरी होता है। पौधों के 2–3 वर्ष की उम्र तक उसमें काट–छांट करके निश्चित आकार देना चाहिए जिससे भविष्य में इनका ढांचा मजबूत एवं आकार सुडौल बन सकें। जब पौधे फलन में आ जाते हैं तब कुछ प्रजातियों जैसे नाशपाती एवं सतालु में जनवरी–फरवरी में काट–छांट

करने से नई शाखाओं एवं फूलों का विकास होता है। इमली, शरीफा, चीकू, कमरख, बेल, चिरौंजी इत्यादि में नियमित काट–छांट की आवश्यकता कम पड़ती है। पौधों की समय–समय पर निकाई–गुड़ाई करके खर–पतवार नियंत्रण करते रहना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

गौण एवं स्थानीय फलदार पौधों को संतुलित खाद एवं उर्वरक देने से उनकी बढ़वार एवं पैदावार अधिक होती है। पौधों को 3 वर्षों तक 20–25 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 1.5–2.0 कि.ग्रा. करंज की खली, 150 ग्रा. यूरिया, 150 सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 150 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश देना चाहिए। इस मात्रा को धीरे–धीरे बढ़ाते रहना चाहिए और पूर्ण विकसित होने पर पौधों को 30–40 किग्रा. गोबर की खाद 3 किग्रा. करंज की खली, 1 किग्रा. यूरिया, 800–1000 ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं 400 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वृक्ष प्रति वर्ष देना चाहिए। खाद एवं उर्वरकों को जून–जुलाई में छत्रक के नीचे गोलाई में देकर अच्छी तरह ढक देना चाहिए। नाशपाती एवं सतालू में फरवरी–मार्च में खाद देने से अच्छी पैदावार मिलती है। खाद एवं उर्वरक देने के बाद यदि बरसात नहीं हो रही है तो समुचित सिंचाई करने से पौधों को लाभ मिलता है।

सिंचाई एवं जल संरक्षण

पौधों के प्रारंभिक अवस्था में गरमी के मौसम में 10–12 दिनों के अन्तराल तथा सर्दी के मौसम में 15–20 दिनों के अंतराल पर पानी देना चाहिए। पौधों के जड़ों के पास नमी का उचित स्तर बनाये रखने तथा वर्षा जल को संरक्षित रखने के लिए सितम्बर–अक्टूबर में धान के पुआल या सूखे खर–पतवार की पलवार (मल्चिंग) बिछाने से पौधों की बढ़वार एवं उपज अच्छी होती है। स्थानीय फल–पौधे चूंकि इस जलवायु के पूर्ण अभ्यस्त होते हैं अतः इन्हे अधिक पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती है, परन्तु भरपूर पैदावार के लिए पौधों को समय–समय पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करना लाभदायक होता है। नाशपाती, सतालु और चीकू में फल विकास के समय पानी आवश्यक होता है जबकि शरीफा, इमली इत्यादि का फल विकास वर्षा ऋतु में होने के कारण सिंचाई की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है।

पुष्पण एवं फलन

वानस्पतिक विधि से तैयार पौधे जल्दी फल देने लगते हैं जबकि बीज द्वारा तैयार पौधों में फलन देर से प्रारंभ होता है। इस केन्द्र पर किए गए परीक्षणों से यह पता लगाया गया है कि उचित बाग प्रबंध करने पर शरीफा का बीजू पौधा तीसरे वर्ष से फल देना प्रारंभ कर देता है। विभिन्न पौधों में फूलने एवं फलने का समय निम्न सारणी में दिया जा रहा है। अतः उसमें उसी के अनुसार बाग प्रबंध एवं देख–रेख करनी चाहिए।

स्थानीय फलों के फूलने-फलने की उम्र एवं समय

फल	फलने की उम्र (वर्ष)		फूलने का समय	फल पकने का समय
	बीजू	कलमी		
शरीफा	2–3	2–3	जुलाई–अगस्त	सितम्बर–अक्टूबर
बेल	8–10	4–5	अप्रैल–मई	मार्च–अप्रैल
चीकू	8–10	2–3	फरवरी–अप्रैल	जुलाई–अगस्त
जामुन	8–10	5–6	मार्च–अप्रैल	जून–अगस्त

गुलाब जामुन	7–8	5–6	मार्च–अप्रैल	जून–जुलाई
चिरौंजी	10–12	5–7	फरवरी–मार्च	मई–जून
कमरख	8–10	5–6	मार्च–अप्रैल	अगस्त–सितम्बर
कैथा	10–12	–	मार्च–अप्रैल	अगस्त–सितम्बर
नाशपाती	5–6	3–4	फरवरी–मार्च	जून–अगस्त
सतालू	5–6	2–3	फरवरी–मार्च	अप्रैल–मई
आसाम लेमन	4–5	2–3	वर्ष भर	वर्ष भर
इमली	20–25	7–8	जुलाई–अगस्त	फरवरी–मार्च

पौध सुरक्षा

गौण एवं स्थानीय फल साधारणतः कीट एवं रोग–रोधी होते हैं अतः इनमें किसी विशेष पौध सुरक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती। कुछ फलों जैसे जामुन, कैथा इत्यादि में तना वेधन कीट का प्रकोप होता है। इसके नियंत्रण के लिए टहनी पर स्थित छिद्रों को साफ करके मिट्टी के तेल से भिंगी हुई रूई ठूस कर चिकनी मिट्टी के लेप कर देने से उसमें उपस्थित कीट मर जाता है। यदि पत्ती खाने वाले या फूल का रस चूसने वाले कीटों का प्रकोप देखा जाए तो उसे मोनोक्रोटोफास दवा से 0.1 प्रतिशत घोल (1 मिली. दवा प्रति ली. पानी) के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

प्राकृतिक स्थिति में स्थानीय गौण फलों का प्रबंध

कुछ गौण फल जैसे इमली एवं केंद का नया बागीचा लगाने पर उसमें फलन में काफी समय लगता है। अतः यदि इनके पुराने पौधों को उसी स्थान पर अच्छी तरह से रख–रखाव एवं देख–रेख किया जाए तो उनसे अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। जैसे कि विदित है कि जंगल में उगने वाले पौधों का अधिकांश फल चिड़ियों या जंगली जानवरों द्वारा बर्बाद हो जाता है। अतः ऐसे पौधों को यदि अच्छी तरह से साफ–सफाई करके उसका उचित प्रबंध किया जाए एवं उसमें जुलाई–अगस्त के महीने में उचित तरीके से खाद एवं उर्वरक का प्रयोग किया जाए तो उन पौधों से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। झारखण्ड प्रदेश में बहुत सारे छोटे–छोटे झुरमुट और जंगल हैं यदि उन स्थानों को स्वस्थान बागीचों (इन सीटू आरचर्ड) में बदल दिया जाए तो इस क्षेत्र के स्थानीय फल प्रजातियों के उत्पादन को कई गुना बढ़ाया जा सकता है।

पौधशाला प्रबंधन

परिचय

- पौधशाला एक स्थान है जहाँ पौध (बिचड़ा), नया पौधा या अन्य प्रकार के लगाने लायक पौधे उगाये जाते हैं साथ ही साथ इसे फूलवारी एवं बगीचे में लगाने हेतु बेचा जाता है।
- सही प्रकार का पौधा, स्वस्थ्य पौधा एवं अच्छे गुण वाले पौधा सामग्री की उपलब्धता सफलतम एवं लाभकारी फल उत्पादन के लिए पूर्व आवश्यकता है।
- फलदार पौधशाला स्थापित करना एक लम्बे समय का जोखिम पूर्ण कार्य है, और इसमें सावधानीपूर्वक योजना बनाने के साथ ही दक्षता की भी आवश्यकता होती है।
- शुरू में यदि गलती की जाय तो इसे आसानी से सुधारा नहीं जा सकता है एवं आमदनी पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।
- इसलिए हमें पौधशाला स्थापित करने के पूर्व उनके प्रत्येक पहलू पर ध्यान देना चाहिए।

पौधशाला का महत्त्व

1. अंकुरण के प्रथम सप्ताह में नये बिचड़े/पौधों का विशेष ध्यान रखना होता है। पौधशाला में बिचड़ों को उगाने से आसानी एवं कम खर्च में इसका देखभाल किया जा सकता है।
2. अधिकांश फलदार पौधों का प्रवर्धन कार्यिक विधियों द्वारा किया जाता है। इसके लिए विशेष जानकारी एवं देखभाल की आवश्यकता होती है। पौधशाला में नियंत्रित वातावरण रहने के चलते पौधों का प्रवर्धन सुगमतापूर्वक, कुशल मजदूर/माली द्वारा किया जा सकता है।
3. 'कटिंग' में सुगमतापूर्वक जड़ों का विकास होगा यदि उनको मिस्ट–चैम्बर में रखा जाए। 'मिस्ट चैम्बर' पौधशाला का आवश्यक भाग होता है।
4. पौधशाला में तैयार किया गया पौध (बिचड़ा) सफलतापूर्वक खेतों में लगाया जा सकता है।
5. पौधशाला से तैयार पौधों का पुनः 'हार्डनिंग' किया जाता है जिससे खेतों में पौधा सूखने की समस्या कम हो जाती है।
6. यदि पौधों को पौधशाला में तैयार किया जाए तो हमें बगीचों/खेतों को तैयारी करने के लिए अधिक समय मिलता है।
7. पौधों का 'हार्डनिंग' (यानि प्रतिकूल वातावरण में जीवित रहने की शक्ति) पौधशाला में ही सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

पौधशाला का वर्गीकरण

- आकार के आधार पर पौधशाला को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है :
    1. छोटा पौधशाला (घर के लिए नर्सरी)
    2. बड़ा पौधशाला (व्यापारिक नर्सरी)
        - क. ग्रामीण पौधशाला
        - ख. शहरी पौधशाला

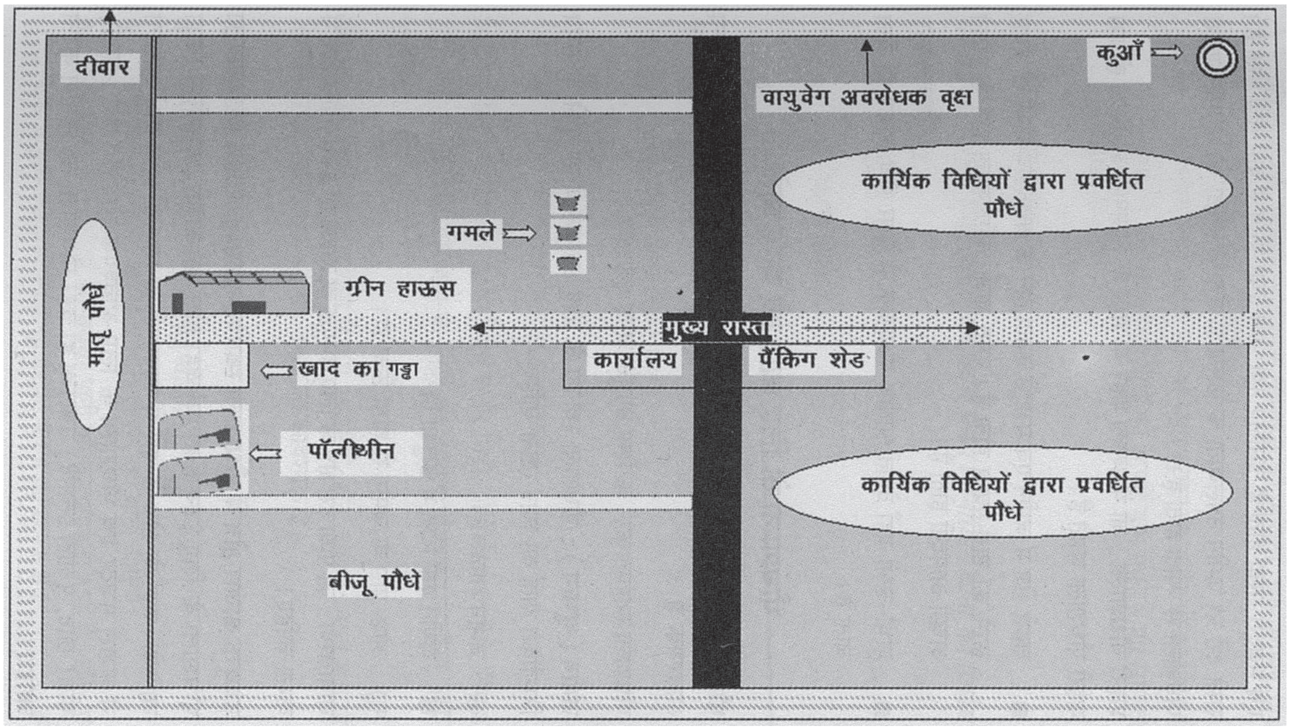

आदर्श पौधशाला की रूपरेखा

छोटा पौधशाला

- इस तरह का पौधशाला कम जगहों में छोटे स्तर पर की जाती है।
- इस पौधशाला से सिर्फ किसान भाई अपने फूलवारी की आवश्यकता के पौधे तैयार कर सकते हैं।
- पौधशाला का आकार छोटा होने एवं कम संख्या में पौधों के प्रवर्धन के चलते तैयार पौधों पर ज्यादा खर्च पड़ता है।

व्यापारिक पौधशाला

- इस तरह के पौधशाला में पौधों के प्रवर्धन के लागत मूल्यों को कम किया जाता है।
- प्रवर्धन विधि सस्ता एवं वैज्ञानिक दृष्टि से सही हो, उनका उपयोग किया जाता है।
- महँगे प्रवर्धन विधियों पर कम ध्यान दिया जाता है।
- **व्यापारिक पौधशाला** को दो भागों में विभक्त किया गया है :

  ग्रामीण पौधशाला : जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस तरह का पौधशाला गाँवों में उच्च पथ सड़क/रेलवे स्टेशन के आसपास स्थित होता है। चूँकि गाँव में जमीन एवं मजदूरी सस्ती होती है, इसलिए नया पौधा तैयार करने में कम खर्च होता है। सस्ते दरों पर जमीन उपलब्धता के कारण ग्रामीण पौधशाला का क्षेत्रफल शहरी पौधशाला से ज्यादा होता है।

  शहरी पौधशाला : जो पौधशाला शहर या शहर के आसपास अवस्थित हो उसे शहरी पौधशाला कहते हैं।

  - ❑ शहरी क्षेत्र में जमीन एवं मजदूरी ज्यादा होने के चलते नये पौधों को तैयार करने का खर्च ज्यादा होता है। परन्तु बाजार माँग ज्यादा होने के चलते अच्छी आमदनी होती है।
  - ❑ कभी–कभी यहाँ देहाती/ग्रामीण पौधशाला से तैयार पौधे लाकर भी बेचा जाता है।

पौधशाला के लिए ध्यान देने योग्य बातें

- **पौधशाला स्थापित** करने के पूर्व निम्नांकित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है :

  पौधशाला स्थापित करने के लिए उपयुक्त जगह एवं दिशा :

1. **जमीन (भूभाग) :** पौधशाला स्थापना के लिए उपयुक्त जगह चुनने के समय निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिए –
   - क) जमीन समतल हो
   - ख) जमीन एक दिशा में ढलुआ हो
   - ग) आसपास के जमीन से थोड़ा ऊँचा हो।
2. **वातावरण :** जो पौधा उस क्षेत्र के लिए उपयुक्त हो उनका ही प्रवर्धन पौधशाला में करना चाहिए।
3. **उपयुक्त बाजार क्षेत्र में पौधशाला स्थापित करना :** जो क्षेत्र का वातावरण पौधशाला के लिए उपयुक्त हो एवं जहाँ पौधों का विपणन आसानी से किया जा सके। जहाँ के क्षेत्र के बारे में जानकारी हो साथ ही साथ जहाँ आसानी से कुशल मजदूर एवं पौधशाला के लिए आवश्यक सामग्री (जैसे – पानी, गोबर खाद, पुआल इत्यादि) उपलब्ध हो वहीं पौधशाला का निर्माण करना चाहिए।
4. **परिवहन की सुविधा :** उपयुक्त परिवहन की सुविधा, एक सफल पौधशाला व्यवसाय के लिए अति आवश्यक है।
   - पौधशाला पक्की सड़क मार्ग या रेलवे स्टेशन के समीप होना चाहिए जिससे ग्राहकों के माँग के अनुसार पौधों की आपूर्ति कम समय में एवं सुगमतापूर्वक किया जा सके।

5. मिट्टी का चुनाव

पौधशाला के लिए मिट्टी का चुनाव करते समय निम्नांकित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए :

- मिट्टी के प्रकार
- जल धारण क्षमता
- मिट्टी की उर्वरता

फलदार पौधों के लिए अच्छा होता है :

- दोमट मिट्टी/बलुई दोमट मिट्टी
- प्रचुर उर्वरता
- मिट्टी का पी.एच. 5.5 से 6.5 के बीच

जमीन में मिट्टी का कम सतह, कड़ी एवं कठोर मिट्टी, पौधों के बढ़वार के लिए उपयुक्त नहीं होती है। इसलिए इस तरह के मिट्टी का उपयोग पौधशाला के लिए नहीं करना चाहिए।

पौधशाला में मिट्टी की सतह कम से कम 75 से.मी. होना चाहिए। परन्तु मातृ पौधों के लिए मिट्टी का सतह 1 से 1.5 मी. तक होना आवश्यक है।

6. पौधशाला में जल प्रबंधन

- पानी का पी.एच. उदासीन होना चाहिए।
- पानी में किसी प्रकार का घुलनशील लवण नहीं होना चाहिए।
- पौधशाला में नये पौधों को बराबर पानी की आवश्यकता होती है, अतः समुचित मात्रा में जल की उपलब्धता सुनिश्चित करना आवश्यक है।

- झारखण्ड राज्य में किसान भाई जल का प्रबन्ध निम्न प्रकार से कर सकते हैं :

1) वर्षा के पानी का संचय कर :
   - ❑ जलकुण्ड का निर्माण कर
   - ❑ तालाब का निर्माण कर

2) बोरिंग कर

7. **खाद एवं उवर्रक का प्रबन्धन**

- पौधशाला हेतु काफी मात्रा में कार्बनिक खादों की आवश्यकता होती है जैसे — गोबर की खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद एवं पत्तों का खाद इत्यादि। इन सबों की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में होना चाहिए।

पौधशाला के भाग :

एक आदर्श पौधशाला के निम्नांकित भाग या हिस्से होने चाहिए :

1. मकान संरचनाएँ	2. मातृ पौधों का स्थान
3. बीज की क्यारियाँ	4. कार्यिक विधि द्वारा प्रबर्धन हेतु क्यारी
5. क्यारी चक्र हेतू खाली जगह	6. गमला क्षेत्र
7. कुआँ या तालाब के लिए स्थान	8. खाद् के गढ्ढे
9. रास्ते व सड़क	10. प्रबर्धन हेतु विशेष संरचनाएँ हेतु स्थान
11. चहारदीवारी	

- **मकान संरचनाएँ :** इसमें मुख्यतः दफ्तर, विक्रय काउंटर, पैकेजिंग सेड, गमला भरने के लिए सेड, गोदाम, औजार सेड, ट्रैक्टर सेड, बैल सेड एवं आवासीय मकान इत्यादि होते हैं।

  i) **दफ्तर :** मकान संरचनाओं में दफ्तर का विशेष महत्व होता है, क्योंकि पौधशाला का क्रय–विक्रय का मुख्य केन्द्र दफ्तर ही होता है। दफ्तर का आकार पौधशाला के व्यापार के अनुसार बड़ा या छोटा होता है।

  ii) **विक्रय काउंटर :** विक्रय काउंटर दफ्तर वाले मकान के साथ ही संलग्न होता है, जहाँ पौधों का विक्रय किया जाता है।

  iii) **पैकेजिंग सेड :** पैकेजिंग सेड, विक्रय काउंटर के नजदीक होना चाहिए। पैकेजिंग सेड में पैकिंग एवं लेबल का सामान (टोकरी, काठ का बक्सा, पोलीथीन बैग, गमला, कार्टुन, पुआल, रस्सी, लेबल इत्यादि) होना चाहिए, ताकि ग्राहक को पौधा बेचने के समय सही ढंग से पौधा को लेबल एवं पैकिंग कर के दिया जा सके।

  iv) **गमला भरने के लिए सेड :** इस सेड में विभिन्न आकार एवं प्रकार के गमले तथा गमले में भरने के लिए विभिन्न प्रकार के माध्यम (मिट्टी, पत्ती खाद, गोबर खाद, नदी का रेतीली मिट्टी इत्यादि) रखे जाते हैं। गमले भरने का काम इस सेड के अन्दर किया जाता है।

  v) **गोदाम :** खाद, स्प्रेयर मशीन, कीटनाशक, फफूँद नाशक, कुदाल, खुरपी एवं अन्य प्रकार के औजारों को रखने के लिए गोदाम की आवश्यकता होती है। गोदाम का निर्माण दफ्तर से थोड़ा दूर एवं पौधशाला के अन्दर होना चाहिए।

  vi) **कृषि यंत्र रखने के लिए सेड :** पौधशाला में उपयोग आने वाले यंत्रों को रखने के लिए एक सेड का निर्माण करना आवश्यक होता है। इस सेड में — डिस्क हॅरो, मिनी ट्रैक्टर, ट्राली, पम्पसेट, मोआर इत्यादि रखा जाता है।

vii) **बैल रखने के लिए सेड :** छोटे पौधशाला में खासकर ग्रामीण इलाकों में बैल द्वारा संचालित यंत्रों का प्रयोग पौधशाला में किया जाता है। अतः इनके रखने के लिए भी शेड का निर्माण पौधशाला के पिछले हिस्से में करना चाहिए।

viii) **आवासीय परिसर :** बड़े पौधशाला में जहाँ पौधशाला का मालिक, पदाधिकारीगण एवं कुशल मजदूर को रहने की व्यवस्था करना होता है, वहाँ पौधशाला के आस–पास, आवासीय–परिसर का निर्माण किया जाता है।

- **मातृ पौधों का चुनाव एवं बेड :** मातृ पौधों का चुनाव करते समय निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिए :
  1) मातृ पौधा स्वस्थ्य हो
  2) कीट एवं रोग मुक्त हो
  3) आनुवंशिक रूप से सत्य हो
  4) उनका पूर्व का रिकार्ड हो
     - ❑ क्षेत्र एवं वातावरण के अनुरूप ही उपयुक्त प्रभेद के मातृ पौधों का चुनाव करना चाहिए। मातृ पौधे किसी अच्छे एवं विश्वसनीय संस्थाओं से लेना चाहिए।
     - ❑ मातृ पौधों की संख्या पौधशाला के आकार एवं पौधों के मांग के अनुसार निर्धारित करना चाहिए।
     - ❑ मातृ पौधों का बेड साधारणतयः पश्चिम–उत्तर दिशा में होना चाहिए।

मूलवृंत का उत्पादन

मूलवृंत पौधों का वह भाग है जिसपर उन्नत पौधों का कली या कली युक्त डंठल लगाया जाता है। यह उन्नत पौधों को जड़–तंत्र प्रदान करता है। मूलवृंत पर पौधों का बढ़वार, फूलों एवं फलों का लगना निर्भर करता है। मूलवृंत रोग, कीटों एवं वातावरण के प्रति सहिष्णुता भी प्रदान करता है। अतः उन्नत पौधों के लिए उपयुक्त मूलवृंत का चुनाव करना आवश्यक होता है। मूलवृंत प्रायः बीज एवं कटिंग के द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

- **बीजवाड़ी**

बीजवाड़ी पौधशाला का वह स्थान है जहाँ मूलवृंत या बीज द्वारा पौधे तैयार किये जाते हैं। इस काम हेतु उठी हुई (ऊँची) क्यारियाँ खुले स्थान में बनाई जानी चाहिए। बीजवाड़ी की मिट्टी को भी प्रयोग से पहले शोधित कर लेना चाहिए तथा इसे 2–3 वर्षों बाद बदलते रहना चाहिए।

- **प्रवर्धित पौधों का स्थान**

विशेष कार्यिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों के लिए खुले स्थान की आवश्यकता होती है। अतः पौधशाला का रेखांकन करते समय कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों के लिए समुचित स्थान की व्यवस्था होनी चाहिए।

- **स्टूल क्यारी**

स्टूल क्यारी ऐसी जगह पर बनाई जानी चाहिए जो खुली हो और जहाँ सूर्य की पर्याप्त रोशनी मिलती रहे।

- **क्यारी चक्र हेतु खाली स्थान**

एक आदर्श पौधशाला में कुछ खाली स्थान अवश्य रखा जाना चाहिए ताकि समय–समय पर पौधशाला में बीजारोपण या क्यारियों की अदला–बदली की जा सके।

- **गमलों का स्थान**

पौधशाला में गमलों में उगाये जाने वाले पौधों को आवश्यकतानुसार धूप वाले खुले तथा आंशिक छायादार स्थानों में रखना होता है। बीज द्वारा उगाए गए पपीते, फालसा, कटहल, शरीफा आदि के पौधे खुले स्थान में एवं कार्यिक विधियों

द्वारा तैयार पौधे छायादार स्थान पर रखने चाहिए। गमलों में पौधशाला की मिट्टी, रेत, पत्तियों की खाद, बालू और गोबर की खाद का मिश्रण भरना चाहिए। गमले की पेंदी में छेद के ऊपर कंकड़ रखकर गमले का भराव करना चाहिए, जिससे जल निकास अच्छा बना रहे।

आजकल गमले की बजाए अधिकतर पॉलीथीन के लिफाफे में बीजारोपण या पौधारोपण करते हैं। इस प्रकार पौधशाला से पौधों के उठाने तथा एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचाने में सुविधा रहती है और पौधे क्षतिग्रस्त होने से भी बच जाते हैं।

- **सड़क व रास्ते**

कार्यालय व पौधशाला के सारे भाग सड़क एवं छोटे–छोटे कच्चे या पक्के रास्तों से जुड़े होने चाहिए।

- **सिंचाई की व्यवस्था**

सिंचाई हेतु कुआँ या तालाब की व्यवस्था पौधशाला के किसी विशेष स्थान पर होनी चाहिए। सिंचाई हेतु आधुनिक पौधशाला में कुहासा तकनीक, टपकाव विधि या छिड़काव प्रणाली की व्यवस्था होनी चाहिए।

- **खाद का गड्ढा**

पौधशाला के किसी दूर कोने में खाद का गड्ढा होना चाहिए। जगह–जगह खाद के गड्ढे होने से पौधशाला के आकर्षण व सुन्दरता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

- **रोपण, बीजांकन एवं प्रवर्धन सम्बन्धी माध्यम सामग्री**

पौधशाला में विभिन्न प्रवर्धन माध्यमों, जैसे – पीट, वर्मिकुलाइट, मॉस घास आदि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए, जिनके भण्डारण की भी सुरक्षित व्यवस्था होनी चाहिए। पौधशाला में प्रयुक्त होने वाले रसायनों एवं वृद्धि नियामकों को फ्रिज में रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

- **चहारदीवारी व बाड़**

जहाँ तक संभव हो, पौधशाला के चारों ओर ऊँची दीवार या कंटीले तार की बाड़ लगायी जानी चाहिए, जिससे जानवरों या तेज हवाओं से क्षति को रोका जा सके। पौधशाला के चारों ओर घनी झाड़ियों का बाड़ भी ठीक रहता है।

पौधशाला के लिए प्रवर्धन माध्यम

बीज या कार्यिक प्रवर्धन द्वारा तैयार पौधों के लिए पौधशालक तरह–तरह के प्रवर्धन माध्यमों का उपयोग करते हैं परन्तु एक आदर्श माध्यम में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए –

1. माध्यम सघन व ठोस होना चाहिए ताकि उसमें लगाई जाने वाली कलमें या अंकुरण के समय बीज एक ही अवस्था में बने रहें।
2. इसमें आवश्यकतानुसार जल ग्रहण व निष्कासन की क्षमता होनी चाहिए।
3. इसका पी.एच. मान 5.5–7.0 के बीच होना चाहिए ताकि उसमें सभी प्रकार के पौधों को लगाया जा सके।
4. माध्यम कवक एवं कीटों से मुक्त और खरपतवारों के बीजों से रहित होना चाहिए।
5. यह पोषक तत्वों से भरपूर हो।

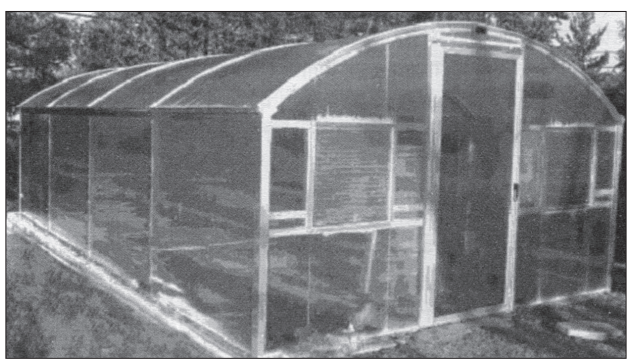

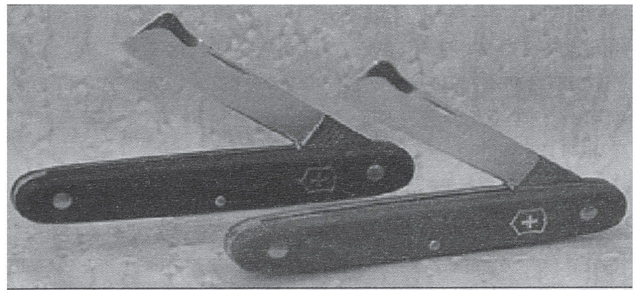

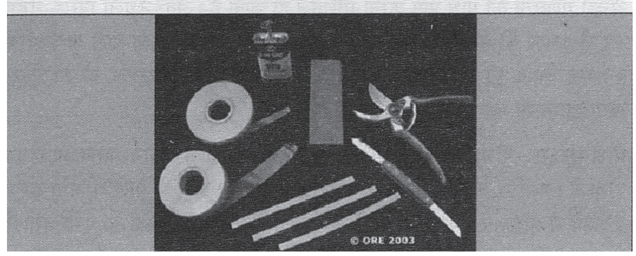

6. यह पाश्चरीकृत के उपयुक्त हो।

7. इसमें क्षारीयता नहीं के बराबर हो।

भारत में पौधशालाओं में प्रयुक्त होने वाले मुख्य प्रवर्धन माध्यमों के गुणों की संक्षिप्त जानकारी नीचे दी जा रही है।

मिट्टी : प्रवर्धन हेतु मिट्टी सर्वोचित एवं अधिकाधिक प्रयुक्त होने वाला माध्यम है। व्यावसायिक पौधशाला के लिए साधारणतः जीवांशयुक्त बलुई दोमट मिट्टी, जिसका पी.एच. मान 5.5 से 7.0 के बीच हो तथा उसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो ठीक रहती है। कंकरीली, चिकनी ऊसर भूमि पौधशाला के लिए ठीक नहीं रहती।

रेत या बालू : नदियों से प्राप्त बालू (रेत) का प्रयोग भी पौधशाला में अधिकाधिक किया जाता है। बालू को अधिकतर दूसरे माध्यमों के साथ मिलाकर प्रयोग में लाया जाता है। अक्सर बीज की क्यारियों के ऊपर इसकी एक पतली तह बिछा दी जाती है जो बीजांकुरण में सहायता करती है। प्रायः यह देखा गया है कि बालू के प्रयोग करने से जड़ें निकलने में सुगमता रहती है। बालू में कोई पोषक तत्व नहीं होता है। अतः गमलों में जड़ें निकलते ही या बीजों के स्तरण के बाद माध्यम बदल देना चाहिए। बालू में कवक या कीट हो सकते हैं अतः इसे प्रयोग से पहले हमेंशा फार्मेलिन से उपचारित कर लेना चाहिए।

मॉस घास : मॉस घास अक्सर पहाड़ी स्थानों में बरसात में उगने वाली घास है जिसका प्रयोग मुख्यतः गूटी बाँधने, कलमों को कुछ समय के लिए भण्डारित करने व उन्हें दूर–दराज के क्षेत्रों में भेजने के लिए किया जाता है। प्रयोग से पहले इसे अच्छी तरह साफ करके पानी में भिंगो लेना चाहिए। मॉस घास काफी हल्की होती है तथा इसमें पानी ग्रहण करने की क्षमता भी अच्छी होती है। इसका पी.एच. मान अम्लीय होता है।

वर्मिकुलाइट : यह एक अभ्रकी खनिज है जो गर्म होने पर काफी हल्का हो जाता है। रासायनिक तौर पर यह जलयोजित मैग्नीशियम एल्यूमिनियम आयरन सिलिकेट है जो पानी में अघुलनशील होता है, परन्तु इसमें पानी ग्रहण करने की अच्छी क्षमता होती है। बाजार में इसके कई व्यावसायिक ग्रेड उपलब्ध हैं परन्तु पौधशाला में अच्छी सफलता के लिए औद्योगिक ग्रेड ही अच्छा रहता है।

पत्तियों की खाद (लीफ मोल्ड) : पौधों की पत्तियों की सड़ी खाद का प्रयोग भी पौधशाला में व्यापक तौर पर होता है। लीफ मोल्ड बनाने के लिए पौधों की गिरी हुई पत्तियों को गड्ढों में डालकर उनके ऊपर यूरिया छिड़क कर सिंचाई कर देते हैं। लगभग एक वर्ष बाद लीफ मोल्ड अच्छी तरह सड़कर तैयार हो जाती है। लीफ मोल्ड में सूत्रिकृमियों, कवक या हानिकारक कीटों के होने का हमेशा भय रहता है। अतः प्रयोग से पहले इसे निर्जमित कर लेना चाहिए।

पर्लाइट : यह एक हल्के भूरे रंग का खनिज है जिसे कूटकर भट्टियों में 760 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर तापित किया जाता है जिसके फलस्वरूप यह निर्जम हल्के पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो जाता है। पर्लाइट का प्रयोग अन्य माध्यमों को साथ मिलाकर यौगिक या मिश्रण के रूप में किया जाता है। इसमें भी पानी धारण करने की अच्छी क्षमता होती है। यह कलमों को लगाने हेतु उचित माध्यम है।

पीट : यह जलीय तथा दलदल में उगने वाले पौधों के अपघटन से प्राप्त अवशेष है जिसका संघटन वहाँ पर मौजूद वनस्पतियों और अपघटन की अवस्था पर निर्भर करता है। इसका पी.एच. मान प्रायः अम्लीय होता है। उसमें पानी धारण करने की अच्छी क्षमता होती है। प्रयोग से पहले इसे अच्छी तरह पानी में नम कर लेना चाहिए। पीट को अन्य माध्यमों से मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

पुमाईस : इस माध्यम का प्रयोग अमेरिका में अकेले या अन्य माध्यमों (मुख्यतः पीट मॉस) को साथ मिलाकर किया जाता है।

इसमें मुख्यतः सिलीकॉन ऑक्साइड या अल्युमिनियम ऑक्साइड होता है जिसमें लोहे, कैल्शियम या मैग्नीशियम की विभिन्न मात्राएँ मौजूद रहती हैं।

पौधशाला के लिए प्रवर्धन संरचनाएँ

आजकल की आदर्श पौधशाला में पौधों के प्रवर्धन हेतु कई प्रकार की संरचनाओं का उपयोग समय–समय पर आवश्यक होता है। इनमें से सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली संरचनाओं का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

ग्रीन हाऊस

ग्रीन हाऊस का उपयोग पौधों के मुलायम भाग से कलम द्वारा प्रवर्धन एवं गूटी या स्टूलिंग द्वारा परिवर्धित पौधों को उचित वातावरण प्रदान करने हेतु किया जाता है। ग्रीन हाऊस पौधशाला के आकार एवं पौधशालक की आमदनी पर निर्भर करता है। साधारणतः ग्रीन हाऊस में कंकरीट और सीमेन्ट की चहारदीवारी पर लोहे के खम्भे द्वारा संरचना बनाकर गल्वनाइज्ड लोहे अथवा प्लास्टिक के तारों का घरनुमा जाल बिछा दिया जाता है। इस प्रकार से बने घर के अन्दर सिंचाई के लिए नलों द्वारा पानी की व्यवस्था की जाती है। आदर्श पौधघरों में मिस्ट सिंचाई (कुहासा) की भी व्यवस्था की जाती है। ऐसे पौधघरों को बनाने मे काफी अधिक लागत आती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने कम कीमत वाले ग्रीन घर का विकास किया है जिसे किसान आसानी से व कम पैसे से बनवा सकते हैं।

कांच घर

कांच घर का उपयोग बीजों के अंकुरण, कलम द्वारा प्रवर्धन व नये पौधों के अनुकूलन हेतु किया जाता है। कांच घर का निर्माण कई बातों पर निर्भर करता है परन्तु यह मुख्यतः पौधशाला के आकार, पौधशालक की आवश्यकता एवं लागत पर निर्भर करता है। आधुनिक कांच के घरों में तापमान व आर्द्रता पर पूर्ण नियंत्रण होता है। तापमान के नियंत्रण हेतु थर्मोस्टेट की व्यवस्था होती है। शुद्ध हवा के लिए निष्कासन पंखा एवं खिड़कियों का प्रबन्ध भी होता है। ठण्डे क्षेत्रों में गर्म पानी की व्यवस्था के लिए बिजली से संचालित तापक का प्रयोग किया जाता है। घर के अन्दर पर्याप्त नमी बनाने हेतु कुहासे का प्रबन्ध आवश्यक होता है।

प्लास्टिक घर

प्लास्टिक घर छोटी–छोटी पौधशालाओं के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। यही कारण है कि आजकल इनका प्रचलन मुख्य तौर से बीज बोने या फलदार पौधों के प्रवर्धन हेतु काफी बढ़ रहा है। प्लास्टिक घर बनाने हेतु 750 गेज की मोटी पॉलीथीन का प्रयोग किया जाता है। यह प्लास्टिक बांस के डण्डों से बने पंडाल के ऊपर बिछा दी जाती है। ध्यान रखने योग्य बात है कि ऐसे घरों में दिन में तापमान व रात को आर्द्रता बढ़ने की सम्भावना रहती है। अतः अच्छा रहता है यदि ऐसे घरों को आंशिक छायादार स्थान पर बनाया जाए। दिन में प्लास्टिक के दोनों किनारों को थोड़ी देर के लिए खोल देना चाहिए और अपराह्न चार बजे के आस–पास बन्द कर देना चाहिए ताकि पौधों को दिन के झुलसाने वाले तापमान से बचाया जा सके और रात्रि का तापमान भी कम न हो सके। कई देशों में पॉलीटनल रूपी पॉलीथीन के घरों का प्रयोग किया जाता है।

कुहासा घर (मिस्ट हाऊस)

बहुत से विकसित देशों में आधुनिक पौधशाला में सापेक्ष आर्द्रता रखने हेतु कुहासों (मिस्ट) की व्यवस्था की जाती है। जैसे ही पौधों की पत्तियों से पानी सूख जाये, कुहासों द्वारा पानी का छिड़काव शुरू हो जाना चाहिए। अतः कुहासे में अंतराल टाइमर की व्यवस्था होती है जो प्रायः 30–45 मिनट के अन्तराल पर 5–10 सेकेंड के लिए पानी का छिड़काव करता है और बाद में बन्द हो जाता है। सतत् कोहासे में पानी का छिड़काव लगातार होता रहता है परन्तु सविराम कोहासे में एक निश्चित समय में ही पानी का छिड़काव होता है।

गर्म क्यारी

शीतोष्ण वर्गीय फलों के प्रवर्धन हेतु गर्म क्यारी अत्यन्त लाभदायक है। गर्म क्यारी का प्रयोग मुख्यतः शीतोष्ण फलों में कलमों में

जड़ें लाने हेतु किया जाता है। गर्म क्यारी बनाने के लिए सबसे पहले कच्चे गोबर की मोटी तह बिछा दी जाती है, जिसके ऊपर 20–25 सें.मी. मोटी मिट्टी या अन्य मिश्रण फैला दिया जाता है। क्यारी के चारों ओर नल द्वारा गर्म पानी या गर्म हवा प्रवाहित करके क्यारी का तापमान बढ़ाया जाता है। आजकल ऐसी क्यारियों में तापक का प्रयोग भी किया जा रहा है।

पेंदी ताप चैम्बर

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने फलों के प्रवर्धन हेतु पेंदी ताप चैम्बर के प्रयोग का अनुमोदन किया है। इसमें दो जस्तेदार चादरों द्वारा एक आयताकार आकार का चैम्बर बना लिया जाता है। बाहरी चद्दर की लम्बाई 70 सें.मी., चौड़ाई 46 सें.मी. व भीतरी चद्दर की लम्बाई 68 सें.मी. तथा चौड़ाई 44 सें.मी. रखी जाती है। दोनों चद्दरों के बीच की जगह में कांच की रूई (फाइबर ग्लास) ताप अवरोधन के रूप में भर दी जाती है। दूसरे जैकेट की लम्बाई और चौड़ाई 35 सें.मी. रखी जाती है। दोनों जैकेटों के बीच में चार बिजली के बल्ब लगाने की व्यवस्था होती है जिन्हें थर्मोस्टेट से जोड़ा जा सकता है, जिसके द्वारा ताप नियंत्रित रहता है। इस चैम्बर के ऊपरी हिस्से में मिट्टी या अन्य माध्यम डाला जाता है जिसमें पौधों की कलमें रोपी जाती हैं। इस चैम्बर में आम तथा अमरूद की कलमों में जड़ें आसानी से व अधिक संख्या में निकलती हैं।

औजार, उपकरण एवं अन्य सामग्री

ऊपरलिखित प्रवर्धन हेतु प्रयुक्त संरचनाओं के अतिरिक्त पौधों के प्रवर्धन हेतु कई औजारों एवं विभिन्न प्रकार की सामग्री की भी आवश्यकता होती है। अतः एक व्यवसायिक पौधशालक के पास साफ व सुन्दर जगह के साथ उसके पास बढ़िया किस्म के औजार व अन्य तन्त्र होने चाहिए। साधारणतः एक पौधपालक के पास साधारण चाकू, बडिंग चाकू, स्केटियर, हथियार तेज करने हेतु तन्त्र, ब्लेड, बाँस की छड़ें, डिब्लर, बोर्ड, कापी, पैन्सिल, पॉलीथीन के विभिन्न आकार के बैग, टेप, कपास का रोल, स्प्रेयर, विभिन्न आकार की सीड ट्रे, शीशे के ग्लास, सिलेन्डर, लेनोलिन पेस्ट, वृद्धि नियामिक, कवकनाशी, खरपतवारनाशी, कीटनाशी, खाद, विभिन्न उर्वरक, मॉस घास, खुर्पी, विभिन्न प्रकार की बोतलें, पैकिंग हेतु माध्यम आदि तरह–तरह का सामान होना चाहिए।

पौधशाला में पौधों का रखरखाव व प्रबन्धन

पौधशाला में छोटे–छोटे पौधे बहुत नाजुक व मुलायम होते हैं, अतः इन पौधों की देखभाल अति आवश्यक होती है। इन पौधों की देखभाल हेतु निम्नलिखित बातों की अति आवश्यकता होती है :

सिंचाई : नन्हें पौधों को पानी की अत्यंत आवश्यकता होती है। पौधों को बार–बार पानी की जरूरत पड़ती है और यदि पानी की थोड़ी–सी कमी भी हो जाए तो ये मुरझा कर मर जाते हैं। पानी की अधिकता भी पानी की कमी की तरह ही नुकसान पहुँचाती है। अतः ऐसे नाजुक पौधों में सही पानी हेतु गर्मियों में 2 दिन के अन्तराल पर और सर्दियों में 10–12 दिनों के अन्तराल पर पानी देना चाहिए। क्यारियों में पानी के निकास का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए। इन सभी समस्याओं से बचने हेतु यदि पौधशाला में ड्रिप सिंचाई प्रणाली लगा ली जाए तो पानी के बचाव के साथ–साथ पौधों को उनकी आवश्यकता के अनुसार पानी मिलता रहता है जिससे उनकी वृद्धि व बढ़वार ठीक रहती है।

पोषण : पौधशाला के पौधों को भी उचित पोषण की आवश्यकता होती है। यदि उन्हें सही खुराक न दी जाए तो वे कमजोर रहते हैं और उनकी वृद्धि ठीक से नहीं हो पाती है तथा उन्हें अनेकों कीट व व्याधियाँ ग्रसित कर देती हैं। अतः पौधों की अच्छी बढ़वार हेतु शुरू में क्यारियों में खाद के अतिरिक्त 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से यूरिया देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : पौधशाला में खरपतवार छोटे–छोटे पौधों को काफी क्षति पहुँचा सकते हैं। वे पोषण, नमी आदि ग्रहण करके नन्हें–नन्हें पौधों की वृद्धि को रोकते हैं। एक बार यदि नन्हें–नन्हें पौधों को खरपतवार ढांप लें तो फिर स्वस्थ एवं अच्छी गुणवत्ता की पौध प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। अतः उथली निकाई–गुड़ाई कर पौधशाला को हमेशा खरपतवार रहित रखना चाहिए। सिंचाई के थाले या क्यारियों की मेढ़ें आदि भी खरपतवार रहित होनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो किसी खरपतवारनाशी का प्रयोग भी किया जा सकता है।

पौध सुरक्षा : पौधशाला के पौधों को प्राकृतिक आपदा से बचाया जाना आवश्यक होता है। गर्मी में अधिक तापमान व तपती हवाओं व सर्दी में पाले व अति ठण्डी हवाओं से पौधशाला के नन्हें पौधों को बचाया जाना चाहिए क्योंकि ऐसी दशाओं में वे जल्दी ही मर जाते हैं। तपती गर्मी में पौधों को घास, पुआल आदि का छप्पर बनाकर बचाया जा सकता है। सर्दियों में भी छप्पर या पॉलीघर आदि बनाकर पौधों की सुरक्षा की जा सकती है। वायुरोधक वृक्षों की एक या दो कतारें पौधशाला के चारों ओर होने पर भी यह समस्या काफी हद तक कम हो जाती है।

प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त पौधशाला के पौधों को कीट एवं व्याधियों से भी बचाना आवश्यक होता है। यदि नाजुक पौध को कोई व्याधि या कीट लग जाए तो वे जल्दी ही पीली पड़कर मर जाती है। अतः कीट एवं व्याधियों से सुरक्षा हेतु समय रहते ही व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

फल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबंधन

झारखण्ड राज्य की मिट्टी में अनेक सूक्ष्म तत्वों की कमी पायी गयी है जिसके कारण फलोत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव दिखाई पड़ते हैं। प्रमुख फलों में सूक्ष्म तत्वों की कमी के लक्षण को पहचान कर निदान करने से अच्छी उपज मिल सकती है।

आम

आम के पौधों में जस्ता, ताँबा, मैगनीज इत्यादि की कमी से उपज प्रभावित होती है जिसके लक्षण एवं निदान इस प्रकार है :–

1. **जस्ता** : इसकी कमी के लक्षण कम आयु की मुलायम तथा छोटी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। प्रभावित पत्तियाँ मोटी व असामान्य हो जाती है। जैसे–जैसे पत्तियाँ बड़ी होती हैं उनके किनारे लहरदार होकर मुड़ जाते हैं तथा अग्र भाग झुक जाता है। उग्रता की दशा में शिरायें पीली होकर स्पष्ट दिखाई देती हैं। शिराओं के बीच का भाग या तो हरा रहता है अथवा उसमें धब्बे बन जाते हैं। ऐसी पत्तियों का आकार साधारण पत्ती का लगभग आधा होता है और विकृत पत्ती दबाने से जल्द टूट जाती है। प्रभावित टहनियाँ मर जाती हैं। नये पौधों में इसकी कमी से बढ़वार प्रभावित होती है तथा पौधे बौने हो जाते हैं। फूल के गूच्छों के साथ जो पत्तियाँ निकलती हैं वे बहुत छोटी तथा असामान्य आकार की होती है और प्रायः इनमें पुष्पक्रम विकृत हो जाते हैं।

   इस विकार को दूर करने के लिए प्रभावित पेड़ के छत्रक के नीचे 100–150 ग्रा. जिंक सल्फेट का प्रयोग वर्षा प्रारम्भ होने पर तथा अन्य खाद एवं उर्वरकों के साथ मिला कर करना चाहिए। कम प्रभावित पौधों पर जिंक सल्फेट के 0.5 प्रतिशत (5 ग्रा./ली.) घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर 2 से 3 बार करें।

2. **ताँबा** : इस तत्व की कमी के लक्षण आम के पुराने पौधों की अपेक्षा छोटे पौधों पर शीघ्र दिखाई देते हैं। भूमि में इसकी उपलब्धता कम होने पर शीर्ष पर निकलने वाली टहनियाँ झुकी हुई कमजोर दिखाई देती हैं और आगे चल कर सूख जाती हैं, जिसके कारण पैदावार में कमी हो जाती है।

3. **मैगनीज** : इस तत्व की कमी से पौधों की वृद्धि में कमी आती है। कमी के लक्षण एवं महीने पुरानी मुलायम किन्तु पूर्ण विकसित पत्तियों पर परिलक्षित होते हैं। इन पत्तियों का रंग हरा–पीला हो जाता है जिन पर हरी शिराओं की एक महीन जालीनुमा आकृति दिखाई देती है। ये लक्षण अधिकतर ऊपरी सतह पर ही दिखाई देते हैं। पुरानी पत्तियाँ अपेक्षाकृत मोटी हो जाती हैं तथा इनका अग्रभाग गोलाकार हो जाता है। इसके उपचार के लिए मैगनीज सल्फेट के 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) घोल का 2 से 3 बार 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना उचित होगा।

लीची

लीची के पौधों पर जस्ता, बोरान एवं मैगनीज तत्वों का प्रभाव अधिक देखा गया है। इसकी कमी से अनेक विकार दिखाई देते हैं, जिनका पहचान करके उचित समय पर निदान फलोत्पादन बढ़ाने में लाभदायक होता है।

1. **जस्ता** : इस तत्व की कमी से पत्तियाँ कांसे के रंग सदृश दिखाई देती हैं। शिराओं के मध्य में पत्ती पीली होने लगती है जबकि शिरायें हरी रहती हैं। टहनी में गाठों के बीच की दूरी अधिक हो जाती है। इस तत्व की तीव्र कमी होने पर फूल झड़ने लगते हैं, फलों का आकार छोटा हो जाता है जिसके फलस्वरूप पैदावार

पर प्रतिकूल असर होता है। फलों में शर्करा की मात्रा घटने के परिणामस्वरूप गुणवत्ता का ह्रास होता है। इस विकार के प्रबंधन के लिए पौधों पर जिंक सल्फेट के 0.5 प्रतिशत (5 ग्रा./ली.) घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर तीन बार करना चाहिए।

2. **लोहा** : लोहे की कमी की दशा में पहले नवजात पत्तियाँ में असामान्य रूप से हरिमाहीनता (हरे रंग की कमी) दिखाई देती है, जो आगे चल कर पुरानी पत्तियों में भी दिखाई देने लगती हैं और पौधों की बढ़वार रूक जाती है। इस तत्व की पूर्ति के लिए लोहे के किलेट का प्रयोग किया जा सकता है अथवा 0.4 से 0.8 प्रतिशत (4 से 8 ग्रा./ली.) फेरस सल्फेट के घोल का 2 से 3 बार छिड़काव करना लाभप्रद होता है।

3. **बोरॉन** : इस तत्व की कमी से पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है और वे सूखने लगती है। पत्तियों के वृन्त मोटे हो जाते हैं। फल गिरने लगते हैं और पैदावार कम हो जाती है। बोरॉन की कमी के निदान हेतु बोरिक अम्ल का 3 से 4 ग्रा. प्रति लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

4. **ताँबा** : लीची में ताँबे की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इसकी कमी से पत्तियों में शिराओं के मध्य का भाग पीला हो जाता है और वे सामान्य आकार से छोटी हो जाती हैं। पौधों के नवजात शीर्ष भाग सूखने लगते हैं जिससे बढ़वार पर प्रतिकूल असर होता है तथा पैदावार घट जाती है। ताँबे की कमी के निदान के लिए 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) कॉपर सल्फेट का घोल बनाकर चूने से उदासीन कर लें। इस घोल का 15 दिन के अन्तर पर 2 से 3 तीन बार प्रयोग करना लाभदायक रहता है।

5. **मैगनीज** : इस तत्व की कमी से लीची की पत्तियों में शिराओं के मध्य का भाग पीला पड़ने लगता है एवं पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है जिससे वे असामान्य दिखाई देती हैं। इसके उपचार के लिए मैगनीज सल्फेट के 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) घोल का 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना उचित होगा।

केला

केले के पौधों पर सूक्ष्म तत्वों की कमी से होने वाले प्रभाव एवं उनकी पहचान तथा निदान इस प्रकार है :–

1. **जस्ता** : जस्ते की कमी से पत्तियों की शिराओं के समानान्तर पीली धारियाँ बनती है जो बाद में अधिक चौड़ी एवं सफेद हो जाती हैं। ये पत्तियों के हरे भाग के समानान्तर रहती है। नवजात पत्तियों पर जस्ते की कमी के लक्षण तीव्र होते हैं। इस दशा में पूरी पत्ती पीली पड़ जाती है। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ छोटी तथा नुकीली हो जाती हैं और इनकी निचली सतह में सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। पत्तियों की मध्य शिराओं पर बैंगनी – लाल रंग के गोलाकार धब्बे दिखाई देते हैं। जस्ते की कमी के कारण पुष्प–विभेदन क्रिया एवं पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस तत्व की पूर्ति के लिए 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से जिंक सल्फेट, अन्य खाद एवं उर्वरकों के साथ मिलाकर प्रयोग करें। शीघ्र लाभ के लिये पौधों पर 0.5 प्रतिशत (5 ग्रा./ली.) जिंक सल्फेट घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर 2 से 3 बार करना चाहिए।

2. **बोरॉन** : इसकी कमी के कारण अत्यधिक विकृति आने पर नयी पत्तियाँ आकार में अत्यन्त छोटी हो जाती हैं और कभी–कभी इनकी केवल मुख्य शिरा ही दिखाई देती है। पत्तियों का आकार असामान्य हो जाता है, इनके किनारे लहरदार हो जाते हैं। पत्तियाँ झड़ने लगती हैं। मुख्य शिरा के साथ नीचे की ओर शिराओं के बीच पीला समकोण आकृति का धब्बा दिखाई देता है। यह बदरंग धब्बा कई छोटे धब्बों के एक साथ मिलने के कारण बनता है। अधिक कमी की दशा में पौधे की सभी प्रकार की वृद्धि रूक जाती है। इसकी कमी के लक्षण पौधों में गंधक की न्यूनता के लक्षणों से बहुत मिलते जुलते हैं। इस विकार के प्रबंधन के लिए 8 से 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टेयर का उपयोग, अन्य खाद एवं

उर्वरकों के साथ मिलाकर करना चाहिए। त्वरित लाभ के लिए 1 से 2 ग्रा. बोरिक अम्ल प्रति लीटर की दर से पानी में धोल कर पर्णीय करना अच्छा रहता है।

3. **मैगनीज** : इस सूक्ष्म तत्व की कमी से क्रमशः दूसरे, तीसरे और चौथे स्तर की नयी से पुरानी पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। तत्पश्चात् बहुत तेजी से नई एवं पुरानी पत्तियाँ विकारग्रस्त होने लगती हैं। कमी के लक्षण पहले किनारों पर दिखाई देते हैं जो मध्य शिरा की ओर तेजी से बढ़ते हैं। दो शिराओं के बीच के भाग अधिक समय तक हरे रहते हैं। जिससे कि पत्ती पर कंघी के दातों जैसे आकार दिखाई देते हैं। आगे चलकर पूरी पत्ती गंदा–पीलापन लिए हरी हो जाती है। इस अवस्था में पौधों पर रोग का आक्रमण हो सकता है। मैगनीज की अधिक कमी की अवस्था में पैदावार में काफी कमी आती है। इस तत्व की पूर्ति के लिये मैगनीज सल्फेट के 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ ली.) घोल का 15 दिन के अन्तराल पर 2 बार छिड़काव करना लाभकारी रहता है।

नींबू वर्गीय फल

नींबू वर्गीय फलों में सूक्ष्म तत्वों का अत्यधिक महत्व है। इसकी कमी से उपज प्रभावित होने के साथ पौधे सूखने भी लगते हैं। इन फसलों में सूक्ष्म तत्वों की कमी तथा उनके उपचार का विवरण इस प्रकार है :–

1. **ताँबा** : ताँबे की न्यूनता से पीड़ित वृक्षों की पत्तियाँ गहरी हरी दिखाई देती हैं। साथ ही अधिकतर पत्तियाँ मुड़ जाती हैं। ये पत्तियाँ असामान्य रूप से बढ़े हुए प्ररोह पर पायी जाती हैं तथा इनपर अंग्रेजी की अक्षर 'एस' के आकार की झांईयाँ दिखती हैं। अधिक प्रभावित होने पर शिराओं के बीच का भाग पीला हो जाता है। छाल तथा तने से गोंदनुमा चिपचिपा स्राव निकलने लगता है। इस विकार के प्रबंधन के लिए 0.4 प्रतिशत (4 ग्रा./ली.) कॉपर सल्फेट (तुतियां) के घोल को चूना से उदासीन करके 15 दिन के अन्तर पर दो तीन बार प्रयोग करना चाहिए। तुतिया की जगह 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा./ली.) कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का प्रयोग किया जा सकता है।

2. **लोहा** : लोहा की कमी होने पर प्रारंम्भिक अवस्था में पत्तियाँ हल्की पीली हो जाती हैं जो उग्र अवस्था में गहरी पीली दिखाई देती हैं। इन पत्तियों में शिराओं का जाल हरा रहता है। इसके उपचार के लिए लोहे की किलेट का प्रयोग करें अथवा 0.4 से 0.8 प्रतिशत (4 से 8 ग्रा./ली.) फेरस सल्फेट के घोल का 2 से 3 बार छिड़काव करके भी पीलिया दूर किया जा सकता है।

3. **बोरॉन** : बोरॉन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर प्रकट होते हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ हल्के भूरे रंग की हो जाती हैं और मुड़ जाती हैं। पत्तियों में शिराएँ पीली एवं कॉर्क के सामान हो जाती हैं। पौधा कमजोर हो जाता है और उसमें सूखे के प्रति सहनशीलता कम हो जाती है तथा नमी की कमी की अवस्था में भी वह शीघ्र सूख जाता है। फल के छिलके के सफेद भाग में भूरे या काले धब्बे दिखाई देते हैं तथा वे रूखे हो जाते हैं। इस समस्या के निदान के लिए बोरिक अम्ल अथवा बोरेक्स का 0.1 प्रतिशत (1 ग्रा./ली.) की दर से छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त 8 से 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टर की दर से मिट्टी में मिलाना भी लाभदायक पाया गया है।

4. **मैगनीज** : इस तत्व की कमी की अवस्था में पाये जाने वाले पीले धब्बे जस्ते की कमी की भांति पूरी तरह पत्ती पर नहीं फैलते तथा पत्तियों का आकार ज्यादा छोटा नहीं होता। प्ररोह निकलते समय ये लक्षण अपेक्षाकृत कम उग्र होते हैं परन्तु पत्तियाँ बढ़ने पर मुड़ने लगती हैं और धब्बे गहरे लगते हैं। वृक्ष के छाया वाले भाग में लक्षण अधिक स्पष्ट होते हैं। इसके उपचार के लिए 0.4 से 0.6 प्रतिशत (4 से 6 ग्रा./ली.) मैगनीज सल्फेट के घोल का 2 से 3 बार छिड़काव किया जा सकता है।

5. जस्ता : नींबू प्रजाति के फल वृक्षों में जस्ते की कमी के लक्षण केवल नई वृद्धि पर प्रकट होते हैं। इसकी कमी के कारण पत्तियाँ पीली हो जाती हैं। कम न्यूनता होने की दशा में पत्तियों तथा टहनियों का आकार अपेक्षाकृत कम घटता है परन्तु अधिक कमी होने पर पत्तियाँ बिल्कुल छोटी तथा टहनी की बढ़वार अत्यधिक कम हो जाती है। पत्तियाँ गुच्छे के रूप में लगी हुई दिखाई देती हैं। पौधे का धूप की ओर के भाग की अपेक्षा अधिक प्रभावित होता है। इस विकार के प्रबंधन के लिए 0.4 से 0.6 प्रतिशत (4 से 6 ग्रा./ली.) जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करना लाभप्रद पाया गया है। जस्ते की अधिक कमी वाले क्षेत्रों में वर्ष में दो से तीन बार छिड़काव की आवश्यकता पड़ती है।

अनन्नास

अनन्नास के फलों के भरपूर उत्पादन एवं गुणवत्ता के लिए सूक्ष्म पोषक तत्व अत्यन्त ही उपयोगी होते है। अनन्नास के पौधों पर सूक्ष्म पोषक तत्व अत्यन्त ही उपयोगी होते हैं। अनन्नास के पौधों पर सूक्ष्म तत्वों के कमी के लक्षण एवं उसके उपचार की जानकारी निम्नलिखित हैं :–

1. मैगनीज : इस तत्व की कमी से अनन्नास के पौधे हल्के पीले दिखाई देते हैं तथा पत्तियों की बढ़वार रूक जाती है और पौधों का पूर्ण विकास नहीं होता। फलों की वृद्धि पर भी मैगनीज की कमी का कुप्रभाव पड़ता है। मैगनीज की कमी से पौधों की संवर्धन क्रिया (सकर एवं स्लिप पैदा करना) भी प्रभावित होती है। इसकी पूर्ति के लिए 0.4 प्रतिशत (4 ग्रा./ली.) मैगनीज सल्फेट का 15 दिन के अन्तर पर दो से तीन बार छिड़काव करना चाहिए।

2. बोरॉन : बोरॉन की कमी से पौधों की फलोत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है एवं फल का वजन एवं आकार दोनों में ही असामान्य रूप से कम हो जाते हैं तथा फल फट जाते हैं। पौधों में सकर उत्पादन में कमी आती है। मुख्य जड़े भूरी हो जाती हैं तथा सिरों पर सड़ जाती हैं। इसकी कमी के कारण पौधों में पोशक जड़ें कम बनती हैं। इसके निदान के लिए 8 से 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टर की दर से भूमि में प्रयोग करना चाहिए अथवा फसल पर 0.3 से 0.5 प्रतिशत (3 से 5 ग्रा./ली.) बोरेक्स का छिड़काव 2 से 3 बार करना चाहिए।

3. ताँबा एवं जस्ता : अनन्नास पर इन दोनों तत्वों की कमी के लक्षण लगभग एक समान दिखाई देते हैं। सबसे पहले मध्य क्रम की पत्तियाँ मुड़नें लगती हैं। जिन पत्तियों का बाद में विकास होता है वे विशेष रूप से पहले हल्के हरे से पीले रंग की हो जाती हैं और इन पर मोम जैसी एक मोटी परत बन जाती है। ताँबे एवं जस्ते की अत्यन्त कमी होने से पौधों के बीच में पत्तियों का गुच्छा बन जाता है और वे झुक जाती हैं। इनकी पूर्ति के लिए 0.5 प्रतिशत (4 ग्रा. प्रतिशत (4 ग्रा./ली.) कॉपर सल्फेट का घोल तथा 0.5 प्रतिशत (5 ग्रा./ली.) जिंक सल्फेट का घोल 2 से 3 बार फसल में छिड़कें।

4. लोहा : लोहे के कमी के कारण पत्तियों में हल्के रंग के साथ–साथ कुछ लालिमा आ जाती है। प्रायः लोहे की कमी के लक्षण नए पत्तों पर दिखना प्रारम्भ होते हैं। फल अपरिपक्व अवस्था में पकने लगते हैं। जिन क्षेत्रों में मिट्टी का पी–एच मान 8 से अधिक होता है वहाँ सामान्यतः लोहे की कमी देखी जाती है। इसकी पूर्ति के लिए लोहे के किलेट का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त 0.4 से 0.8 प्रतिशत (4 से 8 ग्रा./ली.) फेरस सल्फेट के 2 से 3 छिड़काव से भी पीलापन दूर किया जा सकता है।

फलोत्पादन में समेकित कीट प्रबंधन

फलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में विभिन्न कीटों द्वारा होनेवाली क्षति के नियंत्रण हेतु किसानों द्वारा मुख्य रूप से जहरीले रसायनों का अत्यधिक व अविवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जा रहा है, जिससे कई प्रकार की समस्याओं में गौण कीटों का प्रमुख नाशक कीटों में परिवर्तन, कीटों में कीटनाशकों की बढ़ती प्रतिरोधकता, प्राकृतिक शत्रु (परजीवी/परभक्षी) कीटों व परागण करने वाले कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव, पर्यावरण एवं खाद्य श्रृंखला में प्रदूषण तथा फलों में कीटनाशकों के अवशेष निश्चित मात्रा से अधिक होना इत्यादि प्रमुख हैं। कीटनाशकों द्वारा फलों के दूषित होने की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक होती है, क्योंकि इन्हें तुड़ाई के तुरंत बाद उपयोग में लाया जाता है। कीटनाशकों के अत्यधिक व अविवेकपूर्ण प्रयोग करने से मित्र कीटों जैसे मधुमक्खियाँ, सारकोफेगा, रिफिया, ल्यूसीलिया, एरिस्टेलिस, सिर्फस फ्लाई, काक्सीनेलिड बीट्लि, मक्खियों इत्यादि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामतः फलों के परागण में विध्न उत्पन्न होने से फलों का उत्पादन कम होता है।

देश में किये गये सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि बहुत से किसानों को कीटों की सही पहचान, उनके नुकसान कीटनाशकों का प्रयोग करने से कीट नियंत्रण में अपेक्षित सफलता नहीं मिलती है। अतः कीट नियंत्रण हेतु एक ऐसा सुनियोजित प्रबंधन कार्यक्रम (समेकित कीट प्रबंधन) अपनाने की आवश्यकता है जो पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित तथा क्षति को नियंत्रित करने में सक्षम हो।

समेकित कीट प्रबंधन

समेकित कीट प्रबंधन, फल उत्पादन एवं फल सुरक्षा की मिली–जुली पद्धति है, जिसका मूल सिद्धांत उन्नत कृषि क्रियाओं को अपनाना एवं कीट नियन्त्रण के जैविक और रासायनिक विधियों के बीच समन्वय स्थापित करना है। इन विधियों के साथ–साथ कीट नियंत्रण की अन्य वैकल्पिक तरीकों जो समाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से उचित हो तथा कीटों की संख्या को एक निर्धारित आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखने में मददगार हो, का समावेश ही समेकित/समन्वित या एकीकृत कीट प्रबंधन कहलाता है।

समेकीत कीट प्रबंधन के अंतर्गत उद्यान स्थापित करते समय स्थान के चुनाव, गड्ढे की खुदाई तथा प्रजातियों के चयन से लेकर फलों की तुड़ाई तक उन सभी पद्धतियों/तकनीकों का प्रयोग इस प्रकार व्यवस्थित ढंग से किया जाता है, जिससे कीटों द्वारा फलों की उत्पाद्कता एवं गुणवत्ता में होने वाली क्षति को नियंत्रित किया जा सके। उद्यानों में समेकित प्रबंधन हेतु निम्नलिखित घटकों का प्रयोग किया जाता है :–

शस्य क्रियायें

कृषिगत क्रियायें, समेकित कीट प्रबंधन में एक महत्वपूर्ण घटक है, जिनका सुनियोजित ढंग से पालन करने पर कीटों की वृद्धि, विकास और जीवन–चक्र पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप फसल में कीटों का प्रकोप कम होता है। उद्यान में विभिन्न शस्य क्रियाओं के प्रयोग से होने वाले लाभ का किसान समुदाय को समुचित ज्ञान नहीं है। यही कारण है कि समेकित कीट प्रबंधन का महत्वपूर्ण घटक होते हुए भी कृषिगत क्रिया उपेक्षित है, जिसे प्रोत्साहित कर फलों में कीटनाशकों के प्रयोग को कम किया जा सकता है। फल उद्यानों को क्षति पहुँचाने वाले कीटों का प्रकोप कम करने में निम्नलिखित शस्य क्रियाएँ प्रभावी सिद्ध हुई है :

1. पौधा लगाते समय कीट अवशेष रहित पौधों का ही प्रयोग करें।

2. उद्यान स्थापित करते समय सही स्थान, भूमि तथा उच्च कोटि की पौध सामग्री (पौध सामग्री पंजीकृत नर्सरी से प्राप्त करें) का चुनाव एवं उचित दूरी पर रोपन करें। आम, लीची, नींबू, बेल, बेर, शरीफा एवं ऑवला के लिए अप्रैल–मई तथा आडू एवं नाशपाती जैसे फल पौधों के रोपन हेतु अक्टूबर–नवम्बर माह में गड्ढों की खुदाई करें तथा क्रमशः जून–जुलाई एवं दिसम्बर–जनवरी माह में गड्ढों को भरने से पूर्व उसमें सूखी पत्ती या घास जलाकर गड्ढों को उपचारित कर लें। तत्पश्चात् गड्ढों को भर कर पौधों का रोपन करें।

3. नर्सरी की स्थापना के समय सही स्थान का चुनाव करें एवं उसे बदलते रहें और वनस्पतिक प्रसारण हेतु उपयुक्त एवं रोग कीट रहित मूलवृन्तों का प्रयोग करें।

4. जब पौधे सुसुप्त अवस्था में रहें तब उनकी कटाई–छंटाई अवश्य करें। कटाई–छंटाई करते समय सूखी, कीटग्रस्त, घनी एवं एक–दूसरे से टकराने वाली टहनियों को काट दें तथा कटे हुए भाग पर चौबटिया पेस्ट अथवा ब्लू कापर का लेप करें। कटाई–छंटाई से पौधों में वनस्पतिक वृद्धि अच्छी होने के साथ–साथ फल लगने वाली शाखाएँ भी नियमित बनी रहती है तथा पौधों में प्रकाश का संचार भी सुचारू रूप से होता है, जिसके फलस्वरूप फलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है तथा कीटों का प्रकोप भी कम होता है।

5. उद्यान की सफाई, पौधों के थालों की समय पर निराई–गुड़ाई, ग्रसित एवं गिरे हुए फलों के उद्यान से अलग करना, कीटों का आश्रय देने वाले पेड़ की ढीली छाल की सफाई, उद्यान से परपोशी पौधों का निष्कासन करें तथा उचित समय पर पौधों की सिंचाई तथा संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।

6. फरवरी–मार्च में पेड़ों के थालों में चारों तरफ 2–3 इंच मोटी सड़ी गोबर की खाद अथवा 6–7 इंच मोटी सूखी पत्ती/घास फैला दें, जिससे गर्मी में नमी सुरक्षित रहे। जून में थालों में हल्की गुड़ाई करके खाद/पत्ती/घास को मिला दें तथा गुड़ाई के समय मिलने वाले कीटों/सूंडियों को एकत्र कर नष्ट कर दें। फरवरी से अप्रैल के मध्य जब फल वृक्षों में फूल खिल रहे हों, उस समय मधुमक्खियों के 15–20 बक्से प्रति हेक्टेयर में अवश्य रखें। इससे परागण अच्छा होता है तथा फल भी अधिक बनते हैं। फूल खिलने की अवस्था में किसी भी कीटनाशक का प्रयोग न करें अन्यथा परागण प्रक्रियाँ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यांत्रिक क्रियायें

आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कीटों के प्रकोप को यांत्रिक विधियों द्वारा कम किया जा सकता है :–

1. आम, अमरूद, आँवला और कटहल के वृक्षों में तना वेधक कीटों की सूंडी सुरंग बनाकर रहती है। इसको नुकीले मोटे तार की मदद से छेदकर नष्ट किया जा सकता है। कोई पेट्रोलियम पदार्थ छेद में भर दें ताकि कीट अन्दर में ही मर जाय या छिद्रों को साफ करके उसमें मोनोक्रोटोफॉस का 0.05 प्रतिशत घोल छिद्रों में भर कर उन्हें मिट्टी से लेप दें ताकि लार्वा अन्दर ही अन्दर मर जाय।

2. आम के बगीचों में नुकीले गांठ बनाने वाले कीट (शूट गॉल) का बहुत अधिक प्रकोप होता है। यदि आम की प्रभावित शाखाओं को नवम्बर माह में तोड़कर नष्ट कर दिया जाय तो इस कीट के प्रकोप में कमी आ सकती है।

3. व्हाइट ग्रव (कुरमुला कीट) के बीटिल जून में प्रथम वर्षा के बाद जमीन से निकलते हैं और अगस्त तक विभिन्न फल वृक्षों की पत्तियों एवं फलों को खाकर क्षति पहुँचाते हैं। रात्रि में यह कीट प्रकाश की ओर बहुत आकर्षित होता है। इसलिए बगीचों में पेट्रोमेक्स को रात्रि में जलाकर चौड़े बर्तन में, जिसमें मिट्टी का तेल सहित पानी मिला हो, रख दिया जाय तो इसकी रोशनी से बीटिल आकर्षित होते हैं और बर्तन में गिरकर मर जाते हैं।

4. स्केल कीट/मिली बग से प्रभावित अमरूद के पौधों की टहनियाँ को काटकर जला देना चाहिए। कीटों से ग्रसित गिरे हुए अमरूद के फलों को एकत्रित करके नष्टकर देने पर अनार बटरफ्लाई एवं फलमक्खी के प्रकोप से निजात मिल जाती है।
5. आम का दहिया कीट पेड़ के जड़ों के पास जमीन में अण्डे देती हैं। शिशु निकलने के बाद नवम्बर–दिसम्बर माह में पेड़ में इन्हें वृक्षों पर चढ़ने से रोकने के लिए 20 से.मी. चौड़ी अल्काथीन (800 गेज मोटी) की पट्टी 30 से.मी. जमीन से ऊपर तने के चारों ओर लपेट दी जाय तथा दोनों किनारों को कीचड़ के सहारे तना से सटा दिया जाय। ऐसा करने से ये कीट चिकनी सतह पर नहीं चढ़ रह पाते हैं तथा पौधे इनके आक्रमण से मुक्त रह जाते हैं।
6. आम में फल मक्खी का आक्रमण होने पर एक चौड़े मुँह की बोतल लें तथा उसमें 30–5. ग्रा. गुड़ + एक ली. पानी + 2 मि.ली. मैलाथिपान कीटनाशक डाल दी जाय। प्रत्येक पेड़ में 1–2 बोतल लबा दी जाय तो इसमें मक्खियाँ फँसकर मर जाती हैं।
7. लीची माइट से प्रभावित टहनियों को काट कर जला देना चाहिए ताकि कीट नष्ट हो जाय।
8. लेमन वटर फ्लाई के लार्वा को हाथ से पकड़कर मार देना चाहिए।

जैविक नियंत्रण

जैविक नियंत्रण, समेकित कीट प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसका सफलतापूर्वक प्रयोग कीटों के प्रबंधन में प्रभावी, संतुलित एवं स्थाई सिद्ध हुआ है। इसके प्रयोग से पारिस्थितिक तंत्र के दूसरे तत्वों को हानि नहीं पहुँचती है। जैविक नियंत्रण में हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं जैसे परजीवी, परभक्षी और रोगाणुओं को खोजकर इकट्ठा कर तथा प्रयोगशाला में अधिक संख्या में उत्पादन कर, कीटों के विरूद्ध उचित समय पर छोड़ा जाता है, जो हानिकारक कीटों के अण्डों, सूंडियों तथा प्रौढ़ों को नष्ट कर देते हैं। जैविक नियंत्रण की सफलता के लिए किसानों को मौसम, फसल, कीट, परजीवी/परभक्षी तथा सुरक्षित कीटनाशकों इत्यादि के विषय का सही ज्ञान आवश्यक है।

फल उद्यानों में प्रमुख कीटों के प्रभावी परजीवी

फल वृक्ष	कीट का नाम	परजीवी	प्रयोग विधि
आम	हॉपर	पायरील्लोक्सेनोस	2.3 प्रौढ़/हॉपर
		पराकम्पक्टस	
	गॉल मीज	एनकार्सिया	2000 प्रौढ़/ग्रसित पेड़
		पार्निसिओसी	
सेव	सन्जोस स्केल	एनकार्सिया	2000 प्रौढ़/ग्रसित पेड़
		पार्निसिओसी	
		एफाड्रिटिस प्रोक्लिआ	50 प्रौढ़/ग्रसित पेड़
	यूली एफिड	एफेलिनस माली	1000 प्रौढ़/ग्रसित पेड़
	कोडलिंग मॉथ	ट्राइकोग्रामा	
		एम्बियोफेगम	2000 प्रौढ़/ग्रसित

समेकित कीट प्रबंधन में प्राकृतिक शत्रुओं का प्रयोग अन्य विधियों के साथ किया जाय तो कीट नियंत्रण में अपेक्षित सफलता मिलती है तथा कीटनाशकों का प्रयोग भी कम करना पड़ता है। लेकिन अभी भी इन प्रकृतिक शत्रुओं की उत्पादन तकनीक को और अधिक कारगर बनाने की आवश्यकता है, जिससे इन्हें व्यवसायिक स्तर पर उत्पादित करके किसानों को आसानी से उपलब्ध कराया जा सकें।

प्राकृतिक शत्रुओं के प्रयोग के साथ–साथ इनका संरक्षण भी आवश्यक है। प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण हेतु उद्यानों में कृषि क्रियाओं को करते समय इनके आवासों एवं खाद्य पदार्थों को नष्ट होने से बचाना चाहिए। आम में फूल आने के समय मल्लादा बोनीनेनसीस एवं क्राइसोपा, लकीपरदा (परभक्षी) फरवरी से मार्च के मध्य प्रकृति में बहुत सक्रिय रहते हैं तथा इस अवधि में मधुआ कीट का भक्षण करते हैं। इसी प्रकार उत्तरांचल के पर्वतीय क्षेत्रों के सेव में कोक्सिनेला संप्टमपंकटाटा (परभक्षी) मार्च से जून के मध्य प्रकृति में बहुत अधिक सक्रिय होते हैं तथा इस अवधि में यूली एफिस एवं थ्रिप्स कीट का भक्षण (नियंत्रण) करते हैं। अतः इस अवधि में बहुत आवश्यक होने पर ही सुरक्षित कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे इन परभक्षी कीटों की सक्रियता पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ सकें।

फल उद्यानों में प्रमुख कीटों के प्रभावी परभक्षियों का विवरण

फल वृक्ष	कीट का नाम	परभक्षी	प्रयोग विधि
आम	हॉपरएव मिली बग	कोक्सिनेला सेप्टमपंकटाटा	30–50 प्रौढ़ / ग्रसित पेड़
अमरूद	ग्रीन साईलड	क्राईप्टोलेमस मोनट्रोजाईरी	10–20 बीटिल / ग्रसित पेड़
	स्केल	कोक्कोफेगस सेरोप्लासटेट	10–20 बीटिल / ग्रसित पेड़
	ऐफिड	कोक्सेनेलिड एवं	
		सरफीड्स प्रजाति	
अंगूर	ग्रीन साईलड स्केल	कोक्सिनेला सेप्टमपंकटाटा	30–50 प्रौढ़ / ग्रसित पेड़
सेव	सनजोस स्केल	काईलोकोरस बिजुगस	50 प्रौढ़ / ग्रसित पेड़
		चीलोकोरस बिजुगस	20 प्रौढ़ / 50 ग्रव प्रति ग्रसित पेड़
	यूली एफिड	कोक्सिनेला सेप्टमपंकटाटा	30–50 प्रौढ़ / ग्रसित पेड़
	थ्रीप्स	एन्थोकोरिस मिन्कि	30–50 प्रौढ़ / ग्रसित पेड़
नींबू	मिली वग	ग्रीन लेस वींग	30 लार्वा / ग्रसित पेड़
	लीफ माइनर	(माल्लादा वोनोनेनसीस)	
	सफेद मक्खी		
	तना पाइलीड		
	वर्ग एवं एफिड		

ट्राइकोग्रामा : यह एक बहुभक्षी परजीवी है। इन परजीवियों के द्वारा प्रायः लेपीडोपटेरा वर्ग के कीटों का नियंत्रण होता है। फलों में कीट नियंत्रण हेतु इनका उपयोग अन्य फसलों की अपेक्षा बहुत ही कम हुआ है। ट्राइकोग्रामा हानिकारक कीटों के अण्डों में अपने अण्डे देकर अपना जीवन चक्र उसी में पूरा करता है। अण्डों के निषेचन होने पर ट्राइकोग्रामा के लार्वा कीटों के अण्डों के भ्रूण को खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ट्राइकोग्रामा का वयस्क अण्डों में छेदकर बाहर निकलता है। इस प्रकार कीटों को अण्डे की अवस्था में ही समाप्त किया जा सकता है। ट्राइकोग्रामा की आपूर्ति कार्ड के रूप में होती है। एक कार्ड पर लगभग 20,000 अण्डे होते हैं। यह

कार्ड ''ट्राइकोकार्ड'' के नाम से जाना जाता है। ट्राइकोकार्ड विभिन्न नामों जैसे परास्ट्रीप, इज्यनील, टी–कार्ड, ट्राइकोकार्ड, ई.वी.ट्राइकोकार्ड इत्यादि के नामों से उपलब्ध हैं। ट्राइकोकार्ड प्रजाति के 50,000 से 100,000 अण्डे प्रति हेक्टेयर की दर से लेपीडोपटेरा वर्ग के कीटों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है। आम के मींज कीटों के नियंत्रण हेतु ट्राइकोग्रामा मटीडई का प्रयोग प्रभावी सिद्ध हुआ है।

ट्राइकोग्रामा का प्रयोग सुबह या शाम के समय में करना चाहिए जब हानिकारक कीटों के अण्डे पौधों पर मौजूद हों। ट्राइकोग्रामा प्रयोग के समय किसी रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जैविक कीटनाशकों का उपयोग

समेकित कीट प्रबंधन में सूक्ष्मजीवों जैसे जीवाणुओं में बैसिलस की प्रजातियां प्रमुख हैं। फल उद्यानों में कीट नियंत्रण हेतु बैसिलस थूरिनाजिएन्सिस का प्रयोग प्रभावी सिद्ध हुआ है। बी.टी. का सक्रिय तत्व क्रिस्टलीय डेल्टा – ऐन्डोटाक्सिन है। यह लेपीडोपटेरा वर्ग के कैटरपीलर (लार्वा) की भक्षण क्रिया पर तुरन्त ही रोक लगाता है। अतः कीट 1–3 दिन के अन्दर मर जाते हैं। बी.टी व्यापारिक रूप बायोलेप, वायोसेप, बायोबिट, हाल्ट, डेल्फिन इत्यादि नामों से बाजार में उपलब्ध है। इनका उपयोग टैन्ट कैटर पिलर, इण्यिन जिप्सी मॉथ, कोडलिंग मॉथ, आम एवं सेव का फल मॉथ आदि कीटों के नियंत्रण में किया जाता है। बी.टी. का प्रयोग लार्वा के प्रारंभिक अवस्था में (अर्ली इन्सटार कैटरपीलर) अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है तथा इनकी 1.0–1.25 कि.ग्रा. मात्रा 500–700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव किया जाता है।

वायरस (विषाणु) : यह भी कीटों में रोग उत्पन्न करता है। फलों में कीट नियंत्रण हेतु अब तक वायरस का प्रयोग अन्य फसलों की तुलना में बहुत कम हुआ है। लेकिन हाल के वर्षों में सेव की कोडलिंग मॉथ कीट के नियंत्रण के लिए ग्रनुलोसिस वायरस का प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है। इसका उपयोग 8 x 107 वायरस पाली हेड्रा/मि. ली. की दर से फल वृक्षों पर छिड़काव किया जाता है।

कवक : फल वृक्षों के कीटों से रोग उत्पन्न करने वाले कवक में मुख्यतः भरटीसेलियम लेकनी, वोभेरिया वेसियाना, इन्टोमोफथोरा प्रजाति एवं एक्टोमायसिस प्रजाति प्रभावी पाये गये हैं। जैसे – आम का मधुआ एवं मिली वग एवं अमरूद के माहू कीट के नियंत्रण हेतु भटीसेलियम लेकनी का प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है एवं इसका छिड़काव 1 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से किया जाता है।

वानस्पतिक कीटनाशकों का उपयोग : पौधों से प्राप्त रसायन, जिनमें कीटनाशक गुण होते हैं, ''वनस्पतिक कीटनाशक'' के नाम से जाने जाते हैं। इन पौधों में नीम, तम्बाकू, करंज, महुआ इत्यादि प्रमुख है। लेकिन इनमें से नीम एवं करंज पर आधारित कीटनाशकों का प्रयोग फलों के कीट नियंत्रण में प्रभावी सिद्ध हुआ है। यह बाजार में कई रूपों में जैसे – निभरिन, निम्बीसिडीन, अचूक, एजाडिट, निमेक्टीन, नीमएजल, बायोनीम, रक्षक इत्यादि नामों से उपलब्ध है तथा इसकी 2–3 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग में लाई जाती है। नीम पर आधारित कीटनाशकों का प्रयोग भी जैविक कीटनाशकों की तरह लेपीडोपटेरा वर्ग के लार्वा की प्रारंम्भिक अवस्था में कारगर सिद्ध हुआ है। यदि जैविक कीटनाशकों का प्रयोग, नीम पर आधारित एवं सुरक्षित कीटनाशकों के साथ सुनियोजित ढंग से किया जाये तो न केवल प्रयोग, नीम पर आधारित एवं सुरक्षित कीटनाशकों के साथ सुनियोजित ढंग से किया जाये तो न केवल कीटों को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखा जा सकता है, बल्कि जहरीले रसायनों के प्रयोग को भी कम किया जा सकता है। कीट प्रबंधन में वानस्पतिक कीटनाशकों के प्रयोग को व्यावसयिक स्वरूप देने हेतु और अधिक महत्व देने की आवश्यकता है, क्योंकि इनके प्रयोग से प्राकृतिक शत्रुओं और परागण करने वाले कीटो पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है तथा फलों के प्रदूषित होने की सम्भावना भी नहीं रहती हैं।

रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कब और कैसे करें

यह सत्य है कि रासायनिक कीटनाशकों का कीट नियंत्रण के साथ–साथ फलों की उत्पादकता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान है तथा भविष्य में भी कीट प्रबंधन का एक प्रमुख घटक रहेगा। लेकिन विगत वर्षों में रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग उस समय किया जाये जब अन्य विधियों के प्रयोग से कीट नियंत्रण में अपेक्षित सफलता न मिले तथा फलों को आर्थिक नुकसान होने की सम्भावना हो। बगीचों में रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग कम करना तभी सम्भव हो सकेगा जब किसान कीटों की सही पहचान तथा उनके नुकसान करने का समय व ढंग के संबंध में समुचित ज्ञान प्राप्त करें और उद्यानों की निरंतर निगरानी करते रहें। इससे कीटों के आगमन एवं प्रकोप के स्तर की जानकारी प्राप्त होती रहेगी, जो अन्ततः कीटनाशकों के उचित समय पर छिड़काव, उनके विवेकपूर्ण प्रयोग तथा कीट प्रबंधन में पूर्णरूपेन सहायक सिद्ध होगा। कुछ कीटनाशक ऐसे पाये गये हैं जिनके विवेकपूर्ण प्रयोग से प्राकृतिक शत्रुओं (परजीवी/परभक्षी), मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना अपेक्षाकृत कम रहती है तथा हानिकर कीटों के प्रभावी नियंत्रण में भी अधिक सहायता मिलती है। जैसे इन्डोसल्फान, फोसलोन, कार्वेरिल, मैलाथियान इत्यादि। अतः किसान भाइयों को इन्हीं कीटनाशकों के प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए।

फल उद्यानों में कीट प्रबंधन हेतु रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग निम्न प्रकार से करना चाहिए :

1. उद्यान स्थापित करते समय पौधों के रोपाई से पूर्व गड्ढे में 50 ग्राम क्लोरपायरीफास धूल मिलाकर गड्ढे को उपचारित कर लें जिससे गड्ढे में कीटों का नियंत्रण हो सके। रोपाई से पूर्व पौधों के क्लोरपाइरीफास 2 मि.ली./लीटर पानी के घोल में उपचारित कर के ही रोपाई करें।

2. कटाई–छंटाई के बाद छिड़काव करना उपयुक्त होता है। इसी समय थालों की मिट्टी को दो फुट की चौड़ाई में चारों तरफ से हटाकर क्लोरपाइरीफास 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर घोल से जड़ों को सींच देना चाहिए। इस उपचार से पेड़ की जड़ों को नुकसान करने वाले कीटों जैसे दीमक, यूली ऐफिड, वीविल व जड़ छेदक का प्रकोप नहीं होता है। किसानों को यह उपचार प्रत्येक पेड़ में प्रति वर्ष करना चाहिए।

3. आम में पुष्प कलिकाओं के निकलने के समय मिज कीट या हॉपर का प्रकोप दिखते ही फेनिट्रोथियोन या मोनोक्रोटोफास 1.25 मि.ली या डाएमेथोएट 1.5 मि.ली या इमिडाक्लेरप्रिड 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जाना चाहिए।

4. सेव, नाशपाती, आडू, प्लम एवं चेरी के थ्रिप्स कीट के नियंत्रण हेतु फरवरी–मार्च में फूल खिलने से लगभग 7–8 दिन पहले, गुलाबी कली अवस्था (पिक बड स्टेज) में मिथाइल डिमेंटन 2 मि.ली. या इमीडाक्लोरप्रिड 0.3–0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। जिन फसलों में आडू के लीफ कर्ल एफिड के नियंत्रण हेतु कीटनाशक का छिड़काव किया जाता है, उन फसलों में थ्रिप्स के नियंत्रण हेतु कोई छिड़काव नहीं करना चाहिए।

5. फरवरी–मार्च में आम नवजात फलों के निकलने पर यदि हॉपर कीट का प्रकोप 5–10 हॉपर प्रति पुष्प कली हो तो नियंत्रण के लिए बदल–बदल कर कीटनाशकों यथा कार्बोरिल 3 ग्राम या मोनोक्रोटोफास 1025 मि. ली. या साइपरमेथ्रीन 1 मि.ली. या इमिडाक्लोराप्रिड 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

6. आडू के लीफ कर्ल एफिड के नियंत्रण हेतु फरवरी में फूल खिलने से पहले मिथाइल डिमेटान 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

7. मार्च में आम के खैरा रोग के नियंत्रण के लिए घुलनशील गंधक 2 ग्राम/ली. या कैराथन 2 मि.ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए तथा साथ में तरल साबुन भी मिलाना चाहिए।
8. टेन्ट कैटरपीलर कीट का प्रकोप मार्च से मई के मध्य होता है। इस अवधि में आम, सेब खूबानी, अखरोट एवं नाशपाती फसलों की निगरानी करना चाहिए तथा आर्थिक नुकसान होने की आशंका में ही इन्डोसल्फान 2 मि.ली. पानी में छिड़काव करना चाहिए। आवश्यक होने पर ही दूसरा छिड़काव इनमें से कीटनाशकों को बदल कर करना चाहिए।
9. बेर, आम एवं अमरूद में फल मक्खी से आर्थिक क्षति होने की संभावना रहने पर साइपरमेथ्रिन 1 मि.ली., क्वीनालफॉस 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए तथा खाद प्रलोभक एवं फेरोमोन ट्रैप का प्रयोग करना चाहिए।
10. पत्ती एवं फल खाने वाले कीट का प्रकोप होने की अवस्था में इन्डोसल्फॉन या क्वीनालफास 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव जिप्सी मॉथ के नियंत्रण हेतु कार्बोसल्फाान 2 मि.ली. या मोनोक्रोटोफॉस 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
11. लीची वग एवं माइट कीटों के नियंत्रण हेतु मनोक्रोटोफॉस 1 मि.ली. तथा केल्थेन 1.25 मि.ली. पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
12. जुलाई के दूसरे पखवारे में आम शल्क कीट या अन्य शल्क कीट जिनका अधिक प्रभाव होता हो को देखते ही मोनोक्रोटोफास 1 मि.ली. या डायमेथोयेट 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। आवश्यक होने पर 15 दिनों के बाद इनमें से किसी कीटनाशक को बदलकर प्रयोग करना चाहिए।
13. बेर में बिट्लि का प्रकोप दिखाई देने पर कार्बोरिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
14. संतरा में साइला, सफेद मक्खी, काली मक्खी, रेड स्केल एवं कॉटनी कोसिन स्केल कीटों के नियंत्रण के लिए डायमेथोयेट या फेनीट्रोथियोन 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

सावधानियाँ

1. उद्यानों में प्रमुख हानिकारक कीटों जैसे मधुआ, फलमक्खी, इंडियन जिप्सी माथ, टेन्ट कैटरपीलर एवं पत्ती व फल खाने वाले कैटरपीलर के प्रकोप होने की अवस्था में फसल की निरंतर निगरानी करते रहना चाहिए तथा आर्थिक नुकसान होने की संभावना रहने पर ही कीटनाशकों का छिड़काव करना चाहिए।
2. कीटनाशकों का छिड़काव पौधों/वृक्षों पर समान रूप से करना चाहिए तथा कीटनाशकों के घोल में स्टीकर जैसे सैन्डोविट या टीपाल 1 मि.ली. प्रति लीटर कीटनाशक के घोल में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। स्टीकर के प्रयोग से कीटनाशक घुल जाती है और कीटनाशकों का उपयोग पुनः करना पड़ता है।
3. कीटनाशकों का छिड़काव अधिक धूप अथवा बदली के मौसम में नहीं करना चाहिए। यदि छिड़काव के छः घंटे के अंदर वर्षा हो गई तो कीटनाशक धुल जाती है और कीटनाशकों का उपयोग पुनः करना पड़ता है।
4. कीटनाशकों को प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए यह ध्यान रहना चाहिए कि कीटनाशक नया हो और उसे उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। कीटनाशक बदल–बदल कर छिड़काव करना चाहिए अन्यथा कीटों में कीटनाशक सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है और इस प्रकार बाद में उस कीटनाशक का प्रभाव कम हो जाता है। जब फूल पूर्णरूप से खिले हों उस समय कीटनाशक का छिड़काव नहीं करना चाहिए अन्यथा परागण करने वाले कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

5. प्राकृतिक शत्रुओं (परजीवी/परभक्षी) के संरक्षण एवं प्रोत्साहन हेतु यह भी आवश्यक है कि उस क्षेत्र में कार्यरत संगठनों द्वारा मित्र कीटों की कीटनाशक प्रतिरोधी जातियों का विकास किया जाय। जैविक नियंत्रण परियोजना निदेशालय, बंगलौर द्वारा अण्ड परजीवी कीट, ट्राइकोग्रामा किलोनिस की इन्डोग्रामा प्रजाति विकसित की है जो इन्डोसल्फॉन के विरूद्ध 0.07 प्रतिशत सान्द्रता तक प्रतिरोधी है। इस अण्ड परजीवी का प्रयोग कई में लेपीडोपटेरा वर्ग के कैटरपीलर के नियंत्रण में किया जाता है। इन प्रतिरोधी स्ट्रेन का व्यवसायिक उत्पादन इक्सेल इंडस्ट्रीज लिमिटेड, मुम्बई द्वारा किया जा रहा है।

6. कीटनाशकों के उपयोग के पूर्व तैयार फलों को तोड़ लेना चाहिए और छिड़काव के उपरांत 10–15 दिनों के बाद ही फल को उपयोग में लाना चाहिए।

7. समेकित कीट प्रबंधन में कीटों का निरीक्षण एवं अवलोकन पद्धति का महत्वपूर्ण योगदान है। इस पद्धति के प्रयोग से फल को नुकसान करने वाले कीटों की पहचान, उनके आगमन की सूचना तथा प्रकोप के स्तर की जानकारी प्राप्त होती है जो अन्ततः कीट प्रबंधन तकनीकों के क्रियान्वयन में सहायक होता है। राष्ट्रीय स्तर पर किसानों को कीटों के प्रकोप की अग्रिम चेतावनी/सूचना के प्रसार हेतु प्रयास किये जा रहे हैं तथा माहू (एफिड), हॉपर, पाइरिला एवं अतेरिकन वालवर्म (कैटरपीलर) इत्यादि कीटों के प्रकोप व प्रभाव का अध्ययन करके किसानों को अग्रिम सूचना उपलब्ध कराने में सहायता भी मिलती है। कीट प्रबंधन में इस पद्धति को और अधिक सुदृढ़ करने तथा व्यापक प्रचार–प्रसार हेतु विभिन्न संचार माध्यमों के प्रयोग को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

उपरोक्त सभी तकनीकों का फल उद्यानों में समय से क्रियान्वयन सुनिश्चित करके कीट प्रबंधन में कीटनाशकों के प्रयोग कम करना ही अहम् उद्देश्य है। इसे और अधिक प्रभावी बनाने हेतु विषय विशेषज्ञों और प्रसार–कर्मियों को समय–समय पर प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है, जिससे प्रसार कार्यों के लिए संचालित किये जा रहे प्रदर्शनों, प्रशिक्षणों तथा साहित्य में कीट प्रबंधन तकनीकों का समावेश कर फलों की उत्पादकता व गुणवत्ता में वृद्धि की जा सके तथा फलों के निर्यात हेतु आदर्श मानक स्तर को प्राप्त कर सके।

मसाला फसल उत्पादन

अदरक

अदरक (जिन्जिबर ऑफीसीनेल, *Gingiber officinale*; कुल – जिन्जिबरेसी, Zingiberaceae) उष्ण प्रदेश का मसाला है। इसकी खेती इसके प्रकन्द हेतु की जाती है। मसाले के अलावे इसका उपयोग इसके पाउडर व औषधि निर्माण में होता है। जिन्जेरॉल नामक तैलीय पदार्थ व ओलीयोरेजिन नामक रसायन इसके प्रकन्द से प्राप्त होते हैं। खनिज व ऊर्जा का एक अच्छे स्रोत के रूप में भी इसका इस्तेमाल होता है। मसाला बाजार में इसका स्थान तीसरा है। अदरक पाकशाला का एक अभिन्न अंग है। इसका पोषण मूल्य काफी है। इसके सूखे प्रकन्द में पाये जाने वाले अवयव निम्न हैं:

अवयव	मात्रा (%)	अवयव	मात्रा (मिग्रा/100 ग्रा.)
नमी	6.9	विटामिन बी1	0.85
प्रोटीन	8.6	विटामिन बी2	0.13
वसा	6.4	नायसिन	1.9
रेशा	5.9	विटामिन 'सी'	12.0
फॉस्फोरस	0.15	विटामिन 'ए'	175 आई.यू.
लौह	0.001	ऊर्जा	380 कैलोरी
सोडियम	0.03		
पोटाशियम	0.4		

जलवायु :

गर्म व नमीयुक्त क्षेत्र अदरक की खेती हेतु उत्कृष्ट होते हैं। समुद्रतल से 1,500 मी. ऊँचाई वाले भूभाग में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जाती है। खेत तैयार करते समय व प्रकन्द उखाड़ते समय वर्षा नहीं होनी चाहिए। इसके फसलकाल में एक समान वर्षा फसल के लिए लाभप्रद होती हैं। सिंचाई की अच्छी व्यवस्था रहने पर इसकी खेती कम बारिश वाले क्षेत्र में भी की जा सकती है।

मृदा :

मिट्टी की गहराई कम–से–कम 30 सें.मी. हो तथा जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो तो भारी लैटराइट दोमट, लाल लैटेराइट व केवाल जमीन में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। कंकड़–पत्थर मुक्त 30′ तक बालू वाले लैटेराइट व 20′ बालू वाले केवाल मिट्टी का भी चुनाव इसकी खेती हेतु की जा सकती है। छाया पूर्णतः जरूरी नहीं होते हुए भी हल्की छायादार जगह में इसकी खेती अच्छी होती है।

रोपण का समय :

मार्च–अप्रैल से जुलाई तक।

रोपाई :

छः जोत व पट्टा देकर खेत तैयार कर ली जाती है। छोटे उठे 3×1मी. आकार के बेड 45सें.मी. की दूरी पर बनाकर 15×22सें.मी. की दूरी पर उथले गड्ढों में कन्द की रोपाई की जाती है। कम्पोस्ट का प्रयोग अच्छी–खासी मात्रा में खेत

तैयार करते समय करना चाहिए। रोपण से पूर्व बीजकन्द को 0.3 प्रतिशत डाइथेन एम–45 + 0.05 प्रतिशत मैलाथियान व 200 पीपीएम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन के घोल में आधा घंटा तक भीगो लें।

बीज के रूप में कन्द का चुनाव व भण्डारण :

रोगरहित व स्वस्थ पौधे 6–8 महीने के होने पर हरे अवस्था में ही चुन लिये जाते हैं व टैग बाँध देते हैं। कन्द निकालते समय इन पौधों से अच्छे कन्द का बीज हेतु चुनाव कर लिया जाता है। चोट न खाये कन्दों को 3 ग्राम इन्डोफिल एम–45 व 1 मि.ली. मैलाथियान प्रति लीटर पानी के घोल में 30 मिनट तक भिगोकर रखते हैं। फिर इन्हें छायादार फर्श पर फैलाकर सूखा लेते हैं।

बालू अथवा लकड़ी के बुरादों से छायादार जगह में बने गढ्ढों में इन सूखे कन्दों को भण्डारित करतें हैं। गढ्ढों के मुँह को पत्तों से ढककर मिट्टी डाल दिया जाता है।

प्रत्येक माह गढ्ढे खोलकर सड़े कन्दों को छाँटकर अच्छों का पुनः भण्डारण करते हैं व ऊपर एक दो छेद की व्यवस्था कर ली जाती है ताकि कवकों की संख्या कमतर रहे। पौधा रोपण के पूर्व भी उपरोक्त घोल द्वारा कन्द उपचारित कर लिया जाता है।

किस्म :

उपयोग के अनुसार अदरक की निम्न किस्मों की खेती की जा सकती है :

उपयोग	किस्म
सूखा अदरक	करक्कल, नदिया, मारन, विनाड, मननरोडी, वल्लूवनद, इमड व कुरूप्पमपदी।
ताजे अदरक	रियो–डी–जेनेरो, वर्द्धमान चाइना, विनाड व टफेन्जिया, नदिया, समस्तीपुर, हिमगिरी, सुप्रभा, सुरूचि तथा सुरभि।
तेल (जिन्जेरॉल)	स्लिवा स्थानीय, नरसापट्टम, इमड, चेमड व हिमाचल प्रदेश
ओलियोरेजिन	इमड, चेमड, चाइना, कुरूप्पमपदी, रियो–डी–जेनेरो
अल्पारेशित कन्द	जेमैका, बैंकाक, चाइना (ताजे कन्द हेतु भी)

प्रायः 56 क्विंटल प्रति एकड़ उपज देने वाली किस्में भी प्रयोग में लायी जा सकती हैं। जैसे– पी.सी.एस. 9, पी.सी.एस. 19, पी.सी.एस. 35।

बीज

कन्द	:	6–7 क्विंटल प्रति एकड़
उत्तक संवर्धित पौधे	:	सवा लाख प्रति एकड़

खाद प्रयोग (प्रति एकड़) :

स्रोत	खाद	प्रयोग का समय	मात्रा
कार्बनिक	कम्पोस्ट	रोपाई के समय	10–12 टन
रासायनिक	यूरिया	आधारीय	–
		रोपण से दो माह बाद	44 किलो
		रोपण से चार माह बाद	44 किलो
	फास्फेट (एस.एस.पी.)	आधारीय	250 किलो
	पोटाश (एम.ओ.पी.)	आधारीय	66 किलो
		रोपण के चार माह बाद	66 किलो

पलवार का प्रयोग :

शीघ्र सड़ने योग्य सूखे पत्ते का प्रयोग हर डेढ़ महीने पर 10–12 टन प्रति एकड़ के हिसाब से व्यवहार में लाकर पलवार डाला जाता है जो उपज को दो गुणा तक बढ़ाता है। ढ़ैचा, उरद, कुल्थी आदि का बुवाई कर भी पलवार व हरे खाद के रूप में अदरक के खेत में प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

अन्तःशस्यन :

अन्तः शस्यन द्वारा अर्द्ध छाया का लाभ अदरक को प्रदान किया जाता है।

फसल–चक्र :

एक जमीन में अदरक की खेती तीन साल से कम अन्तराल पर नहीं करनी चाहिए। फसल–चक्र में सब्जियों जैसे मिर्च अथवा मूँगफली, रागी या मकई का प्रयोग किया जा सकता है।

देखभाल :

अदरक में अंकुरण 15–30 दिनों के अंदर होता है। खेत नमी युक्त होनी चाहिए।

सिंचाई :

अदरक को 25–40 सिंचाई की आवश्यकता होती है। बरसात में बारीश के अभाव में 15–15 दिन पर सिंचाई की जाती है।

निकाई–गुड़ाई :

मेड़ विधि में पलवार डालकर खेती करने पर प्रथम बार 30 दिन के बाद निकाई–गुड़ाई की जाती है। फिर 45 व 60 दिन पर इसे दुहराते हैं। अन्तिम बार मिट्टी चढ़ा दिया जाता है।

कन्द उखाड़ना :

रोपाई से पाँच महीने उपरान्त कन्दों को जमीन से निकाला जा सकता है। वैसे इसे तैयार होने में सात महीने लगते हैं। जमीन से निकालते समय कन्द कटे न, इस बात का ध्यान रखा जाता है जो सड़न रोग को बढ़ाते हैं।

बीज हेतु कन्द नौ महीने में तैयार होते हैं। ताजे कन्द हेतु 195 दिन बाद कन्द निकाल लेते हैं नहीं तो रेशा की मात्रा बढ़ती है व प्रोटीन–वसा घटता है। सूखे कन्द हेतु 245–255 दिन बाद कन्द उखाड़ते हैं, पर 260 दिन के पूर्व ऐसा न करने पर रेशा की मात्रा काफी बढ़ जाती है व तेल घटता है। छिलका छुटने से रंग नष्ट हो जाता है।

उत्पादन

स्थानीय : 30–40 क्वि./एकड़ विदेशी : 80–160 क्वि./एकड़

क्योरिंग :

बाजार में अदरक दो रूपों में मिलता है – छिलका सहित व छिलका रहित। छिलका धारदार बाँस के फट्टे से रगड़कर छुड़ाया जाता है। फिर पानी से साफ कर धूप में सूखा लेते हैं। तेल कन्दों के ऊपरी सतह में ही पाया जाता है। अतः सतह को क्षति होने से बचाते हैं। छिलका छुड़ाने में लोहे के चाकू का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से (चाकू का प्रयोग) कन्द चित्तीदार होकर बाजार में सस्ते बिकते हैं। तत्पश्चात् धूप में सूखा लिया जाता है। बनावटी गर्मी (बन्द ओवेन के प्रयोग द्वारा) के प्रयोग द्वारा सूखाने से कन्द की गुणवत्ता घटती है।

ब्लिचिंग :

विधि 1 : भारतीय अदरक के सबसे बड़े बाजार मध्य–पूर्व के देशों में उजला, पॉलिश किया हुआ धब्बा रहित कन्द की माँग होती है। इसके लिए एक दिन पानी में डुबोकर कन्द रखते हैं। फिर एक किलों चूना प्रति 120 ली. पानी के घोल में इन कन्दों को डुबोकर रखते हैं। तीसरे दिन धूप में सूखाकर गन्नी बैग से रगड़कर छिलका छुड़ा लेते हैं।

विधि 2 : चूना व्यवहृत कन्द को सल्फर डाइऑक्साइड से धूमित कर लिया जाता है। 3.2 किलो गन्धक में 1 टन कन्द विशेष तरीके के बन्द डब्बे में मिलाकर 12 घन्टे तक के लिए छोड़ कर ऐसा किया जाता है।

विधि 3 : छिलका छुड़ाये कन्दों को धोते समय 30 ली. पानी में 600 मि.ली. चूना–पानी मिलकार धो लिया जाता है। ऐसा करने से चमकदार उजला कन्द प्राप्त होता है। ऐसे कन्दों को सुबह में धूप में व बाकी समय छाया में हवादार जगह में सूखाते हैं। ऐसा 8–12 दिन तक करते हैं।

पौधा संरक्षण :

रोग:

1. **मुलायम सड़न अथवा कन्द सड़न** : बारिश के मौसम में जब पौधे 50–60 से.मी. के हो जाते हैं, तब इसके छोटे पत्ते पीला पड़कर सूखने लगते हैं। जमीन के पास के पौधे के कॉलर हिस्से पनीले व मुलायम हो जाते हैं तथा आसानी से उखड़ जाते हैं। बाद में रोगी पौधे के कन्द सड़कर एक कड़े खोल के अन्दर मुलायम हिस्सा के रूप में विकसित हो जाते हैं।

   कारण : भारी बारिश, जल निकास का अभाव, जमीन का लगातार दलदलीपन।

   रोकथाम : रोपाई के समय कन्दों का 1 ग्राम मरक्यूरिक क्लोराइड प्रति ली. पानी के घोल द्वारा उपचार।

2. **पर्ण चित्ती** : पत्तों पर धब्बे जिनका आकार भिन्न–भिन्न होता है।

   रोकथाम : 1 प्रतिशत बोर्डियोक्स मिश्रण का छिड़काव 1 या 2 बार।

3. **तन्तु अंगमारी** : तने व पत्तों के डंण्ठल पर जलीय धब्बे उभरते हैं। रोगी हिस्से में सफेद तन्तु कवक उभरे रहते हैं।

   रोकथाम : पत्तों के दोनों तरफ 1 प्रतिशत बोर्डियोक्स मिश्रण का छिड़काव।

कीट :

1. **धड़छेदक** : यह अदरक का मुख्य एवं सबसे ज्यादा हानिकारक कीट है। इल्लियाँ बीच के धड़ में घुस जाती हैं व पौधे पीले होकर सूख जाते हैं।

2. **तेला** : कुछ क्षेत्रों में इसका भी प्रकोप होता है।

   उपचार : दोनों कीट हेतु सुपरकीलर 25 प्रतिशत 80 मि.ली. प्रति एकड़ का छिड़काव।

3. **भण्डारण कीट** : कुछ कीट कन्दों में भण्डारण के दौरान घुसकर सुरंग का निर्माण कर अखाद्य बना देते हैं।

   उपचार : 1. कन्द का गर्म पानी से 54–66 सें. ताप पर 6 घण्टे का उपचार,

   2. पाइरेथ्रीन का भण्डारण स्थल पर भुरकाव।

हल्दी

हल्दी (Curcuma longa) जिंजीवरेसी कुल की एक उष्णकटिबंधीय मसाला फसल है इसकी खेती कन्द हेतु की जाती है। इसका उपयोग मसाला, रंग–रोगन, दवा व सौन्दर्य प्रसाधन के क्षेत्र में होता है। इसके कन्द से पीले रंग का पदार्थ – कुर्कुमीन व एक उच्च उड़नशील तैलीय पदार्थ – टर्मेरॉल का उत्पादन होता है। इसके कन्द में उच्च मात्रा में ऊर्जा (कार्बोहाइड्रेड के रूप में) व खनिज होते हैं। इसकी उपज पर भारत का एकाधिकार है। हमारे देश का मध्य व दक्षिण का क्षेत्र एवं असम इसके उत्पादन का मुख्य भाग हैं।

जलवायु :

अच्छी बारिश वाले गर्म व आर्द्र क्षेत्र इसके उत्पादन हेतु योग्य होते है। इसकी खेती 1200 मी. ऊँचाई तक वाले क्षेत्रों में सुगमता पूर्वक अच्छी सिंचाई व्यवस्था के साथ की जा सकती है।

मिट्टी :

इसकी अच्छी उपज हेतु दोमट, केवाल अथवा काली मिट्टी अच्छी होती है। तथापि कम्पोस्ट देकर कम उपजाऊ बलुई दोमट मिट्टी में भी इसकी अच्छी उपज ली जा सकती है। इसके खेत में जल निकास की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। मिट्टी क्षारीय नहीं होनी चाहिए। कन्द का सड़न इसकी मुख्य समस्या है। ऐसे क्षेत्र में कम–से–कम दो वर्ष तक फसल विन्यास पद्धति अपनाना चाहिए।

किस्म :

फसल तैयार होने में लगे समय के आधार पर इसकी किस्मों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

1. कम समय में तैयार होने वाली 'कस्तुरी' वर्ग की किस्में : रसोई में उपयोगी, 7 महीने में फसल तैयार, उपज कम। जैसे – कस्तुरी पसुंपु।
2. मध्यम समय में तैयार होने वाली केसरी वर्ग की किस्में : 8 महीने में तैयार, अच्छी उपज, अच्छे गुणों वाले कन्द। जैसे – केसरी, अम्रुथापानी, कोठापेटा।
3. लम्बी अवधि वाली किस्में : नौ महीने में तैयार, सबसे अधिक उपज, गुणों में सर्वश्रेष्ठ। जैसे – दुग्गीराला, तेकुरपेट, मिदुकुर, अरमूर।

   व्यावसायिक स्तर पर दुग्गीराला व तेकुरपेट की खेती इनकी उच्च गुणवत्ता के कारण की जाती है।

अन्य किस्में :

मीठापुर, राजेन्द्र सोनिया, सुगंधम, सुदर्शना, रश्मि व मेघा हल्दी–1

रोपाई :

भारी मिट्टी वाले क्षेत्र में खेत की अच्छी तरह जुताई कर नाली–मेढ़ पद्धति में खेत तैयार कर लेते हैं। हल्की मिट्टी वाले क्षेत्र में समतल जमीन में ही इसके कन्दों अथवा उत्तक संवर्धित पौधों की रोपाई की जा सकती है। इसके लिए क्यारियों का आकार अपने सुविधानुसार रखा जा सकता है। इसकी रोपाई हेतु मातृ कन्द अथवा नये कन्द–दोनों का प्रयोग किया जा सकता है। मातृ कन्द 10 क्विंटल व नये कन्द 8 क्विंटल अथवा 90 हजार उत्तक संवर्धित पौधे प्रति एकड़ की दर से रोपाई की जाती है। इसकी रोपाई लाल मिट्टी वाले क्षेत्र में 6''×12'' की दूरी पर तथा काली मिट्टी वाले क्षेत्र में 6''×16'' की दूरी पर करते हैं। 18'' की दूरी पर बने मेढ़ों पर 8'' की दूरी पर भी रोपाई की जा सकती है।

रोपण का समय :

कम समय में तैयार होने वाली किस्मों हेतु : **मई**।

मध्यम समय में तैयार होने वाली किस्मों हेतु : **जून के पहले भाग में।**

लम्बी अवधि वाले किस्मों हेतु : **जून–जुलाई**।

रोपाई में देरी पौधों के विकास व उपज दोनों में कमी लाता है। रोपने के पूर्व डाइथेन एम–45 के 0.3 प्रतिशत घोल से इसके कन्दों को उपचारित कर लेने से कन्द सड़न बीमारी नहीं लगती।

खाद की मात्रा :

हल्दी की खेती हेतु कार्बनिक व रासायनिक खाद (प्रति एकड़) निम्न तालिकानुसार प्रयोग करते हैं।

किस्म	खाद	मात्रा
कार्बनिक	कम्पोस्ट	120–160 क्विंटल
	खल्ली	60 क्विंटल
रासायनिक*	यूरिया	270 किलो
(हल्की मिट्टी हेतु)	फॉस्फेट	330 किलो
	पोटाश	120 किलो

*जलोढ़ व भारी मिट्टी वाले क्षेत्र में रासायनिक खाद की मात्रा आधी हो जाएगी।

खाद प्रयोग की विधि :

कार्बनिक : पूरे कम्पोस्ट का प्रयोग खेत तैयार करते वक्त व खल्ली को कई बार में प्रयोग करना उचित होता है।

रासायनिक : फॉस्फेट की पूरी, पोटाश की आधी व यूरिया की एक तिहाई मात्रा रोपाई के वक्त, एक तिहाई यूरिया रोपाई के दो माह बाद तथा पोटाश की शेष आधा व यूरिया की एक तिहाई मात्रा रोपाई के चार महीने बाद प्रयोग करते हैं।

पलवार :

सूखे पत्तों द्वारा हल्दी के खेत में पलवार डालने से मिट्टी की नमी ज्यादा दिनों तक बरकरार रहती है तथा खर–पतवार भी नियंत्रित रहते हैं।

अंत:शस्यन :

प्रति 4 वर्ग मी. क्षेत्र में एक अरण्डी के पौधों का रोपण कर हल्दी के खेतों में अर्द्धछाया व अतिरिक्त आमदनी ली जा सकती है। प्रत्येक दो पंक्ति हल्दी के बाद एक पंक्ति में मकई अथवा मिर्च की खेती भी कर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त किया जा सकता है।

देखभाल :

फसल के प्रारम्भिक अवस्था में प्राय: चार बार निकाई–गुड़ाई कर खरपतवार नियंत्रित किये जा सकते हैं।

सिंचाई :

प्राय: 5–7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। भारी मिट्टी वाले क्षेत्र में पूरे फसल के समय में 20 व हल्की मिट्टी वाले क्षेत्र में 30 बार सिंचाई की जाती है।

पौध संरक्षण :

कीट : सौभाग्य से इस फसल के कीड़े के रूप में बहुत दुश्मन नहीं हैं। कुछ का वर्णन निम्न है :

कन्द मक्खी : यह मक्खी कन्द को विकास के क्रम में खाता है एवं कन्द को सड़ा देता है। फोरेट 10जी के दाने 10 किलो प्रति हे. के हिसाब से प्रयोग कर इस मक्खी को नियंत्रित किया जा सकता है।

बारूथ : ये कीड़े पत्तियों को नष्ट करते हैं। इनको नियंत्रित करने के लिए डाइमेथोएट या मिथाइल डेमेटॉन का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी का घोल अथवा केल्थेन या घुलनशील सल्फर 3 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल व्यवहार करें।

रोग :

कुछ रोग इस फसल को अच्छा–खासा नुकसान पहुँचाते हैं। वे हैं :

कन्द सड़न : हल्दी की सभी किस्में इस रोग से प्रभावित होती हैं। इसकी रोकथाम उचित शस्यन विधि अथवा रसायनों द्वारा की जाती है। इस रोग से प्रभावित पौधों के ऊपरी भागों पर धब्बे दिखाई पड़ते हैं और अन्त में पौधे सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम हेतु प्रभावित क्षेत्र को खोदकर बॉर्डियोक्स मिश्रण से उपचारित कर लेते हैं। कन्द रोपण के समय कन्दों को डाइथेन एम–45 के 0.3 प्रतिशत घोल से आधे घंटे के लिए उपचारित कर तब कन्द का रोपण करें।

पर्णचित्ती पर्ण–झुलसन : पर्णचित्ती के कारण पत्तियों के विकास काल में यह रोग पत्तों पर धब्बों के रूप में विकसित होता है। उपज को काफी कम कर देता है। धब्बे अण्डाकार भूरे रंग के धूसर केन्द्रक के साथ विकसित होते हैं। पर्णझुलसन रोग में बिना आकार वाले गहरे भूरे धब्बे पत्तों पर दिखायी पड़ते हैं। इसके नियंत्रण हेतु भी डाइथेन एम–45 के 0.3 प्रतिशत घोल अथवा बैविस्टिन का 0.1 प्रतिशत घोल 15 दिनों के अंतराल पर 2–3 बार करना चाहिए।

उच्च सहिष्णु क्षमता वाली किस्म के रूप में मेघा हल्दी–1 को उपयोग में लाया जा सकता है।

कन्द को जमीन से निकालना :

फसल 7–9 महीने में तैयार हो जाती है। कन्दों को जोतकर अथवा खोदकर निकाल लेना चाहिए।

उपज : ताजा : 80–100 क्विंटल प्रति एकड़।
क्योर्ड : 16–20 क्विंटल प्रति एकड़।

क्योरिंग व सूखाना :

व्यावसायिक सूखा हल्दी बनाने के लिए इसके कन्दों को जमीन से निकालने के एक सप्ताह के अन्दर उबाल लेना चाहिए। यही क्योरिंग है। यह दो प्रकार से किया जा सकता है।

घरेलू : मिट्टी अथवा लोहे के बर्तन में गाय के गोबर के घोल में उबालकर।

सी.एफ.टी.आर.आई. विधि : गैलेवेनाइज्ड लोहे के बर्तन में 0.1 प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट/बाइ कार्बोनेट के घोल में 1–1.5 घंटे तक उबाल कर। एक घोल को अधिकतम दो बार प्रयोग करें।

रासायनिक विधि द्वारा क्योरिंग करने से प्रकन्द का रंग आकर्षक नारंगी–पीलापन रंग का विकसित होता है। इस विधि में मातृ व नये कन्दों को अलग–अलग उबालना चाहिए। उबले कन्दों को धूप में 10–15 दिनों तक सूखा लेना चाहिए।

पॉलिश करना :

इन सूखे कड़े कन्दों को नाचने वाले ड्रम में हल्दी पाउडर डालकर पॉलिश कर लिया जाता है। जिसके द्वारा कन्द पर अब आकर्षक बाहरी परत चढ़ जाता है।

भण्डारण :

बीज हेतु ताजे निकले कन्दों को ठंडे व सूखे स्थान पर भण्डारण करना चाहिए। सूखाये गये कन्द 4×3×2 मी. के गढ्ढों में सुर्ख हल्दी के पत्तों के बीच रखकर ऊपर से मिट्टी का लेप लगाकर भण्डारित किया जाता है।

प्लास्टिक के बोरों जिनके भितरी हिस्सों में अल्काथेन का परत चढ़ा हो भर कर धूमकक्ष में भण्डारित किया जा सकता है। पर इस विधि में पहली विधि के बनिस्पत गुणों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पादप प्रवर्धन में उत्तक संवर्धन का प्रयोग :

वैसे तो बतौर बीज हल्दी के कन्द ही खेती हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके शीघ्र फैलाव के लिए कन्द का प्रयोग एक धीमी विधि है। इसके कन्दों में एक शिथिल काल की समस्या होती है जो अंकुरण के आड़े आता है। अतः इसके कन्द सिर्फ वर्षा काल में अंकुरित होते हैं। साथ ही एक कन्द से अधिकतम 5–6 पौधे ही मिलते हैं। ऐसे में उत्तक संवर्धन विधि का प्रयोग शिथिल काल की समस्या से छुटकारा दिलाता है। इस विधि के प्रयोग से अच्छी उपज वाले किस्मों के पौधे बड़े पैमाने पर तैयार किये जाते हैं। इस विधि में बिना कैलस बनाये सीधे तना उत्तक द्वारा हस्से द्वारा विकसित व नाडगौडा व अन्य द्वारा प्रमाणिकृत विधि का प्रयोग कर बड़े पैमाने पर पौधे तैयार किये जाते हैं।

लहसुन

लहसुन (एलियम सैटाइवम, *Allium sativum*; कुल–एलीएसी, Alliaceae) मसालों में एक महत्वपूर्ण फसल है। शल्ककंदीय फसलों में इसका स्थान दूसरा है। इसके जवों का प्रयोग विभिन्न शाकाहारी तथा मांसाहारी व्यंजनों को बनाने व सुगंधित करने में होता है। इसके पत्तियों का उपयोग चटनी, पकौड़ा, कोफ्ता, सलाद आदि बनाने में होता है। जोड़ों के दर्दनिवारक के रूप में भी इसका उपयोग काफी होता है। पाचनक्रिया को ठीक रखने में यह सहायक है। इसके उपयोग से खून में कोलेस्टेरॉल व शर्करा की मात्रा कम की जाती है। परन्तु ज्यादा मात्रा में प्रयोग एनीमिया पैदा करता है। इसके पोषक गुण निम्न प्रकार हैं :

अवयव	मात्रा %	अवयव	मात्रा (मिग्रा./100 ग्राम)
नमी	62.0	कैल्शियम	30
प्रोटीन	6.3	फॉस्फोरस	310
वसा	0.1	लौह	1.2
खनिज	1.0	थाइमीन	0.06
रेशा	0.8	रिबोफ्लेविन	0.23
कार्बोहाइड्रेट	29.8	नायसीन	0.4
		विटामिन 'सी'	13
		ऊर्जा	145 कैलोरी

जलवायु :

इसकी खेती हर तरह के जलवायु में सम्भव है। तथापि इसकी खेती बहुत गर्म अथवा बहुत ठंढे में संभव नहीं है। यह पाले के प्रति रोधी फसल है। फिर भी इसके वृद्धिकाल में ठंढा व आर्द्र मौसम एवं शल्क के परिपक्वताकाल में सूखा मौसम अच्छा होता है। शल्क के अच्छी तरह निर्माण के लिए लम्बे दिन व ज्यादा तापमान वाले मौसम की आवश्यकता पड़ती है। शल्क बन जाने के बाद कम तापक्रम का होना उत्पादन बढ़ाता है। इसकी खेती 1,000–1,300 मी. तक की ऊँचाई वाले स्थानों पर भी सम्भव है। दिन काल के जरूरत के अनुसार लहसुन की दो प्रकार की किस्में होती हैं– लम्बे व छोटे दिनों में तैयार होने वाली। वृद्धिकाल में ठंढा मौसम गर्म के बनिस्पत ज्यादा उपज देता है। इसके जवों की रोपाई अगात करनी चाहिए ताकि पौधों में छोटे दिन व ठंढे मौसम में अच्छी तरह वानस्पतिक वृद्धि हो। पिछात रोपाई ठीक उल्टा प्रभाव डालता है व कम उपज देता है। शल्क निर्माण हेतु कम–से–कम 12 घंटे वाले दिन चाहिए। दिन की लम्बाई के साथ ही तापमान भी शल्क निर्माण को प्रभावित करता है। 1–2 महीने के लिए 20 डिग्री सें. से कम तापमान किस्म अनुसार शल्क निर्माण को तेजी से बढ़ाता है। इस तरह का तापमान नहीं पाने वाले पौधे शल्क निर्माण में असफल हो जाते हैं। चूँकि किसी विशिष्ट स्थान पर साल–दर–साल जलवायु के अवयव बदलते रहते हैं। अतः किसी विशिष्ट किस्म का उपज भी हर वर्ष समान नहीं होता। वृद्धिकाल में तापमान में बहुत ज्यादा कमी के कारण शल्क निर्माण शल्क के सतह के नजदीक से न होकर पत्तियों के केन्द्र से होने लगता है।

मृदा :

लहसुन की खेती हेतु मध्यम काल, उपजाऊ, अच्छी जल निकास वाली कार्बनिक पदार्थों से भरपूर व अच्छी तरह पोटाशयुक्त दोमट मिट्टी अच्छी होती है। बलुई अथवा हल्की मिट्टी में पौधों में बढ़वार भी कम होता है व शल्क भी हल्के होते हैं। भारी मिट्टी में शल्क खराब हो जाते हैं। ऐसे शल्क भण्डारण हेतु अनुपयुक्त होते हैं। खराब जलनिकास व्यवस्था वाले मिट्टी में

इसके शल्क खराब रंगत के होते हैं। पी.एच. मान 6–7 सबसे उपयुक्त होता है। बहुत क्षारीय मिट्टी भी इसकी खेती हेतु अनुपयुक्त होते हैं।

किस्म :

एग्रीफाउण्ड ह्वाइट (जी 41) : कन्द बड़े (प्राय: 3.5–4.0 सें.मी. व्यास के) आकार के होते हैं। कन्द ठोस, चाँदी की तरह सफेद, गूदा क्रीम रंग का व जवे बड़े होते हैं। जवों की संख्या 20–25 होती हैं।

यमुना सफेद (जी 1) : कन्द ठोस व त्वचा चाँदी की तरह सफेद एवं गूदा क्रीम रंग का होता है। कंद आकार में बड़ा (4.0–4.5 सें.मी.) व जवों की संख्या 20–25 होती हैं।

यमुना सफेद 2 : कंद ठोस, त्वचा सफेद एवं गूदा क्रीम रंग का होता है। फसल 165–170 दिनों में तैयार होती है। बैंगनी धब्बा व झुलसा रोग के प्रति सहिष्णु है।

जी–282 : कंद बड़े आकार के (5.87 सें.मी.) व त्वचा सफेद रंग का होता है। जवों का आकार 1.04–1.05 सें.मी. मोटा होता है व वजन 2.5–2.8 ग्राम होता है। गूदा क्रीम रंग का होता है। जवों की संख्या 15–18 होती है। फसल तैयार होने में 140–150 दिन लगता है।

पादप प्रवर्धन :

लहसुन की खेती हेतु जवों को बीज के रूप में व्यवहार करते हैं। कुछ किस्मों में पत्र प्रकलिका (बल्बिल) का भी उपयोग बीज के रूप में होता है। उत्तक संवर्धन द्वारा भी पादप प्रवर्धन किया जाता है। पत्र प्रकलिका द्वारा प्रवर्धन हेतु नर्सरी में उगाये गये डेढ़ महीने के पौध मुख्य खेत में लगाये जाते हैं।

बुआई काल : अक्टूबर–नवम्बर।

बीज दर : 200 किलो/एकड़

दूरी : 15×10 सें.मी.

बुवाई का तरीका :

क्यारियों में 15 सें.मी. की दूरी पर उथली नालियों में 10 सें.मी. की दूरी पर 5–7.5 सें.मी. की गहराई में जवों के नुकीले भाग को ऊपर रखकर बुवाई की जाती है। बुवाई के बाद इन जवों को हल्की मिट्टी से ढंक देते हैं। तत्पश्चात हल्की सिंचाई की जाती है।

पोषण :

खाद/उर्वरक	मात्रा (प्रति एकड़)	उपयोग का समय
कम्पोस्ट	16 टन	अंतिम जुताई के समय
यूरिया	80 किलो	आधी मात्रा बुवाई से दो दिन पूर्व व आधी 4 सप्ताह बाद
एस.एस.पी.	120 किलो	बुवाई से दो दिन पूर्व
म्यूरेट ऑफ पोटाश	40 किलो	बुवाई से दो दिन पूर्व

सिंचाई :

पहली बार बुवाई के तत्काल बाद हल्की सिंचाई की जाती है। बाद में 10–12 दिन के अंतराल पर सिंचाई की जाती है। पौधों के वृद्धिकाल व जवों के विकासकाल/परिपक्वन काल में मिट्टी में भरपूर नमी होनी चाहिए। खुदाई से 15 दिन पूर्व सिंचाई बंद कर दी जाती है। अन्यथा जवों की गुणवत्ता खराब होती है।

निराई–गुड़ाई :

खुरपी की सहायता से क्यारियों में पंक्तियों के बीच हल्की 2–3 बार निराई–गुड़ाई की जाती है।

कंदों की खुदाई व सूखाना :

पत्तियाँ पीली पड़ने की अवस्था में कंदों को खोदकर निकाल लेते हैं। इन्हें 3–4 दिन छाया में सूखाने के उपरान्त 2–2.5 सें.मी. डंठल छोड़कर काट लेते हैं। वैसे डंठल सहित रखने से कंद जल्दी नहीं सूखते। सूखे फर्श पर कंदों को फैलाकर रखते हैं।

उपज :

2–4 टन/एकड़।

भण्डारण :

खुब अच्छी तरह सूखाये गये कंदों को छाँटकर हवादार जगह में रखते हैं। 4–5 महीने के काल में 20–25′ कंद सूख जाते हैं।

औषधीय एवं सगंधीय पौधों की खेती

सर्पगंधा

सर्पगंधा एपोसाइनेसी (Apocynaceae) कुल का पौधा है। सर्पगंधा की कई प्रजातियाँ होती हैं जिसमें राउभोलफिया सरपेनटिना (Rauvolfia serpentina) एवं राउभोलफिया टेट्राफाइलस (Rauvolfia tetraphyllus) प्रजाति के पौधों को औषधीय पौधों के रूप में उगाया जाता है। सर्पगंधा के जड़ औषधि के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके पौधें की ऊँचाई 30 से 75 सेंटीमीटर तक की होती है। इसमें 10–15 सेंटीमीटर लम्बाई के हरे चमकीले रंग के पत्ते होते हैं। पत्ते 3–4 के गुच्छे में औवलौंग आकार के तथा अग्रभाग नूकीले होते हैं। इसमें उजले अथवा गुलाबी रंग के गुच्छे में फूल निकलते हैं। इसमें गोलाकार छोटे–छोटे गहरे बैंगनी अथवा काले रंग के फल लगते हैं जिसे ड्रूप (Drupe) कहा जाता है।

इस पौधे के नर्म जड़ से सर्पेन्टीन नामक दवा निकाली जाती है। इसके अलावा जड़ में रेसरपीन, सरपेजीन, रौलवेनीन, टेटराफीर्लीन इत्यादि अल्कलाइड भी होते हैं।

औषधीय उपयोग

1. स्थानीय लोग इसे सांप काटने पर उपचार के रूप में प्रयोग में लाते हैं।
2. गाँव में औरतें इसका उपयोग बच्चों को सुलाने में करती हैं क्योंकि इसमें सुस्ती लाने (Sedative) का गुण होता है। प्रसव काल में भी इसका उपयोग किया जाता है।
3. मानसिक रोगी को रिलैक्स करने के लिए इसे दिया जाता है। इससे रोगी शांत हो जाता है।
4. यह रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) को कम करता है।
5. जड़ के निचोड़ (Extracts), पेचिस तथा हैजा (Diarrhoea एवं dysentry) में इस्तेमाल होता है।
6. पेट दर्द तथा पेट के कीड़े को मारने के लिए गोलमीर्च के साथ जड़ का काढ़ा बनाकर दिया जाता है।

जलवायु : यह एक छाया पसंद पौधा है इसलिए आम, लीची एवं साल पेड़ के आस–पास प्राकृतिक रूप से उगते हुए देखा जाता है। झारखंड के सारंडा वन (सिंहभूम) एवं बीरवुरू वन (हजारीबाग) में काफी पाया जाता है। व्यवसायिक रूप में मुख्य रूप से यह उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरला, कर्नाटक एवं महाराष्ट्र से आपूर्ति की जाती है। यद्यपि यह छाया पसंद पौधा है लेकिन इसकी खेती खुले में भी की जा सकती है। इसकी खेती उष्ण एवं समशीतोष्ण (Tropical and Sub-tropical) जलवायु में की जा सकती है। 10 डिग्री सेंटीग्रेड से 38 डिग्री सेंटीग्रेड तक का तापक्रम बढ़वार के लिए अच्छा होता है। जून से अगस्त तक वर्षा पर्याप्त होनी चाहिए। 1200–1800 मिलीमीटर तक वर्षा वाले क्षेत्र में इसकी खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है। जाड़े के दिनों में झारखण्ड क्षेत्र में पौधों से पत्तियाँ गिर जाती हैं।

प्रसारण – सर्पगंधा का प्रसारण बीज द्वारा, तना कलम एवं जड़ कलम द्वारा किया जा सकता है।

बीज द्वारा : इस विधि में नर्सरी में बिचड़ा तैयार करते हैं। इसके लिए ऊँचा नर्सरी बनाते हैं। बीज की बुआई वर्षा के आरंभ में (मई–जून) में करते हैं तथा रोपाई अगस्त माह में करते हैं। एक हेक्टेयर के लिए 8–10 किलो बीज की आवश्यकता होती है। बोआई के पहले बीज को पानी में 24 घंटा फुला लेने पर अंकुरण अच्छा होता है। बीज अंकुरण कम (15–30 प्रतिशत) होता है तथा 3–4 सप्ताह समय लगता है। नर्सरी में बीजों को कतार से कतार 20–25 सेंटीमीटर के फासले पर 2 सेंटीमीटर गहरे कुंड में 2–5 सेंटीमीटर की दूरी पर गिराते हैं। दो माह के बाद तैयार बिचड़े को (10–12 सेंटीमीटर के होने पर) 45 सेंटीमीटर–50 सेंटीमीटर की दूरी पर रोपाई करते हैं।

कलम द्वारा : कलम जड़ अथवा तना दोनों से लिया जा सकता है। जड़ से कलम के लिए पेंसिल मोटाई के 2.5 से 5 सेंटीमीटर लम्बाई के छोटे–छोटे टुकड़े कर लेते हैं। इसे 5 सेंटीमीटर की गहराई पर पौधशाला में लगाते हैं। तीन सप्ताह बाद कल्ले आने पर तैयार खेत में रोपाई करते हैं।

तना से पौधा तैयार करने के लिए 15–20 सेंटीमीटर पेंसिल मोटाई के कलम बनाते हैं। हरेक कलम में 2–3 नोड (गाँठ) रहना जरूरी है। कलम को पौधशाला में लगाते हैं। 4–6 सप्ताह में जड़ युक्त कटिंग को तैयार खेत में रोपाई करते हैं। जड़–तना का कुछ हिस्सा को (Collar portion) भी रखते हैं।

खाद की मात्रा : खेत को मई माह में जोताई करते हैं। वर्षा आरंभ होने पर गोबर की सड़ी खाद 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर देकर मिट्टी में मिला दें। लगाते समय 45 किलो नाईट्रोजन, 45 किलो फॉसफोरस तथा 45 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से दें। नाइट्रोजन की यही मात्रा (45 किलो) दो बार अक्टूबर एवं मार्च में दें।

निकाई-गुड़ाई एवं सिंचाई : कोड़ाई कर खर–पतवार निकाल दें। जनवरी माह से लेकर वर्षा काल आरंभ होने तक 30 दिन के अंतराल पर तथा जाड़े के दिनों में 45 दिन के अंतराल पर सिंचाई दें।

कटाई एवं उपज : सर्पगंधा डेढ़ से दो वर्ष की फसल है। जाड़े के दिनों में जब पत्तियाँ झड़ जाती है तब जड़ को सावधानी पूर्वक उखाड़ना चाहिए। पौधों को छोड़ देने पर उपज बढ़ जाती है। तीन साल के पौधे में अधिकतम उपज होता है। उखाड़ते समय जड़ से छिलका नहीं हटना चाहिए। जड़ को 12–15 सेंटीमीटर टूकड़े में काटकर सूखा लिया जाता है। सूखने पर 50–60 प्रतिशत वजन की कमी हो जाती है। औसत उपज 100 किलो प्रति हेक्टेयर होती है। बिक्री दर 70–80 रूपये प्रति किलो है। लगभग 40–50 हजार तक की आमदनी एक हेक्टेयर क्षेत्रफल से हो सकती है।

अश्वगंधा **Withania somnifera** (*Solanaceae*)

अश्वगंधा Solanaceae कुल का पौधा है। अश्वगंधा कम लागत से होनेवाला एक बहुमुल्य औषधीय पौधा है। मुख्य रूप से यह शक्तिवर्द्धक औषधि है। शक्तिवर्द्धक होने के कारण इसका नाम ''अश्व'' से है। पौधे के कच्चे जड़ से ''अश्व'' जैसे गंध आती है इसलिए इसे अश्वगंधा कहते हैं। अश्वगंधा को वीन्टरचेरी भी कहते हैं। यह एक नगदी फसल है तथा 35000–40000 हजार रूपया प्रति हेक्टेयर की दर से आमदनी छः महीने में प्राप्त किया जा सकता है।

अश्वगंधा एक झाड़ीदार 2–3 फीट की ऊँचाई का बहुशाखीय, काँटा रहित पौधा है। एक स्वस्थ पौधे में लगभग 30 सेंटीमीटर लम्बी, मुलायम तथा कड़वी जड़ पायी जाती है। मुख्य रूप से जड़ को औषधि के रूप में प्रयोग करते हैं। वैसे पत्तियों तथा बीज का उपयोग भी औषधि के रूप में होता है। इस पौधे के तने रोयेंदार, हल्के हरे तथा जड़ें मोटी एवं मुसलाधार होती हैं। पत्ते 6–8 सेंटीमीटर लम्बे अंडाकार होते हैं।

अश्वगंधा की जड़ों में 13 प्रकार के एल्कोलाइड पाये जाते हैं। जिसमें विथेफेरिन–ए, विथेनोलीड विथानीन, टोरीन, आसोवलीन, विदाखमिन तथा सोमेनीन प्रमुख हैं।

औषधीय उपयोग

1. सर्दी के दिनों में इसकी जड़ को चूर्ण बनाकर दूध के साथ सेवन करने से शारीरिक ताकत बढ़ता है।
2. इसके सेवन से हिमोग्लोबिन एवं लाल रक्तकण की मात्रा बढ़ती है।
3. इसकी जड़ों को कामोद्दीपक के रूप में सेवन करने की सलाह वैद्य देते हैं।
4. यह खाँसी में भी काम आता है। इसके लिए पत्तियों को पानी में उबालकर सेवन किया जाता है।
5. यह गठिया एवं जोड़ों का दर्द तथा शरीर के सूजन में बहुत उपयोगी है।
6. कैंसर में भी यह औषधी कारगर सिद्ध हो रहा है।
7. अश्वगंधा के पत्तियों का लेप जोड़ों के सूजन के उपचार के लिए किया जाता है।
8. कमर एवं कूल्हों के दर्द में इसके जड़ों का उपयोग किया जाता है।
9. यह ''मूड'' बनाता है तथा चिंता को दूर करता है।
10. मानसिक बीमारी में भी इसका उपयोग होता है।
11. यह जीवाणुनाशक है एवं शरीर का प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाता है।
12. यह पेशाब बढ़ाता है।

अश्वगंधा की खेती राजस्थान के जावद एवं पश्चिम मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले के मनास नीगच क्षेत्र में लगभग 5000 हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है। झारखण्ड के गर्म क्षेत्र गिरिडीह, कोडरमा, दुमका, देवघर, गढ़वा, गुमला इत्यादि इसकी खेती के लिए उपयुक्त हैं।

जलवायु : इसके लिए गर्म जलवायु की आवश्यकता है। न्यूनतम तापक्रम 7–8 डिग्री सेंटीग्रेड से नीचे नहीं जाना चाहिए। इसकी खेती के लिए 600–800 मिलीमीटर वर्षा उपयुक्त है। तापक्रम 20 डिग्री से 35 डिग्री सेंटीग्रेड तक होने से अच्छी उपज मिलती है। जाड़े के दिनों में वर्षा होने से जड़ का विकास समुचित होता है।

मिट्टी : अश्वगंधा की खेती हेतु बालूई दोमट एवं हल्की लाल मिट्टी उपयुक्त है। जहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं है तथा फसल उगाना कठिन है वहाँ इसकी खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है। मिट्टी की अम्लीयता 7.5 से 8.0 के बीच होना चाहिए। अम्लीय मिट्टी में चूना का प्रयोग लाभदायक होगा।

खेत की तैयारी : अश्वगंधा में कम खाद देने की आवश्यकता होती है। खेत की जुताई के बाद 20–30 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद 15–10 किलो नाइट्रोजन, 25 किलो स्फूर प्रति हेक्टेयर देने से उपज में वृद्धि होती है। गर्मी में जुताई करना लाभदायक होता है। वर्षा ऋतु में खेत को खाली छोड़ते हैं। जब दो तिहाई वर्षा पूरी हो जाय तो बुआई करनी चाहिए। एक हेक्टेयर के लिए 5–7 किलो बीज की आवश्यकता होगी। बीज की बुआई मेढ़ पर 20–25 सेंटीमीटर के फासले पर करते हैं। बुआई के लिए 2–3 सेंटीमीटर गहरा नाली बनाते हैं तथा बीज के साथ बारीक गोबर मिलाकर बुआई करते हैं। बुआई के बाद बीज को हल्की खाद एवं मिट्टी से ढंक दें। सामान्य रूप से 8–10 दिनों में अंकुरण हो जाता है। 25–30 दिन के बाद घने पौधे को निकाल देते हैं। प्रति वर्ग मीटर में 25–30 पौधा रखते हैं। दो बार निकाई–गुड़ाई तथा 1–2 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। बीज को पौधशाला में बुआई कर बिचड़ा भी तैयार किया जाता है। इसे 20 से.मी. x 15 से.मी. के फासले पर रोपाई करते हैं।

अश्वगंधा की डब्ल्यू.एस.आर., जवाहर अश्वगंधा–20 एवं अश्वगंधा–134 उन्नत प्रजाति है। अश्वगंधा–134 अगात प्रजाति है जो 160–170 दिन में तैयार हो जाती है।

फसल कटाई : जुलाई में बोई गयी फसल नवम्बर में फूलने लगती है। जड़ें 150–180 दिन में तैयार हो जाती है। जब पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ जाय एवं फल लाल हो जाय तब फसल परिपक्व माना जाता है। जड़ों की खोदाई जनवरी माह में की जाती है। तना को काटकर अलग कर देते हैं। जड़ को अच्छी तरह से साफ कर 8–10 सेंटीमीटर के टुकड़ों में काटकर सूखा लिया जाता है। ज्यादा मोटाई वाली जड़े अच्छी एवं कम मोटाई वाली जड़ें निम्न कोटि के मानी जाती हैं।

इस प्रकार उन्नत खेती से लगभग 800–1000 किलो जड़ें एवं 40–60 किलो बीज प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है। जड़ें लगभग 60–70 रूपया प्रति किलो बिक जाता है।

सफेद मूसली (Chlorophytum borrivillianum)

सफेद मूसली Liliaceae कुल का पौधा है। सफेद मूसली एक कंदीय फसल है जिसे किसी भी कारण से हुई कमजोरी को दूर करने में उपयोग किया जाता है। झारखण्ड के जंगलों में यह कहीं–कहीं पाया जाता है। इसका उपयोग वात एवं पित्त के शमन हेतु, चेहरे पर निखार लाने, खाँसी, अस्थमा (दमा), बवासीर, चर्मरोगों, पीलिया, पेशाब संबंधी रोगों, ल्युकोरिया आदि के उपचार के लिए भी किया जाता है। मधुमेह, यौनशक्ति एवं बलवर्धन हेतु भी यह काफी प्रभावी सिद्ध हुआ है।

दिल्ली के खारी–बावली के साथ–साथ इंदौर, अहमदाबाद, मुम्बई, हैदराबाद में सफेद मूसली के बड़े बिक्री केन्द्र है। समाज के विशेष वर्गों में पौष्टिक आहार तथा फूड सप्लीमेंट के रूप में यह प्रयुक्त हो रहा है। देश एवं विदेशों में इसकी माँग काफी है।

किस्म : सफेद मूसली की कई किस्में देश में पाई जाती है। लेकिन क्लोरोफाइटम बोरीविलिएनम का उत्पादन अधिक होता है। इसका छिलका उतारना भी आसान है। इसमें पाये जाने वाले उपयोगी औषधीय तत्वों की मात्रा भी दूसरी किस्मों से अधिक होती है। इस किस्म में ऊपर से नीचे तक जड़ों या ट्युवर्स की मोटाई प्रायः एक समान होती है यानी वेलनाकर। एक साथ कई ट्युवर्स (2–50) गुच्छे के रूप में पाई जाती है जो ऊपर से डिस्क या क्राउन से जुड़ी रहती है।

जलवायु : मूलतः गर्म तथा आर्द्र प्रदेशों का पौधा है। अतः झारखण्ड के सभी जिलों में इसकी खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है।

भूमि : कंदीय फसल होने के कारण सही विकास के लिए भूमि को नर्म होना चाहिए परन्तु उत्पादन की दृष्टि से रेतीली दोमट मिट्टी, हल्की लाल मिट्टी इसके विकास के लिए उपयुक्त पाई जाती है। मिट्टी का पी.एच. 6.5–8.0 होना चाहिए। जल निकास की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए तथा भूमि में जीवश्म की पर्याप्त मात्रा रहनी चाहिए। उत्पादन एवं गुणवत्ता की दृष्टि से एम.डी.एच.–वायो 13 किस्म अच्छी है।

खेत की तैयारी : सफेद मूसली 8–9 महीने की फसल है जिसे मौनसून में लगाकर फरवरी–मार्च में खोद लिया जाता है। अच्छी खेती के लिए यह आवश्यक है कि खेतों को गर्मी में गहरी जुताई की जाय। अगर संभव हो तो हरी खाद के लिए ढ़ैचा, सनई, ग्वारफली बो दें। जब पौधों में फूल आने लगे तो काटकर खेत में डालकर मिला दें। गोबर की सड़ी खाद 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से अंतिम जुताई में मिला दें। खेतों में बेड्स एक मीटर चौड़ा तथा एक फीट ऊँचा बनाकर 30 सेमी. की दूरी पर कतार बनाते हैं। जिसमें 15 सेमी की दूरी पर पौधे को लगाते हैं। बेड्स बनाने के पूर्व 300–350 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से नीम या करंज की खल्ली मिला दें।

बीज की मात्रा : व्यवसायिक खेती के लिए ट्युवर्स की जरूरत होती है। डिस्क या क्राउन से लगी ट्युवर्स या फींगर को डिस्क के कुछ भाग के साथ काट लिया जाता है। कई बार एक–एक ट्युवर्स अलग की जाती है, कभी 2–3 फींगर साथ रखते हैं। यही डिस्क सहित कटे ट्युवर्स ही बीज के रूप में व्यवहार किए जाते हैं। प्रायः एक ट्युवर का वजन 10–20 ग्राम होता है और एक हेक्टेयर के लिए 10 क्विंटल बीजों की जरूरत पड़ती है। वर्तमान में इनकी दरें 300 रूपये प्रति किलो है।

बीज उपचार एवं लगाने के तरीके : जैविक विधि में गोमुत्र एवं पानी (1:10) में 1 से 2 घंटे तक ट्युवर्स को डुबोकर रखा जाता है। रासायनिक विधि में वेविस्टीन के 0.1 प्रतिशत घोल में ट्यूबर्स को उपचारित किया जाता है। बुआई के लिए गड्ढे बना लिए जाते हैं। गड्ढे की गहराई उतनी होनी चाहिए जितनी बीजों की लम्बाई हो। बीजों का रोपन इन गड्ढों में कर हल्की मिट्टी मिट्टी डालकर भर दें।

सिंचाई एवं निकाई-गुड़ाई : रोपाई के बाद ड्रिप सिंचाई द्वारा पटा दें। बुआई के 7 से 10 दिन के अंदर यह उगना प्रारंभ हो जाता है। उगने के 75–80 दिन तक अच्छी प्रकार बढ़ने के बाद सितम्बर के अंत में पत्ते पीले होकर सुखने लगते हैं तथा 100 दिन के उपरांत पत्ते गिर जाते हैं। इसी तरह से पौधों को छोड़ दिया जाता है फिर फरवरी–मार्च में जड़े उखाड़ी जाती है। फसल के उगने के बाद (20–25 दिन) बायोजाइम क्रॉप प्लस 1 मिली.1 लीटर पानी मे या बायोजाइम ग्रैनुअल (20–30 किलो प्रति हेक्टेयर) देने से अच्छे परिणाम मिलते हैं।

मूसली बरसात में लगाई जाती है। नियमित बारिस में सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती। अनियमित मौनसून में 10–12 दिन में एक सिंचाई दें। अक्टूबर के बाद 20–21 दिनों पर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। नमी बनाए रखने के लिए मल्चिंग भी किया जाता है। मूसली उखाड़ने के पूर्व तक खेतों में नमी बनाए रखें।

हारवेस्टिंग : जबतक मूसली का छिलका कठोर न हो जाय तथा इसका सफेद रंग बदलकर गहरा भूरा न हो तबतक जमीन से नहीं निकालें। मूसली को उखाड़ने का समय फरवरी के अंत से मार्च तक है।

खोदने के उपरांत इसे दो कार्यों हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

1. बीज हेतु रखना या बेचना
2. इसे छीलकर सूखा कर बेचना

बीज के रूप में रखने के लिए खोदने के 1–2 दिनतक कंदों को छाया में रहने दें ताकि अतिरिक्त नमी कम हो जाय फिर कवकरोधी दवा से उपचारित कर रेत के गड्ढों, कोल्ड एयर, कोल्ड चैम्बर में रखें।

सुखाकर बेचने के लिए फिंगर्स को अलग–अलग कर चाकू अथवा पीलर को सहायता से छिलका उतार कर धूप में 3–4 दिन रखा जाता है। अच्छी प्रकार सूख जाने पर बैग में पैक कर बाजार भेज देते हैं।

उपज : साधारणतः बीज की तुलना में गीली मूसली 6–7 गुणा प्राप्त होती है। अतः प्रति हेक्टेयर 10 क्विंटल बीज से 60–70 क्विंटल गीली मूसली प्राप्त होगी।

अच्छा यह होगा कि जो लम्बी और बड़ी ट्युबर्स है उन्हें छीलकर सूखा लिया जाय और पतली एवं छोटी ट्युवर्स को बीज के रूप में काम में लाया जाय। इस प्रकार एक हेक्टेयर में 60 क्विंटल गीली मूसली में 10 क्विंटल बीज के लिए रखकर शेष 50 क्विंटल सूखा दें ताकि 80 प्रतिशत सूख कर 10 क्विंटल सुखी मूसली प्राप्त हो।

बिक्री : सूखी मूसली के प्रकार एवं बिक्री दर :

'अ' श्रेणी – सही प्लांटिंग मैटिरियल से अच्छी तरह उगाई गई मूसली जो लम्बी, मोटी, सफेद एवं कड़क हो उसके मूल्य 800 रूपये प्रति किलो मिलते हैं।

'ब', श्रेणी–इस श्रेणी का मूसली 'अ' श्रेणी की मूसली से कम या हल्की होती है जिसका मूल्य 600 रूपये तक मिलता है।

'स', श्रेणी–इस श्रेणी की मूसली काफी छोटी, पतली तथा भूरे रंग की होती है जो जंगलों से अपरिपक्व अवस्था में उखाड़ी जाती है। मूल्य 100–100 रू. प्रति किलो की दर से मिलता है।

'लाभ-हानि' प्रति हेक्टेयर

खेत की तैयारी (3 जुताई), 1250 रू. प्रति जुताई	–	3750 रूपये
हरी खाद उगाकर खेत में मिलाना	–	7500 रूपये
गोबर की सड़ी खाद 25 ट्राली, 600 प्रति ट्राली	–	15000 रूपये

बेड एवं मेड़ बनाने की लागत	–	3600 रूपयें
दवा – टॉनिक	–	15000 रूपये
निकाई–गुड़ाई (2 बार)	–	7500 रूपये
बीज की लागत 10 क्विंटल (300/– प्रति किलो)	–	300000 रूपये
बीज तैयार करने, लगाने का खर्च	–	7500 रूपये
हारवेस्टिंग, साफ करना	–	12500 रूपये
छीलने, सूखाने आदि पर (100 रू. प्रति किलो सूखी मूसली पर 10 क्विंटल)	–	100000 रूपये
विविध खर्च	–	5000 रूपये
कुल	**-**	**4,75,350 रूपये**
10 क्विंटल सूखी मूसली (500/– रू. प्रति किलो)	–	500000 रूपये
10 क्विंटल गीली मूसली (300/– रू. प्रति किलो)	–	300000 रूपये
कुल	**-**	**8,00,000 रूपये**
लाभ प्रति हेक्टेयर – रू. 800000 – 4,75,350	–	3,25,000 रूपये

नींबू घास (Cymbopogon citratus)

मुख्य रासायनिक अवयव :

सिंडाल : अल्फा आयोनोन – गंध द्रव्य एवं सुगंध रसायन

बीटा आयोनोन – विटामिन ए

उपयोग

1. औषधियों के निर्माण में
2. उच्च कोटि के इत्र बनाने में
3. विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों में
4. साबुन निर्माण

उन्नत प्रभेद : प्रगति, प्रमाण, कृष्णा, जम्मु ग्रास, सी.के.भी. 25

मिट्टी : लगभग सभी प्रकार की भूमियों में इसकी खेती की जा सकती है। दोमट उपजाऊ मिट्टी अधिक अच्छी होती है इसके अतिरिक्त यह कम वर्षा वाले लेटराइट मिट्टीयों, कम उपजाऊ एवं बारानी क्षेत्रों में भी उपजाई जा सकती है।

जलवायु : उष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु उपयुक्त है। उच्च तापमान आर्द्र, पर्याप्त धूप एवं 2000–2500 मिमी. वर्षा सालभर में।

प्रसार विधि : बीज/स्लिप

बीज दर : 4–6 किलो बीज प्रति हेक्टेयर
25000 स्लिप्स प्रति एकड़

बीज बुआई का समय : नर्सरी : अप्रैल–मई

प्रत्यारोपन : जून–जुलाई

रोपाई की दूरी : 40 x 15 सेमी.
60 x 45 सेमी.

खाद, उर्वरक एवं उसका प्रयोग

कम्पोस्ट : 20 टन प्रति हेक्टेयर

नेत्रजन : फॉस्फोरस : पोटाश 150 : 40 : 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

खेत तैयारी का समय : कम्पोस्ट, स्फुर एवं पोटाश की पूरी मात्रा एवं नेत्रजन का 1/3 (एक तिहाई) प्रयोग करें। नेत्रजन की शेष बची मात्रा का दो बराबर भागों में बाँटकर प्रत्येक फसल कटाई के बाद भुरकाव विधि से खेतों में प्रयोग करें।

जल प्रबंधन : रोपाई के पश्चात भूमि गीली रहनी चाहिए। गर्मियों में 10 दिनों के अन्तराल पर एवं सर्दियों में 15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

निकाई-गुड़ाई : 1–2 बार (खर–पतवार नाशक पहले साल में 250 ग्राम ऑक्सीफज्यूरोफेन या डयोरान प्रति एकड़ बुवाई के पूर्व खेत में मिला देना चाहिए)

फसल चक्र : 1. नींबू घास पाँच वर्षीय फसल है (उर्वरक भूमि)
2. तीन वर्षीय फसल (अनुपजाऊ भूमि)

फसल की कटाई : 1. फसल लगा देने के बाद पाँच वर्ष तक 60 से 70 दिनों के अन्तराल पर कटाई की जाती है। प्रति वर्ष 4 से 5 कटाई की जा सकती है।
2. अनुपजाऊ भूमि में तीन वर्ष तक कटाई की जा सकती है।
3. पौधों की कटाई भूमि से 10–15 सेमी. ऊपर से करनी चाहिए।

प्राप्त होने वाले तेल की मात्रा

100 किलोग्राम तेल प्रति वर्ष प्रति एकड़ भूमि की चार कटाईयों से प्राप्त की जा सकती है। आने वाले वर्षों में यह मात्रा बढ़ती जाती है।

फसल सुरक्षा

1. **शूट फ्लाई** : फोरेट–10 जी. का 4–5 किलोग्राम या कार्बोफ्यूरान–3 जी. को 4–5 किलोग्राम प्रति एकड़
2. **दीमक** : नीम की खली या फूराडॉन मिट्टी में या स्लिप को क्लोरपाइरीफॉस 0.1 प्रतिशत से उपचारित कर लगाना।
3. **श्वेत मक्खी** : फास्फामिडाइन (250 मिली. प्रति एकड़) या मोनाकोटोफॉस (0.05 प्रतिशत)
4. **खेती से लाभ** : कुल लागत 13600 रू.
प्रत्येक साल : 11200 रू.
बिक्री मूल्य : 150 रू. प्रति किलोग्राम तेल।
कुल उपज : 39450 रू.
प्रति एकड़ प्रति वर्ष लाभ : 12350 रू.

पत्तियों से तेल निकालना : आसवन विधि से तेल निकाला जाता है। वाष्प आसवन या जल आसवन विधि में फसल को काटकर खेत में छायादार स्थान पर रखा जाता है। मुरझाये लेमन घासव/जावा घास/पामा रोजा घास को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर आसवन हेतु आसवन टैंक में डालते हैं।

जावा घास (Cymbopogon nardus)

मुख्य रासायनिक अवयव एवं उपयोग

सीट्रोनेलाल (Citronellal) जीटेनिओल – इसके तेल का उपयोग मुख्यतः खुशबू के लिए किया जाता है। जैसे – सौंदर्य प्रसाधन में, साबुन में एवं मच्छर भगाने के लिए।

उन्नत प्रभेद – बायो – 13, मंजुषा, मंदाकिनी, जोर लैब सी.2, आर.आर.एल. (बी.)–15।

मिट्टी – पी.एच 5.8–8.5 बलई दोमट मिट्टी जो जल जमाव से मुक्त हो।

जलवायु – मध्यम तापक्रम एवं नमी, वार्षिक वर्षा 2000–2500 मिमी.।

प्रसार विधि – स्लिप।
55–60 हजार स्लिप/हे.।

लगाने का समय – जून–जुलाई

रोपाई की दूरी – 30 सेमी. x 45 सेमी (पौधा x लाइन)

खाद एवं उर्वरक – गोबर की सड़ी खाद 100–200 क्विं/हे.
नेत्रजन : स्फूर : पोटाश 200:80:40–80 कि. ग्राम/हे.

क. खेत तैयार करते समय गोबर की खाद, स्फुर एवं पोटाश की पूरी मात्रा का प्रयोग करें।

ख. नेत्रजन की मात्रा को चार भागों में बाँटकर, प्रत्येक फसल कटाई के बाद भुरकाव विधि द्वारा खेतों में प्रयोग करें।

जल प्रबंधन : 4–6 सिंचाई, आवश्यकतानुसार।

फसल चक्र एवं अन्तर्वर्ती फसलें

यह फसल एक बार लगाने से पाँच वर्षों तक उत्पादन देती है, अतः इसमें पपीता एवं केला अन्तर्वर्ती फसलों के रूप में ली जा सकती है।

खर पतवार प्रबंधन : 2–3 निकाई–गुड़ाई द्वारा।

कीट एवं रोग प्रबंधन : फ्युराडान 10–12 कि.ग्राम/हे. डाइथेन एम–45 (0.3 प्रतिशत घोल) का छिड़काव करें।

कटनी एवं दौनी

रोपाई के 8–9 महीने बाद जमीन से 10–15 सेमी छोड़कर प्रथम कटाई करें। प्रथम कटाई के 3–4 महीनों के अन्तराल पर पुनः कटाई करते जायें। कटाई के उपरान्त लगभग 25 घंटे तक फसलों को छायादार जगह में सूखने दें एवं उसके बाद आसवन विधि द्वारा तेल निकाल कर भण्डारित करें।

पामा रोजा (Cymbopogon Martinii)

मुख्य रासायनिक अवयव एवं उपयोग

जिरानिओल (Geraniol) जिरोनाइल एसीटेट (Geronyl acetate) लिनाइल।

उपयोग : क. सौंदर्य प्रसाधन, साबुन एवं सुगन्धित तम्बाकु बनाने में उपयोग किया जाता है।

ख. इसके तेलों का उपयोग मच्छर भगाने वाले मलहम एवं कई प्रकार की दवाईयों में भी किया जाता है।

उन्नत प्रभेद : तृष्णा, तृप्त, आई.डब्लु 31243

मिट्टी : पी.एच.–6–8, अच्छी जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी, बेकार एवं सिमान्त जमीन पर भी खेती की जा सकती है।

जलवायु : उच्च तापक्रम, मध्यम नमी, वार्षिक वर्षा – 900–1500 मिमी.।

प्रसार विधि : बीज एवं स्लिप

बीज दर : 2–2.5 किग्रा. / हे.

बुआई का समय : नर्सरी–जून–जुलाई
प्रत्यारोपन–जुलाई–अगस्त

रोपाई की दूरी : 60 सेमी. x 60 सेमी.

खाद, उर्वरक एवं उसका प्रयोग

कम्पोस्ट – 100 क्विं / हे.

नेत्रजन : स्फुर : पोटाश क्रमशः 60:50:40 किग्रा. / हे. / वर्ष खेत तैयारी के समय कम्पोस्ट, स्फुर एवं पोटाश की पूरी मात्रा एवं नेत्रजन की एक तिहाई भाग का प्रयोग करें। नेत्रजन की शेष बची मात्रा को दो बराबर भागों में बाँटकर प्रत्येक फसल कटाई के बाद भुरकाव विधि से खेतों में प्रयोग करें।

जल प्रबंधन : प्रथम सिंचाई प्रत्यारोपन के साथ तथा फिर आवश्यकतानुसार

निकाई-गुड़ाई : 2–3 निकाई।

फसल चक्र एवं अर्न्वर्ती खेती

पामारोजा पाँच वर्षीय फसल है तथा इसकी खेती के साथ प्रथम वर्ष में अन्तर्वर्ती फसल के रूप में अरहर की फसल ली जा सकती है।

फसल सुरक्षा

कीट–व्याधियों का खास असर नहीं पड़ता है, परन्तु अधिक वर्षा होने से पत्र निगलन रोग से बचाव हेतु डाइथेन एम–45 या डाइथेन जेड–78 के 0.3 प्रतिशत घोल का लक्षणानुसार छिड़काव करें।

कटनी, दौनी एवं भण्डारण

फूल खिलने के 10–15 दिनों बाद, फसल को भूमि से 10–15 सेमी ऊपर से काटना चाहिए तथा जल वाष्प आसवन विधि द्वारा तेल निकाल कर भण्डारित करें।

उपज : घास – 300 – 400 क्विं./हे./वर्ष
तेल – 125 – 150 किग्रा./हे./वर्ष

लागत एवं आमदनी : घास – 45,000 – 50,000 रू./हे./वर्ष
सकल लाभ – 60,000–65,000 रू./हे./वर्ष
शुद्ध लाभ – 12,000 – 15,000 रू./हे./वर्ष

स्टीविया (Stevia rebandiana)

सामान्य अवस्था में 25–30 गुणा मीठा तथा एक्सट्रैक्ट के रूप में 300 गुणा शक्कर से मीठा होता है।

मूल स्थान – पेरूगुवे

विश्व में खेती – पेरूगुवे, जापान, कोरिया, ताइवान, अमेरिका

भारत में खेती – बंगलोर, पूणा, इन्दौर, रायपुर

गुण – कैलोरी रहित, पूर्णतया सुरक्षित, चीनी का विकल्प, मधुमेह में उपयोग, रक्तचाप फ्लेवर बढ़ाने, एन्टी वैकटिरियल।

जलवायु – अर्धआर्द्र तथा अर्धउष्ण किस्म की जलवायु उपयुक्त बढ़त के लिए प्रकाश की आवश्यकता। तापक्रम 10 डिग्री से. से 40 डिग्री से. तक।

मिट्टी – पी.एच. मान 6–8, अच्छी जल निकास वाली रेतीली दोमट मिट्टी।

रोपने की विधि – कलम से –15 सेमी लम्बी कलमों को काटकर पालिथिन की थैली में तैयार करना। कलमों को काटने के बाद पैक्लोबुटराजोल (10 पी.पी.एम.) के घोल में उपचारित करना।

रोपने का समय – फरवरी–मार्च

मेड़ों पर 6–8 इंच ऊँचे बेड्स 2 फीट चौड़ी पर कतार से कतार 16 इंच तक पौधे से पौधे 9 इंच एक बेड पर दो लाईन, एक एकड़ में 30 हजार पौधे।

उन्नत किस्में – एस.आर.बी. 123, पाँच कटाई, ग्लुकोसाईड – 8–12 प्रतिशत एस.आर.बी. 128 सन फ्रुट लि. पूना द्वारा विकसित 21 प्रतिशत ग्लुकोसाईड एस.आर.बी. 512 8–12 प्रतिशत ग्लुकोसाईड, चार कटाई प्रति वर्ष।

सिंचाई – नियमित रूप से प्रति सप्ताह एक बार ड्रिप विधि उपयुक्त।

निकाई-गुड़ाई – समय–समय पर फसल की निकाई तथा गुड़ाई। खर पतवार पर नियंत्रण।

खाद – गोबर या केंचुआ खाद – 300 क्विंटल प्रति हेक्टेयर एन.पी.के. : 100 : 50 : 50 किग्रा. प्रति हेक्टेयर

फसल की कटाई – फसल लगाने के 4 माह बाद प्रथम कटाई – पत्तों की तुड़ाई या पौधे के जमीन 2–3 इंच ऊपर काट लिए जाते हैं। पत्तों की तुड़ाई कर ड्रायर में सूखा लेते हैं या छाया में। दूसरी या तीसरी कटाई 3 महीने के उपरांत।

फूलों की कटाई – फूलों को समय–समय पर तोड़ कर हटा देना चाहिए। रोपने के 35, 45, 60, 75 एवं 85 दिनों के उपरांत तथा हारवेस्टिंग के समय फूलों को तोड़ना चाहिए।

विपणन – पत्ते के रूप में या पाउडर के रूप में तथा एक्सट्रैक्ट के रूप में भी।

रोग – लीफ स्पाट – बोरेक्स का छिड़काव कीड़ों के लिए नीम तेल या गोमुत्र।

आय-व्यय प्रति हेक्टेयर

स्थाई खर्च :

भूमि की तैयारी तथा वेड्स बनाना	12,500/–
ड्रिप सिंचाई/छिड़काव सिंचाई	1,12,500/–
पौधा–75000 (5 रूपये प्रति पौधा)	3,75,000/–
नेट हाउस (2.50 रूपया प्रति पौधा)	1,87,500/–
आकस्मिक खर्च	50,000/–
कुल खर्च	**8,37,500/-**

उत्पादन लागत :

खाद, कृषिकरण	75,000/–
बिजली	25,000/–
देखभाल, मजदूरी/वेतन	75,000/–
ड्रिप सिंचाई, नेट हाउस का 20 प्रतिशत/वर्ष	
प्लास्टिक मेटेरियल का 20 प्रतिशत/वर्ष	75,000/–
स्थाई निवेश पर ब्याज (12 प्रतिशत)	81,000/–
कुल खर्च	**3,91,000/-**

कुल प्राप्तियाँ – 8750 कि.ग्रा. सूखे पत्ते 100/– प्रति किलो 8,75,000/–

लाभ प्रतिवर्ष – लगभग रू. 5 लाख प्रति हेक्टेयर

काली हल्दी (Curcuma caesia)

काली हल्दी Zingiberaceae कुल का पौधा है। यह पौधा विशेषतया पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश व बिहार के वनों में जहाँ नमी अधिक होती है, प्राकृतिक रूप से उगता पाया जाता है। सामान्य हल्दी के पत्तों की तरह इसके पत्ते होते हैं। इन पत्तों की मध्य में काली धारियाँ होने से काली हल्दी का पौधा पहचाना जा सकता है। यह एक वर्षीय पौधा, जिसका कंद सुगंधित धूसरित वर्ण का एवं चक्राकार कड़ों से युक्त होता है यह कंद अन्दर से धूसर नील वर्ण का अत्यन्त कड़ा एवं श्रृंग के समान हाता है। इसकी सुगंध कपूर के समान होती है। काली हल्दी का यह पौधा अमर कंटक एवं पाताल कोट में पाया जाता है। इसका अधिक दोहन होने के कारण यह प्राकृतिक रूप से नष्ट होता जा रहा है। इसकी खेती पश्चिम बंगाल के कुछ क्षेत्रों में की जाती है एवं इसका उपयोग सामान्य हल्दी की तरह यहां पर करते हैं।

औषधीय गुण

सौन्दर्य प्रसाधनों में, इसका उबटन पसीना लाने में, आदिवासी लोग इसका प्रयोग अनेक रोगों के निराकरण के लिए करते हैं। चोट, मोच, अंदरूनी चोटों तथा दमा आदि के उपचार में करते हैं। मध्य प्रदेश के लोग इसको पवित्र मानते हैं तथा जिसके पास यह कंद होता है, उसको कभी भी धन की कमी नहीं होती, ऐसी धारणा है। इसके कंद प्राकृतिक कपूर के श्रेष्ठ स्रोत है। इसका उपयोग सुगंध उद्योग में किया जाता है।

खेती : उष्ण जलवायु नमी वाले क्षेत्रों में, वार्षिक वर्षा 1500 मिमी., किन्तु फसल वृद्धि के समय समान रूप से वर्षा होना ही बहुत उपयुक्त है।

दोमट तथा बलुई दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए अच्छी होती है, किन्तु जल निकास वाली दोमट मिट्टी अत्यन्त ही उपयुक्त है। चिकनी मिट्टी वाली भूमि में इसके कंदों की वृद्धि नहीं हो पाती है।

खेती की तैयारी : खेती की मिट्टी को दो–तीन जुताईयों से भुरभुरी कर लेना आवश्यक होता है इसके पश्चात ही रोपाई की जानी चाहिए।

रोपाई : कंदों द्वारा रोपाई की जाती है। मुख्यतया पुराने कंदों मे से अंकुरित नये कंदों का रोपण करना चाहिए। इनकी रोपाई 30 x 30 से.मी. की कतारों में जून–जुलाई माह में की जानी चाहिए।

खाद : प्रति हेक्टेयर भूमि में गोबर की खाद 120 क्विंटल डाली जाती है।

सिंचाई : यदि वर्षा अच्छी होती है तथा खेत में नमी बनी हुई है, तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती, किन्तु शरद ऋतु में एक दो सिंचाईयों की आवश्यकता पड़ सकती है।

निराई-गुड़ाई : खेत में कंदों के रोपण के कुछ सप्ताह पश्चात गुड़ाई करके खरपतवार निकाल देना चाहिए।

उपज : फसल की पत्तियाँ पीली पड़कर सूखने लगे तब फसल पककर तैयार हो गयी है, ऐसा समझना चाहिए (9–10 माह में)। इस समय खुदाई करके कंद निकाल कर, धोकर छाया में सूखा लेते हैं। फसल से प्राप्त छोटे कंदों को अगली फसल की बुवाई के लिए सुरक्षित रख लेते हैं, किन्तु सूखे कंदों का उपयोग सुगंधित तेल निकालने तथा विभिन्न औषधियों के निर्माण हेतु किया जाता है।

केमोमिल

केमोमिल के फूलों की खेती भारत में 300 वर्ष से बहुत छोटे पैमाने पर की जा रही है। पिछले 2–3 सालों में देश एवं विदेश में केमोमिल के फूलों की माँग बढ़ी है। इस समय 50–60 हेक्टेयर भूमि पर केमोमिल की खेती हो रही है जिससे प्रतिवर्ष 300–400 क्विंटल फूलों की पैदावार हो रही है।

केमोमिल की खेती किसी भी प्रकार की भूमि में, यहाँ तक की उसर जमीन जिसका पी.एच– 9.3 और जमीन जिसमें पानी रोकने की क्षमता अधिक हो सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस खेती के लिए उपोष्ण तथा शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त है।

नर्सरी तैयार करने की विधि

इसकी खेती पौध रोपन द्वारा की जाती है। सितम्बर–अक्टूबर माह में नर्सरी में बीज लगाते हैं। एक हेक्टेयर खेत में पौधे लगाने के लिए 750 वर्ग मीटर में 500 ग्राम बीज बोये जाते हैं। ये पौधे 6–8 सप्ताह में रोपाई लायक हो जाते हैं।

रोपाई : केमोमिल का खेत तैयार करने के बाद नर्सरी में पौधे उगाकर 30–30 सेमी की दूरी पर लगा दिए जाते हैं। पौधे लगाने के बाद तुरंत सिंचाई कर दें।

खेत की तैयारी करते समय 18–20 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद व एन.पी.के 60:50:30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। सिंचाई की उत्तम व्यवस्था जरूरी है। पूरी फसल लेने के लिए 6–7 बार पानी पटाना आवश्यक है।

पैदावार : फूलों की तोड़ाई फरवरी के दूसरी सप्ताह में शुरू होती है और यह प्रक्रिया अप्रैल के मध्य तक चलती है। उपरोक्त अवधि में फूलों की 5–7 बार तुड़ाई की जाती है एक आदमी दिन भर में 8–10 किलो ताजे फूल तोड़ लेता है। फूल तोड़ने के बाद तुरंत 1–2 से.मी. मोटी परत ऐसी जगह फैलाते हैं जहाँ पर्याप्त छाया हो। फूलों को बीच–बीच में चलाते रहना चाहिए ताकि इनमें हवा लगती रहे और सूखते रहें। 5–6 दिनों में फूल पूरी तरह सूख जाते हैं। प्रति हेक्टेयर 50–60 क्विंटल ताजा फूल प्राप्त होते हैं जो सूखने के बाद 10–12 क्विंटल रह जाते हैं।

केमोमिल के सूखे हुए फूलों को बाजार में बेच दिया जाता है। वैसे इसका भी तेल आसवन द्वारा निकाला जाता है। इसके सूखे हुए फूलों में तेल की मात्रा 0.3–0.5 प्रतिशत होती है।

लागत की शुद्ध लाभ (प्रति हेक्टेयर)

लागत (प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर)	–	रू. 25,000/–
उत्पादन	–	10 क्विंटल ड्राई फूल/हेक्टेयर
कुल आय	–	रू. 50,000/–
शुद्ध लाभ	–	रू. 25,000/–

शतावर

यह बहुवर्षीय आरोही लता जो एशिया, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में पायी जाती है। भारत में यह पौधा हिमालयन क्षेत्रों में पाया जाता है। मध्य प्रदेश में यह पौधा साल व मिश्रित जंगलों में पाया जाता है। तीन से पाँच ऊँटा फीट उचा क्षुप, लता जैसा, इसकी पतली शाखाओं पर बारीक पत्तियों जैसे दिखने वाली एक पर्वीय हरी सूई जैसी शाखायें, शाखाओं पर सीधे या टेढ़े काँटे होते हैं। पुष्प सफेद गुच्छों में, फल छोटे गोल हरे, पकने पर लाल इसके मूल कन्द जैसे, लम्बे गुच्छों में, जिनका उपयोग औषधि के रूप में होता है।

औषधीय गुण

इसके कन्द जैसे रसयुक्त मांसल मूल का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है जिनका प्रयोग बलवर्धक, सेक्स टॉनिक, स्त्रियों के लिये टॉनिक, ल्युकोरिया तथा एनीमिया के उपचार हेतु औषधियों, भूख न लगने तथा पाचन सुधारने हेतु टॉनिक, मानसिक तनाव से मुक्ति हेतु, दुग्ध बढ़ाने हेतु औषधि के रूप में होता है। शतावर के जड़ों के उपर पतली छिलका होती है छिलके को हटाने पर सफेद/दुधिया गुद्देदार मांसल जड़ प्राप्त होता है। जिसको सूखाने के बाद शतावर का सत चूर्ण प्राप्त होता है। यह पचने में भारी प्रभाव में शीतल औषधि है। यह रसायन गुण सम्पन्न दिव्य औषधि है। इसका चूर्ण 2–3 ग्राम प्रति दिन या 5–10 ग्राम हरा जड़ कूच कर दुध के साथ उबाल कर खाते हैं। यह माता या पशु के स्तन में दूध बढ़ाने में अधिक उपयोगी होता है। इसका प्रयोग पीपल एवं शहद के साथ करने से गर्भाशय का दर्द मिटता है। इससे स्त्री–पुरूष में काम वासना भी तीव्र हो जाती है। यह अनिद्रा में भी उपयोगी होता है। एक शतावरी के पौधा से 1–4 कि.ग्राम तक गीला जड़ मिलता है। इसकी खेती बहुत ही उपयोगी है। यह एक जन उपयोगी वनौषधीय है जो पारिवारिक औषधीय के रूप में पहचानी जाती है।

खेती के लिए उपयुक्त भूमि : बलुई दोमट मिट्टी अच्छी जल निकासी व्यवस्था, पानी ज्यादा न ठहरता हो ऐसी मिट्टी से कन्द खोदकर बिना क्षति के निकाले जा सकते हैं। काली मिट्टी वाली भूमि इसकी खेती के लिये प्रतिकूल होती है, क्योंकि ऐसी मिट्टी में जलधारण क्षमता अधिक होता है।

जलवायु : उष्ण, आर्द्र, जिन क्षेत्रों का तापमान 10–50 डिग्री सेल्सियस, वार्षिक वर्षा 250 से.मी. तक हो, ऐसी जलवायु खेती के लिये उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी : खेती के लिये मई–जून माह में वर्षा के पूर्व 2–3 बार जुताई कर लेनी चाहिये। इसमें प्रति एकड़ के दर से गोबर की सड़ी हुई खाद 10 टन मिला देनी चाहिये। एक जुताई वर्षा बन्द होने के पश्चात अगस्त माह में कर देनी चाहिए।

पौधे तैयार करना : 1 x 10 मीटर की क्यारियाँ नर्सरी में तैयार कर इसमें 3:1 क अनुपात में मिट्टी एवं गोबर की खाद मिलाकर क्यारियाँ भर देनी चाहिये। पौध बीजों द्वारा तैयार की जाती है। प्रति एकड़ पाँच किग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। मई में बीज की क्यारियाँ में बुवाई कर देनी चाहिए। लगभग अगस्त माह में पौध रोपाई के लिये तैयार हो जाती है।

सिंचाई : खेत में पौध लगाने के शुरूआत में एक सप्ताह में एक बार हल्की सिंचाई कर देनी चाहिये। पौधे बड़े होने के पश्चात एक–एक माह के अन्तर पर सिंचाई की जानी चाहिये।

फसल की प्राप्ति : प्रति रोपण के पश्चात जब पौधे पीले पड़ने लगें तब इसकी रसदार मांसल जड़ों की खुदाई कर लेनी चाहिए। इसी समय अगली फसल के लिये डीस्क अलग कर लेने चाहिये।

मूल को सूखाने की विधि : खोदकर निकाले गये रसदार मूल को साफकर अलग–अलग करके हल्की धूप में सूखाया जाता है। इन रसदार मूल को चीरा देकर उपर से छीलकर सूखाना चाहिये।

उत्पादन : प्रति एकड़ लगभग 350 क्विंटल गीली जड़ें प्राप्त होती है, जो सूखने के पश्चात केवल 35 क्विंटल रह जाती है।

बच (Acorus calamus)

साधारण परिचय

यह पौधा भारतवर्ष में मध्यप्रदेश, बिहार तथा हिमाचल प्रदेश के क्षेत्रों में पाया जाता है। मध्यप्रदेश के सतपुड़ा, सोनाघाटी, नर्मदा, विन्ध्य पठारी तथा मेकल आदि क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाता है। यह बहुशाखा युक्त व भूमिगत तने वाला होता है। इसकी पत्तियाँ रेखाकार से मालाकार नुकीली तथा मोटी होती है। इसके पुष्प हरे पीले वर्ण के जबकि फल गोल तथा लाल रंग के होते हैं। इसके पौधे नदी–नालों के किनारे तथा गीली दलदली भूमि पर उगते हैं।

औषधीय गुण

औषधि रूप में बच के प्रकंद (राइजोम) का प्रयोग होता है। राइजोम का तेल निकाल कर तेल का प्रयोग किया जाता है। वह तेल वायु रोग (गेस्ट्रिक), दस्त, खांसी, हिस्टीरिया, मूत्र एवं चर्म रोगों में प्रयुक्त होता है। आयुर्वेद में बच ब्राह्मी शंखपुष्पी ये तीन औषधि मन, मस्तिष्क एवं स्नायु के रोगों के लिए उत्तम है। इस औषधि के चूर्ण लेने से मन, मस्तिष्क एवं स्नायु के रोगों के लिए उत्तम है। इस औषधि के चूर्ण लेने से मन, मस्तिष्क की कमजोरी एवं स्नायविक रोग मिटता है, इसकी मात्रा आधा या एक ग्राम तक सीमित रखते हैं। एक ग्राम बच, दो ग्राम शंखपुष्पी एवं चार ग्राम ब्राह्मी को मिला कर तीन ग्राम प्रतिदिन मस्तिष्क विकार औषधीय के रूप में सेवन करते हैं। साधारण वयस्क के लिए बच की मात्रा 1/4 ग्राम से 1 ग्राम तक एवं बच्चें के लिए 1/8 ग्राम का बच चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

बच की खेती : उपयुक्त जलवायु उन क्षेत्रों में जहाँ वार्षिक वर्षा 70 से 250 से.मी. होती हो तथा 10 डिग्री से 38 डिग्री सेंण्टीग्रेड हो वह क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त है।

खेती की तैयारी : खेती के लिए दो–तीन बार जुताई करनी चाहिए। रोपाई से पूर्व भूमि को थोड़ी दल–दली बनायी जाये तो यह ज्यादा उपयुक्त होगा।

रोपाई : इसके भूमि जन्य प्रकण्द (राइजोम) को लगाया जाता है। इसके प्लान्टिंग मेटेरियल के लिए पुराने राइजोम का नमी वाली मिट्टी में दबाकर रखते हैं, अंकुरण फूटने पर इनको छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर इनका रोपण कर दिया जाता है।

प्रत्यारोपण : अंकुरित प्रकंदों का प्रत्यारोपण जुलाई–अगस्त माह में तैयार किये गये खेत में 30 x 30 से.मी. की दूरी पर तथा चार से.मी. गहराई में लगा दिया जाता है। प्रति हेक्टेयर 111000 पौधों की आवश्यकता होती है। प्रत्यारोपण के तुरन्त पश्चात सफाई करनी चाहिए।

सिंचाई : इसकी खेती के लिए पानी की अत्यधिक आवश्यकता होती है। वर्षा ऋतु के सिवाय अन्य दिनों में प्रत्येक 2–3 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई होनी आवश्यक है। दल–दली भूमि, नदी–नालों के किनारों पर जहाँ जल का भराव होता है, बच की खेती अच्छी होती है।

खाद : रोपाई के पूर्व जुलाई के समय खेत में 10 टन गोबर की खाद मिला दी जानी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई–गुड़ाई आवश्यकता अनुसार होती रहनी चाहिए। इससे फसल के अच्छे परिणाम मिलते हैं।

फसल प्राप्ति : बुवाई के 6–7 माह के बाद जब पत्तियाँ पीली पड़कर सूखने लगें, तब फसल पककर तैयार हो गयी हैं। इस समय राइजोम सहित पौधों को खोदकर या हल चलाकर निकाल लेना चाहिए। इसके बाद राइजोम

को पत्तियों से अलग कर लेना चाहिए।

फसल सूखाना : राइजोम को साफ कर (धोये बिना) छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर छांव में फैला दिया जाता है। इससे राइजोम में तेल की मात्रा कम नहीं होती।

आय एवं व्यय : प्रति हेक्टेयर कुल उत्पादन 40–45 क्विंटल (सूखे राइजोम) कुल व्यय (प्लांटिंग मेटेरियल तथा मजदूरी) 30,000 रूपये। क्रय मूल्य प्रति क्विंटल – 2000 रूपये कुल प्राप्ति मूल्य – 80,000 रूपये शुद्ध लाभ 50,000 रूपये। इस प्रकार प्रति हेक्टेयर बच की खेती करने से आठ माह की फसल से शुद्ध लाभ 50,000 रूपये संभावित है।

मार्केटिंग : इसकी बिक्री हेतु विभिन्न फार्मेसियों से सम्पर्क किया जाना चाहिए।

1. एच.बी.फार्मा राजकोट (गुजरात)
2. शिल्पा कैम, इंदौर (म.प्र.)
3. चरक फार्मास्युटिकल मुम्बई
4. अतासिन मुम्बई

निर्माण की जाने वाली औषधियाँ : कृमि का सिरप, एन्ओस्प्रे पाउडर, दंत दुःख पाउडर, ओटोमार ड्राप्स, लिवोवेल ड्राप्स, सिरप, साइबिल टेबलेट्स, शिल्पाजाइम सिरप ड्राइकोनिल सिरप, गैलाकॉल, नेडटेबलेट आदि।

कालमेघ (Andrographis paniculata)

कालमेघ Acanthaceas कुल का पौधा है। यह एक उन्नत, शाखीत एक वर्षायु गुल्म जिसका काण्ड चौरस, हरे रंग का, इसकी शाखायें पतली विपरीत, पत्र हरे तथा भालाकार पत्राग व नोकदार, पत्र किनारी तरंगित होती है, पुष्प छोटे श्वेत गुलाबी रंग के होते हैं यह पौधा एकेन्थेसी (वासा) कुल का है। बाजार में यह देशी चिरायता के नाम से बेचा जाता है।

कालमेघ की औषधीय गुण

यह एक क्षुप जाति का पौधा है इसका प्रयोग मुख्यतः पचाँग के रूप में कि जाती है। यह स्वाद में कडुआ और कटु पौष्टिक होता है। इसमें ऐन्ड्रोग्राफिलोडिन एवं कालमेघिन जैसे ज्वर नाशक एवं बहुरोग नाशक तत्व होते हैं। यह बच्चों के लिए बहुत ही उपयोगी होता है। इसमें ज्वर नाशक का महत्वपूर्ण गुण होता है। इसके पचाँग का काढ़ा बनाकर ज्वर में देते हैं यह भूख में वृद्धि करता है एवं चर्मरोग में बहुपयोगी होता है। सिर दर्द, अजीर्ण, अतिसार एवं साधारण ज्वर में इसे हींग, सोठ मीर्च एवं पीपल के साथ चूर्ण बनाकर देते हैं। मुख्यतः चूर्ण 1 ग्राम या काढ़ा 10–15 ग्राम तक के पौधे का प्रतिदिन देना चाहिए। इसकी खेती आर्थिक दृष्टि से लाभकारी है।

औषधीय प्रयोज्य अंग : इसको पंचांग के रूप में उपयोग किया जाता है।

इसमें से प्राप्त होने वाला कार्यकारी तत्व – इसके पंचांग में पाये जाने वाले मुख्य रासायनिक तत्व ऐन्ड्रोग्राफोलिड तथा कालमेघिन जो रिक्त होते हैं। यह तत्व ही औषधीय है।

रोगों में प्रयुक्त : यकृत वृद्धि, रक्त विकार, मलेरिया ज्वर, जीर्ण ज्वर, अग्निमांद्य तथा चर्मरोगों में।

कालमेघ की खेती : वैसे तो यह वनौषधि वनों में प्राकृतिक रूप में उगती पायी जाती है, किन्तु यह एक अत्यन्त ही उपयोगी वनौषधि होने के कारण इसकी खेती व्यावसायिक स्तर पर लाभकारी सिद्ध हुई है।

खेती के लिए भूमि : उपयुक्त भूमि बलुई दोमट मिट्टी वाली जिसमें जल निकास की उत्तम व्यवस्था हो।

बीज की मात्रा : 2–3 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर।

पौधे तैयार करने की विधि : नर्सरी में बीज डालकर पौधे तैयार की जाती है। नर्सरी तैयार करने की अवधि 15 जून के बाद, लगभग एक माह में पौध रोपण के लिये तैयार हो जाती है।

खेती के लिये पौध रोपण विधि : जुलाई–अगस्त में नर्सरी की तैयार पौधे को खेत में लगाया जाना चाहिए। पौध रोपण के समय पौधों की दूरी औसतन 30 x 30 से.मी. तक की होनी चाहिए। एक हेक्टेयर के लिये पौधों की कुल संख्या 111111 की आवश्यकता रहती है।

परिपक्व काल : इस वनौषधि में जब पुष्प, फल एवं बीज आ जाय, तो फसल कटाई के लिये तैयार है, यह समझना चाहिए। इसलिये परिपक्व काल 4–5 माह का होता है।

कालमेघ के विशिष्ट योग : इस औषिधि का उपयोग मुख्य रूप से चूर्ण, क्वाथ तथा स्वरस के रूप में किया जाता है आयुर्वेदिक औषधि निर्माण कम्पनियाँ कालमेघ तरल सत्व तथा होमियोपैथिक में कालमेघ ड्राप बनाया जाता है। इन औषधियों का प्रयोग यकृत रोगों में कामला, जौन्डिस तथा खून की कमी जैसे रोगों में किया जाता है।

घृतकुमारी (Aloevera)

घृतकुमारी शुष्क क्षेत्र की एक बहुउपयोगी वनस्पति है। भारत में यह घीकुंआर, मुसाबर, ग्वारपाठा इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है। यह उष्ण क्षेत्रानुकूल वनस्पति है। इसलिए इसे शुष्क प्रदेशों में जहाँ पानी की सुविधा कम हो सरलता से उगाया जा सकता है।

घृतकुमारी लिलिएसी कुल का सदस्य है। इसकी पत्तियाँ मांसल (गुद्देदार) तथा वर्ष भर हरी रहती है। इसके वंश में कुल 275 प्रजातियाँ हैं जिनमें से भारत में केवल चार प्रजातियाँ पायी जाती हैं। मूलरूप से घृतकुमारी भूमध्य सागारीय देशों (इटली, ग्रीस आदि) की वनस्पति है परन्तु माल्टा, केनरी कैप, साइप्रस, इजराइल आदि देशों में इसकी व्यवसायिक खेती की जाती है।

भारतवर्ष में यद्यपि इसकी व्यवसायिक खेती अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है, परन्तु इसके पौधे राजस्थान, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक आदि प्रदेशों की अर्द्धशुष्क जलवायु में बहुतायत में पाये जाते हैं।

घृतकुमारी का कमलाकृति पौधा देखने में बड़ा ही आकर्षक होता है। वातावरण के प्रति सहिष्णु होने के कारण विपरीत परिस्थितियों में यह अच्छा पनपता है। 5–7 सेमी. लम्बे तने के चारों तरफ से 40–50 सेमी. लम्बी ऊपर से नुकीली तथा नीचे से चौड़ी व मांसल पत्तियाँ निकली होती है। घृतकुमारी में जड़–तंत्र पूर्ण विकसित एवं रेशेयुक्त होता है। पुष्प संरचना की वैज्ञानिक व्याख्या के अनुसार इसका पुष्पक्रम साधारण घना, असीमाक्ष तथा त्रिज्या जैसा होता है। फूलों में भालाकार सहपत्र, पीले रंग का बेलनाकार नलीयुक्त परिदल पुंज तथा उच्चकोटि का अक्षीय बीजाण्डन्यास व त्रिकोष्ठकी अण्डाशय होता है।

औषधीय उपयोगिता एवं महत्व

ग्वारपाठा में अनेक प्रकार के औषधीय गुण पाये जाते हैं। आयुर्वेद में ''घृतकुमारी'' के नाम से प्रसिद्ध यह पौधा कई प्रकार की दवाईयों के निर्माण में वृहत पैमाने पर प्रयुक्त होता है। इसकी पत्तियों के रस दस्तावर भी होता है। पत्तियों के श्लेष्मक में ग्लकोस, गैलेक्टुरोनिक, अम्ल गैलेक्टोस एवं कई अमीनो अम्ल में भी पाये जाते हैं। इसमें 1.6 से 68.7 मिग्रा./100 मिमी. औषधीय द्रव्य पाया जाता है जो उदर व्याधि को दूर करता है तथा पत्तियों में ''बार्बेलिओन''नामक सक्रिय तत्व पाया जाता है जो कई प्रकार की घरेलू एवं औद्योगिक वस्तुओं में इस्तेमाल होता है।

पाचनतंत्र की बीमारियों के लिए घृतकुमारी एक रामबाण औषधि है। त्वचा सम्बन्धी रोगों, घावों एवं जल जाने आदि पर भी इसके प्रयोग से आराम मिलता है। अन्य कई रोगों जैसे–कैथरटिक, कूलिंग, बुखार, तिल्ली एवं यकृत सम्बन्धी रोगों में इसकी पत्तियों का रस गुणकारी पाया गया है। लसीका ग्रन्थि को बढ़ाने में भी यह एक प्रभावी औषधि है। इसकी जड़े ''उल्टी'' के उपचार के लिए उपयोग की जाती है।

पशु चिकित्सा में भी घृतकुमारी एक प्रभावशाली औषधि है। घृतकुमारी की पत्तियों का गूदा प्रायः सभी प्रकार की पशु व्याधि के उपचार में सहायक होता है। इसके पौधों को गमलों में लगाकर शोभाकार पौधे के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसके अलावा मरू–उद्यान व ''रॉक गार्डेन'' के लिए भी यह महत्वपूर्ण पौधा है।

भारतवर्ष में घृतकुमारी की मुख्य रूप से दो प्रजातियाँ प्रचलित है। पहली वे जो सब्जी के काम आती है तथा दूसरी वे जो औषधि बनाने में काम आती है। सब्जी गुण वाला घृतकुमारी स्वाद मे कम कड़वा होता है जिसे सब्जी

के अलावा अचार एवं सलाद के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। औषधि गुणवाला स्वाद में कड़वा होता है। दोनों प्रजातियों में नयी निकलने वाली कोपलें नहीं होती है। अतः इसे खाने के काम में लिया जा सकता है।

गुजरात में इसके पुष्पों की भी सब्जी बनायी जाती है। घृतकुमारी की पत्तियों की मेथी मिश्रित सब्जी बहुत ही स्वादिष्ट एवं गुणकारी होती है। इसकी पूर्ण पकी हुई पत्तियाँ, शैम्पू, फेसक्रीम, फेसपैक एवं मास्चराईजिंग तत्व आदि बनाने में काम आती है।

भूमि एवं जलवायु

यद्यपि घृतकुमारी की खेती कंकरीली–पथरीली एवं वर्षा आधारित बारानी भूमि में हो सकती है परन्तु अच्छे जल निकास वाली बलुई व बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए अच्छी मानी गई है। यह कम उर्वरा शक्ति वाली भूमि में भी अच्छी बढ़वार करके संतोषप्रद उपज दे सकता है। बंजर, परती भूमि विकास तथा रेगिस्तानी इलाके में भू–संरक्षण के लिए यह बहुत ही उपयोगी पौधा है। बेहद सूखा सहन पौधा होने के कारण इसकी खेती न्यूनतम वर्षा (100–300 मिमी.) वाले क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है।

अत्यधिक सर्दी पाले से घृतकुमारी की पौध बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। घृतकुमारी में क्षार को सहन करने की क्षमता होती है। अतः लवणीय पानी से सिंचाई करके भी इसकी खेती की जा सकती है।

प्रवर्धन एवं पौधरोपण

घृतकुमारी के पौधे से कई छोटे–छोटे जड़दार पौधे निकलते हैं जिन्हें ''सकर'' कहा जाता है। इन छोटे–छोटे पौधों को मुख्य पौधों से अलग करके अन्य स्थान पर लगाकर प्रवर्धन किया जाता है। एक विकसित पौधे से एक वर्ष में लगभग 5–10 पौधा प्राप्त की जा सकती है। स्वस्थ पौधा, जिसमें 5–6 पत्तियाँ हो, रोपण हेतु उत्तम होती है।

पौधों को लगभग 60 x 60 से.मी. की दूरी पर लगाते हैं। खेत की तैयारी हेतु 100 टन गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति हेक्टेयर मिलाकर अच्छी जोताई करनी चाहिए। दीमक से बचाव एवं अच्छी बढ़वार लेने के लिए प्रति पौधे में 10 ग्रा. हैप्टाक्लोर या 100 ग्राम राख मिलाना अच्छा रहता है।

बारानी क्षेत्रों में घृतकुमारी को वर्षा ऋतु में लगाना उपयुक्त रहता है परन्तु जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध हों वहाँ पौध रोपण के लिए बहुत उपयुक्त रहता है। पौधा लगाने के बाद एक सप्ताह तक प्रतिदिन बहुत हल्की सिंचाई करना जरूरी होता है। अच्छी प्रकार से खेत की तैयारी करके पौध रोपण करने पर शत–प्रतिशत सफलता प्राप्त की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग

साधारणतः घृतकुमारी में बिना खाद एवं उर्वरक के भी उत्पादन मिलता है। परन्तु उचित वैज्ञानिक विधियों द्वारा सीमित मात्रा में खाद एवं उर्वरक देकर अधिक उपज प्राप्ति की जा सकती है। 100 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद व 25 ग्राम प्रति पौधा डाई अमोनियम फॉस्फेट (डीएपी) प्रति वर्ष देने से पत्तियों का उत्पादन अधिक मिला है। इसी प्रयोग द्वारा राजस्थान (बीकानेर) के मरूक्षेत्र में भी उल्लेखनीय उत्पादन प्राप्त किया गया है। उर्वरकों की दो खुराकों (जुलाई व फरवरी) के अलावा जुलाई माह में गोबर की खाद भी देना जरूरी होता है। अक्टूबर माह में 2 प्रतिशत यूरिया का पर्णीय छिड़काव करना भी घृतकुमारी में लाभप्रद होता है।

सारणी-1 : घृतकुमारी की खेती का आय-व्यय का विवरण

क्षेत्र	वर्षवार खर्च, 000/- रूपये				
अ. खर्च					
खेत की तैयारी	5	5	5	5	5
पौधों की कीमत	55	55	55	55	55
खाद, उर्वरक एवं सिंचाई	13	27	42	58	75
श्रमिक	36	76	120	169	223
अन्य खर्चे	15	30	45	60	75
योग	**124**	**193**	**267**	**347**	**433**
ब. आय (4.00 रूपये प्रति किग्रा. की दर से)	0	550	1100	1650	2200
स. शुद्ध लाभ	124	357	833	1303	1767
द. लाभ खर्च अनुपात	1.85	3.12	3.76	4.08	

पौध रोपाई के बाद उनकी बढ़वार को सुनिश्चित करने के लिए पहले माह में साप्ताहिक सिंचाई करनी पड़ती है। एक बार ठीक ढंग से स्थापित होने के बाद पौधे बिना सिंचाई के भी पनप सकते हैं। जिन स्थानों पर सिंचाई की सुविधा हो वहाँ पर व्यवस्थित ढंग से सिंचाई करके अधिक उपज पाई जा सकती है। सर्दी में 15 दिनों तथा गर्मी में 7 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करना इसके लिए पर्याप्त माना गया है वर्षा ऋतु में साधारणतः सिंचाई की कोई जरूरत नहीं होती है। पर्याप्त पोषण एवं जल प्रबंधन से इसकी पत्तियाँ अधिक मोटी व गुद्देदार होती है।

फसल प्रबंध

खड़ी फसल में निराई–गुड़ाई करना जरूरी होता है। इस क्रिया से जहाँ एक तरफ खरपतवार नष्ट होता है वहीं दूसरी तरफ कठोर मिट्टी की सतह के टूटने से पौधों को बढ़ने में मदद मिलती है। पत्तियों के ऊपरी 1.2 सेंमी. भाग को तोड़कर अलग कर देने से पत्तियाँ अधिक गुद्देदार हो जाती है और इसके साथ ही इनमें श्लेष्मक की मात्रा भी बढ़ जाती है। घृतकुमारी में प्रायः कीट व्याधि का प्रकोप बहुत ही कम होता है। जंगली जानवरों द्वारा इसकी फसल को कोई नुकसान नहीं होता है।

उपज

घृतकुमारी के पौधे से रोपाई के एक वर्ष बाद से उत्पादन मिलने लगता है। पौधे की सबसे निचली एवं पूर्ण रूप से पकी हुई पत्तियों को सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। घृतकुमारी के एक स्वस्थ पौधे से एक वर्ष में औसतन 3–5 किग्रा. प्रत्तियाँ प्राप्त की जा सकती है। पौधों से पत्तियों की कटाई सावधानीपूर्वक करनी चाहिए, क्योंकि पत्तियाँ काटते समय तने में कोई नुकसान होने से उत्पादन पर उल्टा प्रभाव पड़ता है। पत्तियों की कटाई के बाद अच्छी तरह पानी से धोकर एवं टोकरी में पैक करके बाजार भेजना चाहिए।

उद्योगों के उपयोग हेतु व दूर दराज क्षेत्रों में भेजने के लिए अधिक मात्रा में काटी गयी पत्तियों को ठीक से धो करके एवं ढंग से पैक करके ही भेजा जाना चाहिए, क्योंकि अच्छी पैक न होने पर परिवहन के समय आपस में टकराने से पत्तियाँ लगभग 4–5 रूपये प्रति किग्रा. के भाव से बिकती है। इसकी खेती के प्रथम पाँच वर्षों की आय–व्यय का ब्यौरा सारणी में दिया गया है। सारणी से यह स्पष्ट होता है कि घृतकुमारी की एक हेक्टेयर खेती में व्यय किए गए कुल रूपये (रू. 1,24,000) मात्र दो वर्षों में ही अर्जित किए जा सकते हैं। इसके बाद आगामी वर्षों में लाभ मिलता रहता है। उत्तरावर्ती वर्षों में इसकी पौधा बेचकर भी आय बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार मरूक्षेत्र में घृतकुमारी (इण्डियन ऐलो) की खेती एक लाभप्रद व्यवसाय बन सकती है यह किसानों को अच्छी आय देने के साथ–साथ पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने में सहायक होगा।

झारखण्ड राज्य बागवानी मिशन सह उद्यान निदेशालय की कल्याणकारी योजनाएँ

कार्य विवरण

क्र. सं.	कार्यक्रम	क्षेत्र	यूनिट खर्च राशि	अधिकतम अनुदान राशि (रू.)
1.	नर्सरी स्थापना	4 हे0	25 लाख	12.50 लाख
2.	नर्सरी स्थापना	1 हे0	6.25 लाख	3.12,5 लाख
3.	फलदार वृक्ष लगाना (आम, लीची, आंवला, साइट्रस)			
	आम	1 हे0	22000	16500 (तीन वर्ष में)
	लीची	1 हे0	23500	17625 (तीन वर्ष में)
	आंवला	1 हे0	23340	17505 (तीन वर्ष में)
	साइट्रस (नीबू, लेमन संतरा)	1 हे0	35340	25005 (तीन वर्ष में)
4.	मीडो बागवानी	1 हे0	1लाख	50,000
5.	सघन बागवानी	1 हे0	62,775	31,388
6.	पपीता	1 हे0	40,000	30,000
7.	सब्जी बीज उत्पादन (परियोजना आधारित)	1 हे0	50,000	25,000
8.	कट-फ्लॉवर (गुलाब जरबेरा, कारनेशन)	1 हे0	70000	35000
9.	बलबस फ्लॉवर (ग्लैडियोलस)	1 हे0	90,000	45,000
10.	कटे फूल (गेन्दा)		24000	12000
11.	मसाला पौधे (मिर्च, हल्दी, अदरक)	1 हे0	25,000	12,500
12.	सुगंधित पौधे	1 हे0	25000	12,500
13.	पॉली हाउस			
	i. फैन पैड	-	1465 रू0/ वर्गमीटर	732.50 रू0/ वर्गमीटर
	ii. टयूॅबलर स्ट्रक्चर	-	935 रू0/ वर्गमीटर	461.50 रू0/ वर्गमीटर
	iii. काष्ठस्ट्रक्चर	-	515 रू0/ वर्गमीटर	257.50 रू0/ वर्गमीटर
	iv. बाँस स्ट्रक्चर	-	875 रू0/ वर्गमीटर	187.50 रू0/ वर्गमीटर
14.	शेड नेट			
	i. टयूबलर स्ट्रक्चर	-	600 रू0/ वर्गमीटर	300 रू0/ वर्गमीटर
	ii. काष्ठस्ट्रक्चर	-	410 रू0/ वर्गमीटर	205 रू0/ वर्गमीटर
	iii. बाँस स्ट्रक्चर	-	300 रू0/ वर्गमीटर	150 रू0/ वर्गमीटर

क्र. सं.	कार्यक्रम	क्षेत्र	यूनिट खर्च राशि	अधिकतम अनुदान राशि (रू.)
15.	शेड नेट/ग्रीन हॉउस के लिए पौधा रोपण सामग्री का खर्च			
	सब्जी	-	105 रू0 / वर्गमीटर	52.50 रू0/ वर्गमीटर
	फूल	-	500 रू0 /वर्गमीटर	250 रू0/ वर्गमीटर
16.	बागों का जीर्णोद्धार	1 हे0	30000	15000
17.	मल्चिंग (प्लास्टिक)	1 हे0	20000	10000
18.	जलस्त्रोत की स्थापना	1 हे0	17.25लाख	17.25 लाख
19.	प्लास्टिक टनेल	1 हे0	30 रू0 /वर्गमी0	15 रू0 वर्गमी0
20.	जैविक खेती हेतू	1 हे0	20000	10000
21.	केचुआं खाद उत्पादन इकाई स्थापना(HDPE)	1 ई0	10,000	5000
22.	जैविक खेती पंजीकरण	50 हे0 सामुदायिक	5 लाख	5 लाख
23.	पैक हाउस		3 लाख	1,50,000
24.	शीत गृह		3 करोड़	1,65 करोड़
25.	रेफ्रिजरेटर वैन		24 लाख	13.20 लाख
26.	प्राइमरी/मोबाईल / प्रोसेसिंग यूनिट	1 ई0	24 लाख	13.20 लाख
27.	राइपेनिगं चेम्बर (5000मी.ट.)	1 ई0	3 करोड	1.65 करोड
28.	वाष्पीकृत/ कमउर्जा शीतकक्ष	1 ई0	4 लाख	2 लाख
29.	टर्मिनल मार्केट	1 ई0	150 करोड़	50 करोड
30.	ग्रामीण बाजार / अपनी मंडी		20 लाख	11 लाख
31.	खुदरा बाजार / दुकान	1 ई0	10 लाख	5.50 लाख
32.	कलेक्सन, ग्रेडिंग एवं पैकिंग यूनिट	1 ई0	15 लाख	8.25 लाख
33.	मधुमक्खी पालन		3,000	1500

राज्य जैविक कृषि प्राधिकार

राज्य में जैविक खेती के मुख्य उदेश्य :-

- खेती को टिकाउ बनाना
- खाद्य पद्धार्थो की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी करना
- राज्य को जैविक उत्पादन हेतु अग्रणी बनाना
- किसानों की खेती को लाभकारी तथा उन्हें स्वावलम्बी बनाना
- पर्यावरण संरक्षण तथा मृदा विन्यास को प्राकृतिक स्थिति में बनायें रखना

राज्य जैविक कृषि प्राधिकार के अन्तर्गत

- राज्य जैविक मिशन
- राज्य मसाला मिशन
- राज्य औषधीय मिशन

किसानों को, जैविक खेती हेतु उत्पादन, हरी खाद बीजोत्पादन, शेड नेट हाउस, मृदा परीक्षण, प्रशिक्षण एवं भ्रमण, सिंचाई हेतु डीप बोरिंग तालाब एवं प्रमाणीकरण की सुविधायें

राँची, खूँटी, लोहरदगा, गुमला, पूर्वी सिंहभूम, प० सिंहभूम, सरायकेला, दुमका, सिमडेगा, लातेहार, जामताड़ा, पाकुड़ तथा साहेबगंज जिलों में लागू।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें
निदेशक, झारखण्ड राज्य बागवानी मिशन-सह-उद्यान निदेशालय
कृषि भवन प्रांगण, कांके रोड राँची-834008
0651-2230789

1412-06-12